भारतके प्राचीन राजवंश।

(द्वितीय भाग।)

संस्कृतग्रन्थों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों और तवारीखों
आदिके आधारपर लिखा हुआ
विक्रमकी सातवीं शताब्दीतकका प्राचीन भारतका

इतिहास।

लेखक—

साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, एम. आर. ए. एस.,

सुपरिण्टैण्डैण्ट—

सरदार म्यूज़ियम और सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी,

तथा

भूतपूर्व प्रोफ़ेसर जसवन्त कालेज, जोधपुर।

कार्तिक, १९७८ वि०।

अक्टूबर, १९२१ ई०।

प्रथमावृत्ति।] जिल्दसहितका ३॥) [मू० तीन रुपये।

प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव बम्बई।
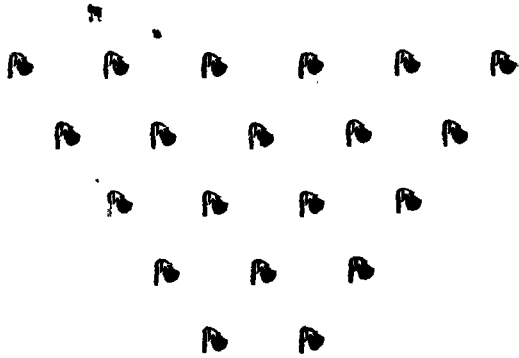
मुद्रक—

मंगेश नारायण कुलकर्णी,

कर्नाटक प्रेस,

नं० ४३४, ठाकुरद्वार, बम्बई।

श्रीमान् पं० मुकुन्दमुरारि रेऊ ।

(ग्रन्थकर्त्ताके पिता ।)
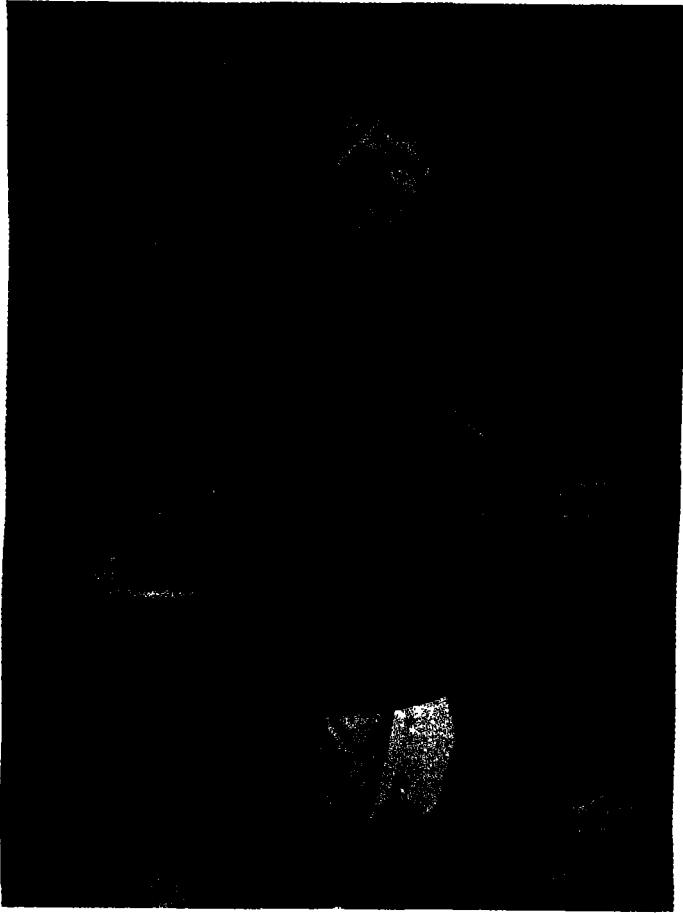
पूज्य पिताजीके चरणोंमें ।

निवेदन ।

कोई सवा वर्षके बाद आज मैं 'भारतके प्राचीन राजवंश' का यह दूसरा भाग भी इतिहास-प्रेमियोंके हाथोंमें दे रहा हूँ । आशा है कि प्रथम भागके समान यह भी हिन्दीके ऐतिहासिक साहित्यकी कमीको किसी न किसी अंशमें पूर्ण किये बिना न रहेगा ।

वास्तवमें यह ग्रन्थ इस मालाका प्रथम भाग कहलानेका अधिकारी है और इसके पहले जो भाग प्रकाशित हो चुका है उसे द्वितीय भाग कहना चाहिए । उस भागमें केवल 'पश्चिमी क्षत्रपोंका इतिहास' ही ऐसा है, जो इस भागके शकोंके इतिहासके साथ प्रकाशित होने योग्य था, क्योंकि उक्त क्षत्रप-वंश शक-वंशकी ही एक शाखा है । शेष सब वंश अपेक्षाकृत आधुनिक हैं और इस कारण उनका इतिहास इस भागके राजवंशोंके बाद ही लिखा जाना उचित होता । परन्तु जिस समय प्रथम भागके प्रकाशित करनेका प्रयत्न किया जा रहा था, उस समय इस भागके लिखनेका विचार ही नहीं था और इस कारण इन दोनों भागोंमें समयके सिलसिलेका खयाल नहीं रक्खा जा सका । यदि हिन्दीप्रेमियोंने मेरे इस प्रयत्नको पसन्द किया और कभी इनके दूसरे संस्करणोंके प्रकाशित करनेकी आवश्यकता पड़ी तो यह गड़बड़ यथासंभव दूर कर दी जायगी और उस समय तक जो जो नई बातें मालूम होंगी उनके अनुसार इनका संशोधन और परिवर्तन भी कर दिया जायगा ।

यद्यपि इस भागका उत्थान महाभारतके समयसे किया गया है और इस कारण प्रारंभमें महाभारत और कलियुग संवत्का दिग्दर्शन करा दिया गया है, परन्तु अभी तक जो कुछ प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हुई है, उससे शिशुनागवंशसे ही राजवंशोंका इतिहास प्रारंभ होता है । अतएव इस राजवंशके समय (विक्रम संवत् पूर्व ५८५=ईसवी सन् पूर्व ६४२) से प्रारंभ करके वैसवंशी राजा हर्षवर्धनके समय (वि० सं० ७०४=ई० सन् ६४७) तकका सिलसिलेवार इतिहास—जो अबतककी खोजोंसे प्राप्त हुआ है—इस भागमें संग्रह किया गया है । अन्तमें एक परिशिष्ट भाग जोड़ा गया है जिसमें इस भागके राजवंशों—विशेषतया गुप्तों—से सम्बन्ध रखनवाले अन्य राजकुलोंका फुटकर इतिहास है । इसका सिलसिला विक्रमकी चौदहवीं शता-

ब्दिके आरंभतक पहुँच गया है । परिशिष्टके अन्तमें ' विक्रम ' और ' कालिदास ' के विषयमें विद्वानोंके जो भिन्न भिन्न मत हैं उनपर विचार किया गया है । ग्रन्थान्तमें दो उपयोगी लेख और भी जोड़ दिये गये हैं । इनमेंसे पहलेमें भारतीय लिपि और उसकी प्राचीनतापर विचार किया गया है तथा दूसरेमें भारतके इतिहासकी दशाका सिंहावलोकन है । सबके अन्तमें एक वर्णानुक्रमणिका भी लगा दी गई है जिससे पाठकोंको प्रत्येक व्यक्ति, स्थान और घटनाका पता बड़ी आसानीसे लग जायगा ।

ग्रन्थको सर्वाङ्गपूर्ण बनानेके लिए प्रत्येक राजवंशके सिक्कों तथा उनपरके लेखोंका वर्णन भी यथासाध्य दे दिया गया है और उस समयके लेखोंके अक्षरोंको पहचाननेके लिए उनके आकार भी यथास्थान बतला दिये गये हैं । साथ ही मौर्य, गुप्त और बैसवंशी राजाओंके समयके भारतके मानचित्र भी जोड़ दिये गये हैं । इनके सिवाय खास खास सिक्कोंके और ब्राह्मी व खरोष्ठी लिपियोंके प्राचीनतम लेखोंके चित्र भी उपयोगी समझकर दे दिये गये हैं ।

पहले भागमें प्रमाण रूपसे उद्धृत किये गये ग्रन्थों आदिके नाम अँगरेजीमें ही दिये गये थे, परन्तु इस भागमें वे हिन्दीमें दिये गये हैं । इससे केवल हिन्दी जाननेवाले पाठकोंको भी बहुत कुछ लाभ होगा ।

इस ग्रन्थके लिखनेमें मुझे जोधपुरके राजकीय पुस्तकालयसे बहुत ही अधिक सहायता मिली है और इसके लिए मरुधराधीशकी प्रजाहितैषिता और उनके सुयोग्य काउन्सलर रावबहादुर ठाकुर मंगलसिंह साहबकी विद्याभिरुचिके प्रति जितनी अधिक कृतज्ञता प्रकाशित की जाय उतनी थोड़ी है ।

अन्तमें उन विद्वानोंके प्रति भी मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी लेखमालाओं और पुस्तकोंसे मुझे इस ग्रन्थके लिखनेमें सहायता मिली है ।

यदि इन ग्रन्थोंसे हिन्दीके पाठकोंको थोड़ासा भी लाभ हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा ।

जोधपुर
आश्विन शुक्ला ८
वि० सं० १९७८ ।

निवेदक—
विश्वेश्वरनाथ रेउ ।

विषय-सूची ।

(परिशिष्ट)

चित्र-परिचय।

चित्र-परिचय।

चि. नं.	चित्रका विवरण	पृष्ठाङ्क	विशेष वक्तव्य
५	प्राचीन सिक्के		
	१४—नहपान	(१६६)	देखो भारतके प्राचीन राजवंश प्रथम भाग—पश्चिमी क्षत्रपोंका इतिहास
	१५—चष्टन		
	१६—रुद्रसिंह		
	१७—समुद्रगुप्त	२५८,२६०	विवाहबोधक—बहुतसे इनको च. गु. प्र. के मानते हैं।
	१८— ,,	(२६१)	वीणाङ्कित—इ. सीधे भागका ही चि. दि. है।
	१९— ,,	(२५८)	आश्वमेधिक— ,,
	२०—चन्द्रगुप्त द्वि.	(२७५)	सिंहवधाङ्कित
	२१—कुमारगुप्त प्र.	(२८४)	चाँदीके—पश्चिमी प्रान्तके
	२२—तोरमाण	(३२७)	हूणवंशी
	२३—मिहिरगुल	(३३०)	हूणवंशी
	२४—हर्षवर्धन	(३४६-४७	शीलादित्य
	२५—वासुदेव	(२१५)	कुशान
	२६—ससेनि०शैली का भारतीय सिक्का	(३२६)	
	२७—गधिया सिक्का	(३२६-२७	यह नं. २६ का ही परिवर्तित रूप है। इसको अंगरेजीमें 'पंचमार्कड' सिक्का कहते हैं।
	२८-ठप्पेसे चिन्हित किया हुआ सि०	—	यह करीब २२सौ वर्षका पुराना माना जाता है। इसके सीधे भागका ही चित्र दिया है।
	२९—धर्मपाल	(४०९)	इसका खुलासा वर्णन पृ० ४०९ में दिया गया है। यह 'एरन'से मिला था। (यह कांसीका है) सीधे भागका ही चित्र है।
	३०—संदिग्ध सिक्का	—	यह भी दो हजार वर्षका पुराना माना जाता है। इसकी सीधी तरफ खरोष्ठी अक्षरोंमें 'दुजक(या दोजक)और उलटी तरफ ब्राह्मी अक्षरोंमें 'नेगमा'लिखा है।(यह कांसीका है)
	३१—पैण्टलिओन (ग्रीक राजा)	—	इसकी उलटी तरफ ब्राह्मी अक्षरोंमें 'राजि [ने] पंतिलेवस' लिखा है। यह भी कांसीका है। इसका केवल उलटी तरफका ही चित्र दिया गया है।

सहायक-ग्रन्थसूची।

इस ग्रन्थके लिखनेमें जिन जिन पुस्तकों, पत्रों और रिपोर्टों आदिसे मदद ली गई है, उनके नाम नीचे दिये जाते हैं:—

ऐतरेय ब्राह्मण, लाटायन श्रौतसूत्र, श्रीमद्भागवत, मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, महाभारत, मनुस्मृति, अष्टाध्यायी, महाभाष्य, राजतरंगिणी, वाराही संहिता, शब्दकल्पद्रुम, हर्षचरित, कथासरित्सागर, शकुन्तला, मालविकाग्निमित्र, मुद्राराक्षस, विक्रमोर्वशी, अर्थशास्त्र (कौटिल्य), रघुवंश, मेघदूत, पार्श्वाभ्युदय, भट्टि, पराक्रमबाहुचरित, प्रियदर्शिप्रशस्तयः, अशोकावदान, परिशिष्टपर्व, दिव्यावदान, गाथासप्तशती, दीपवंश, महावंश, मलिन्दपह्नो (मलिन्दप्रश्न), चाणक्यनी चतुराई, मैगेस्थनीजका भारतवर्षीय वर्णन, फाहियान, भारतकी प्राचीन सभ्यताका इतिहास (रमेशचन्द्रदत्त), भारतके प्राचीन राजवंश (प्रथम भाग), प्राचीन लिपिमाला, सरस्वती, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, जैनहितैषी।

English Books, Journals, reports, etc.

1 Epigraphia Indica.
2 Indian Antiquary.
3 Journal Royal Asiatic Society, London.
4 Journal Bombay Branch Royal Asiatic Society.
5 Journal Bengal Asiatic Society, Colcutta.
6 Journal Bihar and Orisa Research Society.
7 Journal Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.
8 Archaeological survey of India.
9 Archaeological survey Reports.
10 List of Northern Inscriptions (F. Kielhorn).
11 List of Southern Inscriptions (F. Kielhorn).
12 Corpus Inscriptionum Indicarum, vol. III, (Gupta Inscriptions).
13 Chronology of India (Mavell Duff).
14 Early History of India (V. A. Smith).
15 Oxford History of India (V. A. Smith).

16 Ashoka (V. A. Smith).
17 India and the Western world (Rawlinson).
18 Ancient India (Rapson).
19 A peep into the Early History of India. (Bhandarkar).
20 History of India (Shastri)
21 Alberuni's India.
22 Yuan Chwang's travels (Watter).
23 Prof. Bendall's Journey.
24 Alexander (Plutarch).
25 Bombay Gazetteer.
26 Asiatic Society Progress Reports.
27 Itsing (Takakusu).
28 Bhilsa tops.
29 Bhavnagar Inscriptions.
30 Levi Le Nepal.
31 Antiquity of Chamba.
32 Dialogues of Buddha.
33 History of Sanskrit literature (Macdonell).
34 Panini and his place in Sanskrit literature (Goldstucker)
35 Weiner *Z*eitschrift.
36 Useful tables.
37 Indian coins (Rapson).
38 Numismatic Chronicle.
39 Catalogue of the Coins in the Indian museum, Calcutta, Vol. I,
(Catalogue of the Coins in the British museum, London).:-
40 „ 1 Greek & Scythic kings of Bectria & India.
41 „ 2 Gupta dynasties (& of Sasank, king of Gaud).
42 „ 3 Andhra, Western Kshatrapa, Traikutaka and Bodhi dynasties).

भारतके प्राचीन राजवंश ।

भारतवर्ष ।

इस देशका यह नामकरण भरतके नाम पर हुआ है ।

भागवतमें लिखा है:—

“ येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीत् । येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥ ९ ॥ ”

अर्थात्—भगवान् ऋषभदेवके बड़े पुत्रका नाम भरत था। इसीसे इस देशको भारत कहते हैं ।

निम्नलिखित श्लोकसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है:—

“ हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय ददौ पिता ।
तस्माच्च भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ॥ ”

अर्थात्—हिमालयके दक्षिणका प्रदेश पिताने भरतको दे दिया और इसीसे इसका नाम भारतवर्ष हुआ ।

---

(१) श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ५, अध्याय ४ ।
(२) शब्दकल्पद्रुम, काण्ड तृतीय, पृ० ५०१ ।

परन्तु मत्स्यपुराणमें लिखा है:—

"भरणात्प्रजनाच्चैव मनुर्भरत उच्यते ॥ ५ ॥
निरुक्त वचनैश्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतं ।"

अर्थात्—मनुष्योंकी उत्पत्ति और भरण-पोषण करनेसे मनु भरत कहलाता है और उसीके नामकी व्याख्याके अनुसार इस देशको भारत कहते हैं।

विष्णुपुराणमें इसका विस्तार इस प्रकार लिखा है:—

"उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥ १ ॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने!"

अर्थात्—समुद्रके उत्तरसे हिमालयके दक्षिण तकके देशका नाम भारतवर्ष है। यहाँके लोग भरतकी सन्तान हैं। इस देशका विस्तार नौ हज़ार योजन (३६ हज़ार कोस) है।

परन्तु आज कल भारतभूमिका विस्तार १३ लाख ८८ हजार ९ सौ ७२ वर्गमील माना जाता है।

---

(१) मत्स्यपुराण, अध्याय ११४, पृ० ८८।

(२) विष्णुपुराण, अंश २, अध्याय ३।

(३) मि० स्मिथने भारतके घेरेका विस्तार करीब ५००० मील लिखा है।

कलियुग संवत् ।

हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार लीलामयकी लीलारूप इस संसारके एक महायुगमें चार युग होते हैं[1] ।

पहला कृतयुग १७,२८,००० वर्षका, दूसरा त्रेतायुग १२,९६,००० वर्षका, तीसरा द्वापर युग ८,६४,००० वर्षका और चौथा कलियुग ४,३२,००० का। अर्थात् कलिसे द्वापर दो गुना, त्रेता तीन गुना और कृत चार गुना बड़ा होता है।

इसी कलियुगके प्रारम्भसे जो संवत् चला उसे कलियुग[2] संवत् कहते हैं। इसका प्रारम्भ ईसवी सन्से ३,१०२ वर्ष पूर्व तारीख़ १८ फ़रवरीसे माना जाता है। अत: विक्रम संवत्में ३,०४४, ईसवी सन्में ३,१०१ और शक संवत्में ३,१७९ जोड़नेसे कलियुग संवत् आ जाता है।

बहुतसे विद्वान् महाभारत युद्धको द्वापरके अन्तमें मानकर उपर्युक्त कलियुग संवत्को ही युधिष्ठिर संवत्[3] और महाभारत संवत्के नामसे पुकारते हैं।

एहोलेसे दक्षिणके राजा चौलुक्य पुलुकेशी दूसरेके समयका एक लेख मिला[4] है। उसमें एक जैनमन्दिर बनवानेका उल्लेख है। यह

(१) चत्वारि भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चान्यत्र न क्वचित् ॥ १९ ॥
(विष्णुपुराण, अंश २, अध्याय ३)

(२) इण्डियन एण्टिक्वेरी, जि० १४, पृ० २९०।

(३) लिस्ट ऑफ सदर्न इन्सक्रिपशन्स, नंबर १०१७।

(४) एपिग्राफिया इण्डिका, जि० ६, पृ० ७।

मन्दिर भारत-युद्धसे ३,७३५ और शक संवत्के प्रारम्भसे ५५६ वर्ष बाद बनाया गया था। यथा:—

> " त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
> सप्ताब्दशतयुक्तेषु श (ग) तेष्वब्देषु पञ्चसु॥
> पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
> समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजां।"

" अर्थात् भारतयुद्धसे ३०+३०००+७००+५=३७३५ वर्ष और शक राजाओंके ५०+६+५००=५५६ वर्ष बीतने पर कलियुगमें।"

यदि उपर्युक्त ३,७३५ वर्षोंमेंसे ५५६ वर्ष निकाल दिये जाँय तो पीछे ३,१७९ वर्ष रहते हैं। हम ऊपर लिख चुके हैं कि कलियुग संवत् और शक संवत्का अन्तर भी ३,१७९ वर्षका ही है। अतः ये (भारत और कलियुग) दोनों संवत् एक ही हुए।

परन्तु इसके विरुद्ध भी बहुतसे प्रमाण मिलते हैं। पुराणोंमें लिखा है:—

> " यदैवं भगवद्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज।
> वसुदेवकुलोद्भूतस्तदैव कलिरागतः॥"
> " विष्णुर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः।
> तदाविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः॥"

अर्थात्—श्रीकृष्णके स्वर्ग जानेपर कलियुगका प्रवेश हुआ। यदि यह बात ठीक हो तो कहना पड़ेगा कि महाभारत युद्धके करीब ५१

---

(१) विष्णु पुराण, अंश ४, अध्याय २४, श्लो० ५५।
(२) भागवत, स्कन्ध १२, अध्याय २, श्लो० २९।

वर्ष बाद कलियुग संवत्का प्रारम्भ हुआ था; क्योंकि महाभारतके[1] अनुसार १५ वर्ष तक तो महाराज युधिष्ठिरने अपने चचा धृतराष्ट्रके आज्ञानुसार राज्यकार्य किया था और उसके बाद ३६ वर्ष तक वे स्वतन्त्र शासन करते रहे। अन्तमें जब उक्त वर्ष कृष्णके स्वर्गारोहणका वृत्तान्त सुना तब परीक्षितको राज्य दे उन्होंने हिमालयकी तरफ़ महायात्रा की।

वराहमिहिरने अपनी बनाई वाराही-संहितामें[2] लिखा है:—

"आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्यस्य ॥ ३ ॥"

अर्थात्—युधिष्ठिरके राज्य-समय सप्तर्षि[3] मघा नक्षत्रमें थे और उसका संवत् २,५२६ वर्ष तक रहा। (इसके बाद शक संवत् प्रचलित हुआ।) इससे युधिष्ठिर संवत्का और शक संवत्का अन्तर केवल २,५२६ वर्ष ही आता है। यदि यह कथन ठीक हो तो मानना पड़ेगा कि कलियुग संवत्के ६५३ वर्ष बाद महाभारत-युद्ध हुआ था।

कल्हणरचित राजतरंगिणीमें लिखा है[4]:—

"भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः।
केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ॥ ४९ ॥
शतेषु षट्सु सार्द्धेषु अधिकेषु च भूतले ॥
कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन्कुरुपाण्डवाः ॥ ५१ ॥"

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जि० ४०, पृ० १६३–६४।

(२) वाराहीसंहिता, सप्तर्षिचार।

(३) कलियुग संवत् २७ चैत्र शुक्ल १ को सप्तर्षि संवत्का प्रारम्भ हुआ था।

(४) राजतरङ्गिणी, प्रथम तरंग।

अर्थात्—बहुतसे लोगोंने भ्रमसे द्वापरके अन्तमें महाभारतका होना मानकर नाहक ही समयका हिसाब इस प्रकार लगाया है। असलमें कलिके ६५३ वर्ष बीतने पर कौरव और पाण्डव हुए थे।

इससे भी वराहमिहिरके लेखकी ही पुष्टि होती है।

महाभारत युद्ध।

चन्द्रवंशमें दुष्यन्तका पुत्र भरत एक बड़ा प्रतापी राजा हो चुका है। इसका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मणमें इस प्रकार दिया है[1]:—

"एतेनहवा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच तस्मादुभरतो दौष्यन्तिः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वैरुचमेध्यैरीजे।"

तदप्येते श्लोकां अभिगीताः—

१—हिरण्येन परीवृतान् कृष्णाञ्छुक्लदतो मृगान्।
मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च।

२—भरतस्यैष दौष्यन्ते रग्निःसाची गुणेचितः।
यस्मिन्त्सहस्रं ब्राह्मणा बद्वशो गाविभेजिरे॥

३—अष्टासप्तति भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु।
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतं हयान्॥

४—त्रयस्त्रिंशच्छतं राजा अश्वान् बध्वाय मेध्यान्।
दौष्यन्तिरत्यगाद्राज्ञो मायां मायवत्तरः॥

५—महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पञ्च मानवाः।

अर्थात्—मामता नामक स्त्रीके पुत्र दीर्घतमाने इन्द्रवाले उत्तम अभिषेकसे दुष्यन्तके पुत्र भरतको अभिषिक्त किया। इसीसे भरतने समस्त पृथ्वीको जीतते हुए लौटकर बहुतसे अश्वमेध यज्ञ किये।

---

(१) ऐतरेय ब्राह्मण, अष्टपञ्चमिका, चतुर्थ अध्याय, नवमखण्ड, २३।

और भी ये पुण्यकर्म किये:—

१—मष्णार नामक प्रदेशमें भरतने सोनेके गहनोंसे सजे हुए सौ अरब हाथी दिये।

२—साचीगुण स्थानमें भरतने अग्निचयन किया। उस समय वहाँ पर उपस्थित हज़ार ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकके हिस्सेमें एक एक अरब गायें आईं।

३—भरतने यमुनाके तीर पर ७८ और गङ्गाके किनारे वृत्रघ्न नामक स्थान पर ५५ अश्वमेध यज्ञ किये।

४—इस प्रकार कुल १३३ अश्वमेध यज्ञ करके दुष्यन्तके पुत्र भरतने शत्रु राजाकी मायाको जीत लिया।

५—भरतके इस महत्कर्मकी बराबरी न तो उसके पहलेवालोंने ही की और न पीछेवालोंने। जिस प्रकार आदमी स्वर्गको हाथसे नहीं छू सकता है उसी प्रकार गन्धर्व, पितर, देव, असुर और निषाद इन पाँचोंमेंसे एक भी उसके कर्मोंको नहीं पा सके।

इससे प्रकट होता है कि यह बड़ा प्रतापी राजा था। इसी भरतके वंशमें कुरु लोग हुए थे। ऐतरेय ब्राह्मणसे प्रकट होता है कि कुरु लोग पहले हिमालयकी उत्तरकी तरफ़ (शायद काश्मीरमें) रहते थे[1]:—

"तस्मादेतस्यामुदीच्यां दिशि येके च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते।"

---

(१) ऐतरेय ब्राह्मण, अष्टपञ्चमिका, तृतीयखण्ड, मं० ३।

अर्थात्—उत्तर दिशामें हिमालयके परे जो उत्तर कुरु और उत्तर-मद्र आदि देश हैं वे राज्यकी समृद्धिके लिये ही अभिषिक्त किये जाते हैं।

महाभारतसे भी कुरु देशका हिमालयके उत्तरमें होना सिद्ध होता [1] है:—

" अहो सहशरीरेण प्राप्तोस्मि परमां गतिम्।
उत्तरान् वा कुरून् पुण्यानथवाप्यमरावतीम्॥ २४८१॥"

टालेमी (ग्रीक-लेखक) ने भी अपने ग्रन्थमें 'ओट्टोर कोर्र' शब्द लिखा है; जिसका तात्पर्य भी उत्तरके कुरु देशसे ही है।

नकुल और सहदेवकी माताका नाम माद्री था; जो मद्र देशके राजाकी कन्या थी। उपर्युक्त ऐतरेय ब्राह्मणके लेखसे मद्रदेशका भी उत्तरमें होना सिद्ध होता है। अतः सम्भव है कि कुरु और मद्रदेशके लोग हिमालयके उत्तरसे आकर ही यहाँ बसे हों।

पुराणोंसे विदित होता है कि महाभारत-युद्धके पूर्व तक (सूर्य-वंशमें ९३ और) चन्द्रवशमें ४५ राजा हो चुके थे। तथा कोशल, विदेह, काशी आदि नगरोंके राजा प्रतापी गिने जाते थे।

नीचे हम भारतके विनाशकारी युद्धका संक्षेपमें वर्णन करते हैं:—

" उस समय कुरु लोगोंकी राजधानी हस्तिनापुर थी। इसका स्थान दिल्लीसे करीब ६५ मील उत्तर-पूर्वमें गंगाके किनारे माना जाता है।

वहाँके वृद्ध राजा शान्तनुने जब सत्यवतीसे दूसरा विवाह करना चाहा, तब उस कन्याके पिता दासराजकी इच्छाके अनुसार शान्त-

(१) महाभारत, अनुशासनपर्व।

नुके बड़े पुत्र भीष्मने राज्यत्यागकी और आजन्म ब्रह्मचर्यपालनकी प्रतिज्ञा की।

शान्तनुके सत्यवतीसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—चित्राङ्गद और विचित्र-वीर्य। चित्राङ्गद अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु कुछ ही समय बाद यह युद्धमें मारा गया और इसका छोटा भाई विचित्रवीर्य राज्यका स्वामी हुआ। भीष्मने स्वयंवरसे हरण कर काशीराजकी कन्याओंसे इसका विवाह कर दिया। परन्तु कामासक्त हो जानेके कारण कुछ ही काल बाद विचित्रवीर्यका देहान्त हो गया। इसकी मृत्युके बाद अम्बिकासे धृतराष्ट्रका, अम्बालिकासे पाण्डुका और एक दासीसे विदुरका जन्म हुआ। यद्यपि आयुमें धृतराष्ट्र बड़ा था तथापि उसके अन्धे होनेके कारण उसका छोटा भाई राज्यका स्वामी हुआ। इसकी पहली स्त्री कुन्तीसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनका तथा दूसरी स्त्री माद्रीसे नकुल और सहदेवका जन्म हुआ। इसी प्रकार धृतरा-ष्ट्रकी स्त्री गान्धारीसे दुर्योधन, दुश्शासन, आदि सौ पुत्र हुए। पाण्डुके मरने और उसके पुत्रोंके छोटे होनेके कारण राज्यका कार्य भीष्मकी सलाहसे राजा धृतराष्ट्र किया करता था। पाण्डवों और कौरवोंकी शिक्षाका भार द्रोणाचार्य नामक ब्राह्मणको सौंपा गया था। यह पर-शुरामका शिष्य और शस्त्रविद्यामें बड़ा निपुण था। एक समय यह अपने पुत्र अश्वत्थामाके दुग्धपानके लिये एक गाय माँगनेके लिये अपने मित्र द्रुपदराजके पास गया। परन्तु उसने इसका निरादर कर दिया। इसीका बदला लेनेके लिये इसने हस्तिनापुरमें आकर धृतराष्ट्रके पुत्रों और भतीजोंको शस्त्रविद्या सिखानेका भार अपने ऊपर लिया। जब इनकी शिक्षा पूर्ण हो गई, तब सबके सामने इनकी परीक्षाका समय

आया। परन्तु एक बात और ध्यानमें रखनेकी है कि कौरवों और पाण्डवोंमें ईर्ष्याके कारण विद्यार्थीजीवनसे ही द्वेषाग्नि सुलग गई थी। परीक्षाके समय भी भीम और दुर्योधन आपसमें भिड़ गये। ये दोनों गदायुद्धमें विशेष निपुण थे। परन्तु अन्तमें इन्हें गुरु-कुमार अश्व-त्थामाने रोका। इसके बाद अर्जुनने अपनी बाणविद्याकी निपुणता दिखलाई, जिसे देख सब उसकी प्रशंसा करने लगे। इससे दुर्योधन आदि सौ भ्राता और भी जल गये। इतनेमें कर्ण (यह भी कुन्तीका ही पुत्र था परन्तु कारण विशेषसे यह बात अज्ञात रक्खी गई थी) वहाँपर आया। यह अर्जुनका सच्चा प्रतिद्वन्द्वी था। इसकी वीरताको देख कृपाचार्यने इसको लज्जित करनेके लिये पूछा कि जब तक तुम अपना राजघराना नहीं बताओगे तब तक राजकुमार अर्जुन तुमसे द्वन्द्वयुद्ध नहीं करेगा। इसपर जब कर्ण निरुत्तर हो गया तब दुर्यो-धनने उसी समय उसे अङ्गदेश (बिहार) का राजा बना दिया। परन्तु पाण्डवोंने उसके अज्ञात कुल होनेके कारण युद्ध करना अस्वी-कार किया।

जब इस प्रकार परीक्षा हो चुकी, तब द्रोणने गुरु-दक्षिणामें अपने शिष्योंको पाञ्चालदेशके राजा द्रुपदसे अपना बदला लेनेकी आज्ञा दी। यह आज्ञा पाते ही कौरव और पाण्डवोंने मिल, उक्त राजाके देशपर हमला कर दिया और उसे पराहतकर द्रोणके पास पकड़ लाये। इस पर फिर द्रोणने उसे उसके राज्यका आधा भाग दिलवा दिया और अहिच्छत्रका राज्य स्वयं ले लिया। द्रुपद भी इसका बदला लेनेकी फ़िक्र करने लगा।

इसके एक वर्ष बाद युधिष्ठिर युवराज बनाये गये। परन्तु दिन दिन उनका बल बढ़ता हुआ देख दुर्योधनसे न रहा गया और उसने अपने पितापर दबाव डाल पाण्डवोंको छलसे वारणावत नगरके पशुपति-महोत्सव देखनेको भिजवा दिया। यह प्रदेश इलाहाबादके निकट था। यहाँपर पाण्डवोंके शयनगृहमें आग लगवा दी गई। परन्तु ये लोग बिदुरकी सहायतासे बच गये और बहुत दिनों तक ब्राह्मण वेषमें घूमते रहे, तथा दीन दुखियोंकी सहायता करते रहे।

इसी अवसरपर पांचाल देशकी राजधानी काम्पिल्य नगरमें द्रौपदीके स्वयंवरका उत्सव हुआ। इसमें यह निश्चित हुआ था कि जो कोई एक विशाल धनुष द्वारा चलते हुए चक्रमेंसे होकर उसपर लगी हुई सोनेकी मछलीकी आँखमें निशाना साधेगा उसे ही कन्या दी जायगी। जब राजाओंसे यह लक्ष्यवेध नहीं हो सका तब ब्राह्मण-वेषधारी अर्जुनने इस कठिन कार्यको पूर्ण किया जिससे सबके देखते ही देखते द्रौपदीने उसे वरमाला पहना दी। इस पर बहुतसे राजा लोग द्रुपद पर बिगड़े और उसे मारनेको उद्यत हुए। परन्तु पाण्डवोंने सबको मार भगाया। जब यहाँसे निवृत्त होकर ये लोग माताके पास पहुँचे तब इन्होंने कहा कि "माता आज हम एक बहुमूल्य वस्तु लाये हैं।" इस पर कुन्तीने बेसमझे-सोचे चटसे कह दिया कि "बेटा आपसमें बाँट लो।" बस इसी आज्ञाके अनुसार पाँचों भाइयोंने द्रौपदीसे विवाह कर लिया। जब धीरे धीरे यह ख़बर धृतराष्ट्रको मिली तब उसने अपने पास बुलाकर इन्हें खाण्डव प्रस्थ (कौरव राज्यके पश्चिमके जंगली प्रदेश) का राज्य दे दिया।

इस प्रदेशमें इन्होंने यमुनाके किनारे इन्द्रप्रस्थ नामक नगर बसाया। यह आधुनिक दिल्लीके पास था। इसके कुछ समय बाद द्वारिकाके यादव राजा श्रीकृष्णकी बहन सुभद्रासे अर्जुनका विवाह हुआ। इसीसे अभिमन्युने जन्म ग्रहण किया।

जब सब प्रकारसे युधिष्ठरने अपना प्रभाव जमा लिया तब उसने राजसूय (राज्याभिषेक) का उत्सव करनेका विचार किया और कृष्णकी सहायतासे मगधके राजा बृहद्रथके पुत्र जरासन्धको मार उसके स्थान पर उसके पुत्र सहदेवको राज्यका स्वामी बनाया। इसके बाद भाइयोंके विजययात्रासे लौटनेपर और कौरवों आदिके आजानेपर उक्त यज्ञोत्सवका कार्य प्रारम्भ हुआ। इसमें द्वारिकाके स्वामी और यदुवंशमणि श्रीकृष्णको सबसे श्रेष्ठ स्थान दिया गया। परन्तु चेदि (जबलपुर) के राजा शिशुपालसे कृष्णका यह सत्कार नहीं सहा गया। इससे कृष्णने उसे वहीं पर मार डाला। अन्तमें यज्ञ समाप्त होनेपर सब लोग अपने अपने स्थानोंको लौटे।

दुर्योधन भी इस यज्ञमें गया था। वहाँपर दिन दिन बढ़ते हुए पाण्डवोंके प्रतापको देख उसे बहुत ही चिन्ता हुई। उसने अपने मित्रों और भाइयोंसे सलाह कर और पितासे कह सुन एक द्यूतसभा बनवाई और युधिष्ठिरको जुआ खेलनेके लिये बुलवाया। सब तरहसे धर्मज्ञ होकर भी भाग्यकी कुटिलतासे युधिष्ठिर इस निमन्त्रणको अ-स्वीकार न कर सका और शकुनि आदिके छलसे सब राज, पाट, धन, दौलत, यहाँ तककी भाई, स्त्री, और निज शरीर तक, को दाव पर हार गया। इस पर दुश्शासन रनवासमेंसे केश पकड़कर द्रौपदीको

सभामें खींच लाया और उसे अनेक प्रकारसे बे इज़्ज़त करनेकी कोशिश की। परन्तु धृतराष्ट्रके सभामें आजानेसे यह गड़बड़ शान्त हुई। यद्यपि भीम आदि योद्धा अपनी और अपनी स्त्रीकी यह दशा देख मन ही मन क्रुद्ध हो रहे थे, तथापि बड़े भाई युधिष्ठिरकी आज्ञाके विना बोल नहीं सकते थे। अन्तमें धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको उनका राज्य आदि वापिस लौटा दिया और वे इन्द्रप्रस्थको रवाना हुए। परन्तु कपटी दुर्योधनने फिर भी युधिष्ठिरको जुआ खेलनेका निमन्त्रण दिया और भाग्यदोषसे एक वार इसका नतीजा देखकर भी उससे न रहा गया। अबके १२ वर्ष वनवास और १ वर्षके अज्ञात-वासकी बाज़ी लगाई गई। इसमें भी युधिष्ठिर हार गया। इस पर द्रौपदीसहित पाँचों भाई नगर छोड़ वनको चल दिये और १२ वर्ष तक वनमें इधर उधर ऋषियोंके आश्रमोंमें फिरते रहे। १३ वें वर्ष अज्ञातवासके लिये मत्स्यदेशके राजा विराट्के यहाँ नौकर हो गये। युधिष्ठिर राजाके साथ चौपड़ खेलने, भीम पाक-शालाका प्रबन्ध करने, अर्जुन राजकन्या उत्तराको नाचना व गाना सिखाने, नकुल घुड़सालकी देखभाल करने और सहदेव अन्य गो आ-दिक पशुओंकी देखरेख करनेको नियत हुए। द्रौपदी भी रानीकी दासी बन कर रहने लगी। परन्तु अभी तक बदकिस्मतीने उनका पीछा नहीं छोड़ा था। इसीसे विराट्का साला कीचक द्रौपदी पर आसक्त हो गया और उसे दुःख देने लगा। परन्तु भीमने वेष बदल कर उसे उसके भाइयोंके सहित मार डाला।

इधर दुर्योधन आदि पाण्डवोंका पता लगानेकी कोशिशमें थे; क्यों कि यदि उनका पता एक वर्ष पूर्व ही लग जाता तो उन्हें फिर पह-

-ढेकी तरह वनवास भोगना पड़ता। सुशर्मा और कर्णकी सलाहसे दुर्योधनने विराट्के देशमें सेना भेज कर राज्यकी गायोंको घेर लिया। जब यह वृत्तान्त राजाने सुना तब उसने भी युद्धकी तैयारी की और पाण्डवोंकी सहायतासे कौरवोंको हराकर गायें छुड़वा लीं। इस विजय पाने पर पाण्डव छुपे नहीं रह सके। परन्तु उस समय तक उनके अज्ञातवासकी अवधि पूर्ण हो चुकी थी। विराट्राजने अपनी कन्या उत्तराका विवाह अर्जुनके पुत्र अभिमन्युके साथ कर दिया।

इसके बाद राज्य लौटानेके लिये पाण्डवोंकी तरफ़से कौरवोंके पास दूत भेजा गया। परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। तब द्वारिका (गुजरात) के नायक स्वयं श्रीकृष्ण दुर्योधनको समझानेके लिये भेजे गये। इन्हें भी हठी दुर्योधनने कैद कर लेनेकी कोशिश की। आख़िर जब दुर्योधनने बिलकुल ही हिस्सा देनेसे इनकार कर दिया तब भारतका वह जगत्प्रसिद्ध और अपूर्व युद्ध हुआ कि जिसकी जोड़का युद्ध सुननेमें नहीं आया। यह युद्ध दिल्लीके उत्तर कुरुक्षेत्रमें १८ दिन तक हुआ था और उस समयके प्रत्येक प्रसिद्ध राजाने कौरवों अथवा पाण्डवोंकी तरफ़से इसमें भाग लिया था। इस युद्धमें १८ अक्षौहिणी सेना सम्मिलित हुई थी। नीचे हम एक नकशा देते हैं जिससे मालूम होगा कि उस समय सेनाका विभाग किस तरह होता था—

	पत्ति	सेना-मुख	गुल्म	गण	वाहिनी	पृतना	चमू	अनीकिनी	अक्षौहिणी
हाथी	१	३	९	२७	८१	२४३	७२९	२१८७	२१८७०
रथ	१	३	९	२७	८१	२४३	७२९	२१८७	२१८७०
घोड़े	३	९	२७	८१	२४३	७२९	२१८७	६५६१	६५६१०
पैदल	५	१५	४५	१३५	४०५	१२५५	३६४५	१०९३५	१०९३५०

इस हिसाबसे १८ अक्षौहिणीमें १७,७१,४७० हाथी, १७,७१,४-७० रथ, ५३,१४,४१० घोड़े और ८८,५७,३५० पैदल होने चाहिये। परन्तु मेगास्थनीज़के भारतवर्षीय वर्णनसे प्रकट होता है कि रथोंमें सारथीके सिवाय दो योद्धा और हाथी पर महावतके अलावा तीन सिपाही और बैठते थे। अतः उपर्युक्त हाथियों परके तीनके हिसाबसे ५३,१४,४१०, और रथोंपरके दोके हिसाबसे ३५,४२,९४० योद्धा और होते हैं। इस हिसाबसे महाभारत युद्धमें सारथियों और महावतों आदिके अलावा

तीनके हिसाबसे	१७,७१,४७० हाथियोंके	५३,१४,४१० सिपाही
दोके हिसाबसे	१७,७१,४७० रथोंके	३५,४२,९४० सिपाही
एकके हिसाबसे	५३,१४,४१० घोड़ोंके	५३,१४,४१० सवार
		८८,५७,३५० पैदल
		२,३०,२९,११०

दो करोड़ तीस लाख उनतीस हज़ार एक सौ दस योद्धा सम्मिलित थे। इस युद्धमें कौरवोंकी तरफ़से पहले दस दिन तक भीष्म पितामहने सेनाका संचालन किया था। उनके घायल होने पर पाँच दिन तक द्रोणाचार्यने और उसके बाद दो दिन कर्णने तथा उसके उपरान्त १८ वें दिन शल्यने सेनाके परिचालनका भार लिया था। जब युद्धसमाप्ति पर पहुँचा तब द्रोणके पुत्र अश्वत्थामाने पाण्डवोंके डेरों पर नैश आक्रमण करके इसकी पूर्णाहुतिका सम्पादन किया।

इस युद्धमें विजयी होकर पाण्डवोंने राज्य पर अधिकार कर लिया और हस्तिनापुरमें युधिष्ठिर गद्दी पर बैठा। यह बड़ा प्रतापी था।

(१) १७,७१,४७० महावत और १७,७१,४७० सारथी अलग थे।

इसने अश्वमेध यज्ञ भी किया। अन्तमें ५१ वर्षके करीब राज्यसुख भोग कर भाइयों सहित इस असार संसारको छोड़ हिमालयकी तरफ़ चला गया। इसके पीछे अर्जुनके पौत्र (अभिमन्युके पुत्र) परीक्षितको हस्तिनापुरका राज्य मिला।”

उपर्युक्त महाभारतके इतिहासको ध्यानपूर्वक पढ़नेसे प्रकट होता है कि उस समय भारतवर्ष सुखसमृद्धिसे पूर्ण था। लोग विद्वानोंका आदर करते थे। विद्यार्थी लोग बचपनसे ही गुरु-कुलमें रख दिये जाते थे। वहाँ पर वे ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक विद्या-ध्ययन करते थे और युवावस्था प्राप्त होने पर गुरुकी आज्ञा ले गृहस्था-श्रममें प्रविष्ट होते थे। स्त्रियोंको भी विद्या ग्रहण करनेकी मनाई नहीं थी। लोग विदुषी स्त्रियोंका आदर करते थे। विवाहमें कन्याकी भी सम्मति लेनेके अनेक उदाहरण मिलते हैं। बाल्यविवाहकी प्रथा और परदेका नियम भी प्रचलित न था। धनी और बड़े लोग एकसे अधिक विवाह भी किया करते थे। प्रजा राजाका बहुत मान रखती थी और राजा लोग भी हमेशा अपनी प्रजाके कल्याणका उद्योग करना अपना कर्तव्य समझते थे। इनकी सभामें बड़े बड़े विद्वान् और योद्धा रहा करते थे। राज्यका शासन धर्मशास्त्रानुसार (पंचायतों द्वारा) हुआ करता था। इतना सब कुछ होते हुए भी राजनीति, कूटनीति, और जुआ (द्यूत) आदिके प्रचारके भी उदाहरण जहाँ तहाँ मिलते हैं।

महाभारतकी तिथि ।

महाभारत युद्धके संवतके विषयमें पहले लिखा जा चुका है। यद्यपि इस विषयमें और भी अनेक आधुनिक मत प्रचलित हैं, तथापि अभी तक उनके सर्वसम्मत न होनेसे यहाँपर उनका उल्लेख करना अनावश्यक है।

इस युद्धके प्रारम्भके मास और तिथिके विषयमें भी अभी तक बहुत वादविवाद चला आता है। इसका कारण महाभारतके भिन्न भिन्न स्थलोंपर लिखे भिन्न भिन्न आशयके श्लोक ही हैं; परन्तु यहाँपर हम उनका उल्लेख न कर प्रचलित प्रथाके आधार पर उक्त युद्धकी तिथि आदिके निर्णय पर विचार करते हैं।

महाभारतमें अनुशासनपर्वके १६७ वें अध्यायमें लिखा है:—

"उषित्वा शर्वरीः श्रीमान् पंचाशन्नगरोत्तमे।
समयं कौरवाग्र्यस्य सस्मार पुरुषर्षभः ॥ ५ ॥
सनिर्ययौ गजपुरात् याजकैः परिवारितः।
दृष्ट्वा निवृत्तमादित्यं प्रवृत्तं चोत्तरायणं ॥ ६ ॥"

अर्थात्—(जब १८ दिन तक युद्ध करनेके बाद भीष्मपितामहसे आज्ञा लेकर महाराज युधिष्ठिर अपने नगरको रवाना हुए थे, तब पितामहने आज्ञा दी थी कि उत्तरायण सूर्य होनेपर मैं प्राण विसर्जन करूँगा। उस समय तुम यहाँ आजाना। इसी आज्ञाके अनुसार) ५० रात तक नगरमें रहनेपर भीष्मके साथ किया हुआ वादा युधिष्ठिरको

याद आया और सूर्यको उत्तरायणकी तरफ़ लौटा हुआ देख वह हस्तिनापुरसे ब्राह्मणोंको साथ ले रवाना हुआ।

१८ दिन तो महाभारत युद्ध हुआ और बादमें ५० रात युधिष्ठिर हस्तिनापुरमें रहा। इनको जोड़नेसे युधिष्ठिरके वापिस लौटने तक कुल ६८ ही रातें होती हैं। इसकी पुष्टिमें उसी स्थल परके भीष्मके ये वचन उद्धृत किये जा सकते हैं:—

"दिष्टया प्राप्तोसि कौंतेय सहामात्यो युधिष्ठिर!
परिवृत्तो हि भगवान् सहस्रांशुर्दिवाकरः ॥ २६ ॥
अष्टपंचाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः।
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा ॥ २७ ॥
माघोयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर!
त्रिभागशेषः पक्षोयं शुक्लो भवितुमर्हति ॥ २८ ॥"

अर्थात—हे युधिष्ठिर! बड़े हर्षकी बात है कि तुम मय मंत्रियोंके ठीक समय पर आगये हो। भगवान् सूर्य भी उत्तरायणकी तरफ़ लौट गये हैं। तथा हे युधिष्ठिर! नुकीले तीरों पर सोते हुए मुझे ५८ रातें बीत चुकी हैं; जो कि मेरे लिए १०० वर्षके समान थीं। अब पवित्र माघका महीना भी आ गया है जिसके तीन भाग अभी बाकी हैं। तथा इस समय शुक्ल पक्ष भी है। अतः अब मैं शरीर छोड़ता हूँ। ऐसा कह कर उसी दिन भीष्म पितामहने स्वर्गको प्रयाण किया।

उपर्युक्त श्लोकोंसे भी महाभारत युद्ध प्रारम्भ होनेके ६८ रात्रियों बाद भीष्मका स्वर्गारोहणकाल आता है; क्यों कि युद्धारम्भसे १० दिन

(१) भीष्मपर्व, अध्याय १२० श्लोक ५१–५३।

तक तो उक्त पितामहने युद्धका संचालन किया था और उसके बाद वे ५८ रात तक शरशय्यापर पड़े रहे तथा ५९ वें दिन उन्होंने प्राण त्याग किया। इस हिसाबसे अमान्त मास मानकर यदि मार्गशीर्ष शुक्ला १ से महाभारतके युद्धका प्रारम्भ मानें तो मार्गशीर्ष शुक्ला १० के दिन तक तो भीष्मने युद्ध किया और उसी दशमीकी रात्रिसे लेकर माघशुक्ला ७ की रात्रितक उन्हें शरशय्या पर पड़े ५८ रात्रियाँ बीत गईं तथा दूसरे दिन माघशुक्ला ८ को उन्होंने देहत्याग किया। आज भी हमारे यहाँ प्रचलित प्रथाके अनुसार माघ शुक्ला ८ (अष्टमी) ही भीमाष्टमीके नामसे प्रसिद्ध है।

उपर्युक्त श्लोकोंमें उसदिन (भीष्मकी मृत्युके दिन) माघ महीनेके तीन भागोंका शेष होना लिखा है, सो अमान्तमास मान लेनेसे शुक्ला ८ तक महीनेका एक ही भाग समाप्त होता है और तीन भाग शेष रह जाते हैं। इस प्रकार मार्गशीर्ष शुक्ला १ से मार्गशीर्ष कृष्णा ३ तक (अर्थात् १८ दिन) महाभारत युद्ध हुआ था। अतः उक्त युद्धकी मुख्य मुख्य घटनाओंका समय इस प्रकार होगाः—

घटना	मास	पक्ष	तिथि
भारतयुद्धका प्रारम्भ	मार्गशीर्ष	शुक्ला	१
भीष्मका शरशय्याग्रहण	,,	,,	१०
राजा भगदत्तकी मृत्यु	,,	,,	११
अभिमन्युकी मृत्यु	,,	,,	१३
जयद्रथवध और घटोत्कचकी मृत्यु	,,	,,	१४
द्रोणकी मृत्यु	,,	,,	१५
कर्णकी मृत्यु	मार्गशीर्ष	कृष्णा	२
शल्य, शाल्व, शकुनि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, दुर्योधन और द्रौपदीके ५ पुत्रोंकी मृत्यु	,,	,,	३

परन्तु यदि महाभारतयुद्धसे भीष्मके स्वर्गारोहण तकके समय—इन ६८ दिनों—में यदि कोई तिथि घटी बढ़ी होगी तो उक्त घटनाओंका समय केवल एक दिन आगे पीछे जा सकेगा।

हम पहले लिख चुके हैं कि मगधके चन्द्रवंशी राजा जरासंधको भीमसेनने मार डाला और उसका राज्य उसके पुत्र सहदेवको मिला। परन्तु महाभारत युद्धमें सहदेवके मारे जाने पर उसका उत्तराधिकारी सोमाधि गिरिव्रजका राजा हुआ। उसके वंशमें श्रुतश्रवा आदि कई राजा हुए।

विष्णु आदि पुराणोंमें इन बृहद्रथवंशी राजाओंकी संख्या २१ लिखी है। परन्तु मत्स्यमें ३२ दी है।

इस वंशके अन्तिम राजा रिपुंजयको मार कर उसके मन्त्री शुनक (पुलक) ने अपने पुत्र प्रद्योतको राज्यका स्वामी बनाया।

उसके वंशमें पाँच पीढ़ी तक राज्य रहा। उसके बाद शिशुनाग वंशके १० राजा हुए। इनका इतिहास आगे लिखा जाता है।

शिशुनाग-वंश।

[विक्रम संवत् पूर्व ५८५ (ईसवी सन् पूर्व ६४२) से वि० सं० पूर्व ३१५ (ई० स० पूर्व ३७२) तक।]

इस वंशका राज्य भारतमें ईसासे करीब ६०० वर्ष पूर्व था। परन्तु अब तक इसका विशेष वृत्तान्त न मिलनेके कारण पुराणों और बौद्ध-ग्रथोंके आधार पर ही हम इस वंशके राजाओंका इतिहास लिखनेकी चेष्टा करते हैं।

(१) मत्स्यपुराण, अध्याय २७१।

(२) पुराणोंमें इनका राज्यकाल १००० वर्ष लिखा है।

(३) पुराणोंमें इनका राज्य १३८ वर्ष दिया है।

पुराणोंमें इस वंशके १० राजाओंके नाम मिलते हैं। इनमेंके सबसे पहले राजाका नाम शिशुनाग लिखा है। इसीके नामसे यह वंश प्रसिद्ध हुआ था। इस वंशके राजाओंका राज्य मगध (दक्षिणी बिहार) पर था।

वायुपुराणमें इस वंशका राज्यकाल ३६२ और मत्स्यमें ३६० वर्ष लिखा है।

१ शिशुनाग।

इस वंशमें सबसे प्रथम राजा यही हुआ था और इसीके नाम पर इस वंशका नामकरण होना प्रकट होता है।

मत्स्य और वायु पुराणमें इसका ४० वर्ष राज्य करना लिखा है। इसकी राजधानी राजगृह (गयाके पास) थी। स्मिथने लिखा है कि यह काशीका राजा था और वहींसे आकर इसने राजगृहमें अपना राज्य जमाया था। इसका राज्यारोहणकाल वि० स० से ५८५ (ई० स० से ६४२) वर्ष पूर्व माना जाता है।

२ शाकवर्ण।

यह शिशुनागका उत्तराधिकारी था। वायुपुराणमें इसका नाम शाकवर्ण (शकवर्ण) और मत्स्य तथा विष्णुपुराणमें काकवर्ण लिखा है। मत्स्य और वायुपुराणमें इसका राज्यकाल ३६ वर्ष दिया है।

हर्षचरितमें[1] लिखा है:—

---

(१) हर्षचरित, षष्ठ उछ्वास, पृ० ४७७।

"काकवर्णः शैशुनागिश्च नगरोपकण्ठे कण्ठे निचकृते निस्त्रिशेन।"[1]

अर्थात्—शिशुनागवंशी काकवर्णको किसीने नगरके पास मार डाला।

३ क्षेमधर्मा।

इसका नाम भी मत्स्य, वायु, विष्णु और ब्रह्माण्ड पुराणोंमें मिलता है। इन्हींमें इसके नामके क्षेमवर्मा, और क्षेमकर्मा आदि पाठान्तर भी मिलते हैं। मत्स्यपुराणमें इसका राज्यसमय ३६ और वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणमें २० वर्ष लिखा है।

४ क्षत्रौजा।

वायु, विष्णु और ब्रह्माण्ड पुराणमें इसका नाम क्षत्रौजा मिलता है। तथा पहले व पिछले पुराणोंमें इसका समय ४० वर्ष लिखा है। भागवतमें इसका नाम क्षेत्रज्ञ है। परन्तु मत्स्यपुराणकी भिन्न भिन्न प्रतियोंमें इसके नाम व राज्यवर्ष इस प्रकार दिये हैं:—

क्षेमजित् ३६, क्षेमार्चिः ४०, क्षेमवित् २४।

५ बिम्बिसार।

ब्रह्माण्ड और भागवतमें इसका नाम विधिसार, विष्णुमें विधिसार और विम्भिसार, वायुपुराण, महावंश व अशोकावदानमें बिम्बिसार, मत्स्यमें बिन्दुसेन या विन्ध्यसेन और परिशिष्टपर्वमें श्रेणिक लिखा है। इसी प्रकार मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्डपुराणमें इसका राज्यकाल २८ और महावंशमें ५२ वर्ष लिखा है।

महावंशमें लिखा है, कि यह मगधका राजा और बुद्धका मित्र था, तथा आयुमें उस (बुद्ध) से ५ वर्ष छोटा था। इसने ५२

(१) टर्नोरका संपादित महावंश, अध्याय २।

वर्ष राज्य किया और अन्तमें यह अपने पुत्र अजातशत्रुके हाथसे मारा गया ।

इस (बिंबिसार) के दो विवाह हुए थे । एक कोशलके राजाके यहाँ और दूसरा लिच्छवि वंशमें। इसी लिच्छवि वंशकी स्त्रीसे अजातशत्रुका जन्म हुआ था ।

डुल्वने लिखा है कि बिम्बिसारने अपने पिताके विजेता अङ्गदेश (मुंगेर—बिहार) के स्वामी ब्रह्मदत्तको जीत कर उसकी राजधानी चम्पापर अधिकार कर लिया था और भट्टियकी मृत्युपर्यन्त वहाँ रहकर तब वह अपनी राजधानी राजगृहको लौटा था ।

प्रसिद्ध जैन तीर्थङ्कर महावीर भी इसके समकालीन थे और इन पर भी इस राजाकी विशेष श्रद्धा थी । ऐसा भी लिखा मिलता है कि अपनी अन्तिम अवस्थामें इसने राज्यप्रबन्ध अपने प्रियपुत्र अजातशत्रुको सौंप दिया था । परन्तु उसने राज्यके लोभसे इसे मार डाला। सम्भव है, यह कथा कल्पित हो ।

उपर्युक्त वृतान्तसे विदित होता है कि शायद इस वंशमें पहला प्रतापी राजा यही हुआ होगा । इसीने नवीन राजगृह बसाया था। मि० स्मिथ इसका राज्यारोहणकाल वि० सं० से ५२५ (ई० स० से ५८२) वर्ष पूर्व अनुमान करते हैं ।

६ अजातशत्रु ।

यह बिम्बिसारका पुत्र था । कथाओंसे प्रकट होता है कि यद्यपि योग्य समझकर इसके पिताने अपने जीते जी ही इसे राज्याधिकार

---

(१) बफ़की क्रोनोलौजी, पृ० ५ ।

(२) स्मिथकी ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री, ऑफ इण्डिया, पृ० ७० ।

दे दिया था, तथापि इसने लोभमें पड़कर उसे मार डाला। नहीं कह सकते कि इस कथामें कितना सत्य है।

महावंशमें इसका राज्यारोहणकाल (गौतम) बुद्धनिर्वाणसे ८ वर्ष पूर्व माना है।

सीलोनवालोंके लेखानुसार बुद्धका निर्वाण ईसवी सन्से ५४४ वर्ष पूर्व मान उसमें ८ और जोड़नेसे इस घटनाका समय ई० स० से ५५२ (विक्रम संवत्से ४९५) वर्ष पूर्व सिद्ध होता है।

अजातशत्रु पहले बौद्धमतानुयायियोंका कट्टर विरोधी था और उन्हें कठोरसे कठोरतर दण्ड दिया करता था। परन्तु अन्तमें बुद्धका उपदेश सुन यह स्वयं भी बौद्ध हो गया।

बौद्धोंका अनुमान है कि बुद्धके चचेरे भाई देवदत्तने ही इसे पिताको मार राज्यपर कब्ज़ा करने व बौद्धोंको दण्ड देनेके लिये उभारा था, क्यों कि देवदत्त बुद्धका कट्टर विरोधी था और इसी लिये उसने अपना अलग ही एक सम्प्रदाय चलाया था। इस संप्रदायके अनुयायी पहलेके बुद्धोंको मानते हुए भी गौतमको बुद्ध नहीं मानते थे। परन्तु मि० स्मिथ इन कथाओंको धर्मद्वेषके कारण लिखा मानते हैं।

फ़ाहियानने ईसवी सन् ४०५ के निकट अपने श्रावस्तीके वर्णनमें इस संप्रदायका उल्लेख इस प्रकार किया है:—

"देवदत्तके अनुयायियोंके भी संघ हैं। ये पूर्वके तीनों बुद्धोंकी पूजा करते हैं, केवल शाक्यमुनि बुद्धको नहीं मानते।"

सातवीं शताब्दीके चीनी यात्री हुएन्त्संगने भी इस सम्प्रदायके मठोंका कर्ण सुवर्ण (बंगाल) में होना लिखा है।

---

(१) स्मिथकी ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ४७–४८।

इससे प्रकट होता है कि ईसाकी सातवीं शताब्दी तक भी उक्त सम्प्रदाय विद्यमान था।

प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर महावीर भी अजातशत्रुके राज्यसमय विद्यमान थे और वैशाली (गंगाके उत्तर) के लिच्छवि राजघरानेमें जन्म लेनेके कारण अजातशत्रुकी माके रिश्तेदार थे।

सामञ्ञफलसुत्तं नामक बौद्धधर्मकी पुस्तकमें बुद्ध और अजातशत्रुके समागमका वर्णन दिया है और यह भी लिखा है कि इस (अजातशत्रु) ने स्वयं भी अपने कर्मोंके प्रायश्चितके लिये बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था।

हम इसके पिताके इतिहासमें उसके दो विवाह होना लिख चुके हैं। उस (बिम्बिसार) के मरनेपर इसकी सौतेली माँ कोशल-राजकन्या भी अपने पतिके विरहमें परलोकको प्रयाण कर गई। इसके बाद इसके मामा कोशल राजने अजातशत्रुपर चढ़ाई कर दी। परन्तु अन्तमें इन दोनोंके आपसमें सुलह हो गई और इसीके प्रमाणस्वरूप कोशलराजने अपनी कन्याका विवाह इसके साथ कर दिया।

इससे अनुमान होता है कि सम्भवतः इसने अपने शत्रुपर विजय पाई होगी; क्योंकि उसी समयसे कोशलवाले इसकी प्रधानता स्वीकार करने लग गये थे, और ईसासे पूर्वकी चौथी शताब्दीमें कोशल देश भी मगधवालोंके अधीन हो गया था।

अजातशत्रुने लिच्छवियोंकी राजधानी वैशाली (तिरहुत) पर भी अधिकार कर लिया था।

---

(१) डॉयोलौग्ज ऑफ दि बुद्ध (१[illegible]९९) पृष्ठ ९४ ।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे प्रकट होता है कि उस समय गंगासे हिमालय तक इसका अधिकार फैला हुआ था।

लिच्छवियोंको दबानेके लिये इसने गंगा और सोनके संगमके निकट पाटलि नगर (पाटलिपुत्र[1]) में एक किला भी बनवाया था।

मत्स्यपुराणमें इसका राज्यकाल २७, वायुमें २५ और ब्रह्माण्डमें ३५ वर्ष लिखा है।

इसीके समय कोशलके राजा वीरुधकने कपिलवस्तुपर हमला कर शाक्योंका संहार किया था[2]। उपालि, काश्यप, आनन्द आदिकोंने राजगृहमें बौद्ध धर्मकी सभा भी इसीके राज्यसमय की थी[3]।

हेमचन्द्ररचित परिशिष्टपर्वमें इसका नाम कूणिक लिखा है। मि० स्मिथ इसका राज्यारोहणकाल ईसवी सन्‌से करीब ५५४ (वि० सं० से ४९७) वर्ष पूर्व अनुमान करते हैं।

मथुराके पाससे एक मूर्ति मिली थी; जो अब वहींके अजायबघरमें रक्खी हुई है। इस मूर्तिके चारों तरफ़ फलकपर तीन पंक्तियोंका लेख खुदा हुआ है। पहली और अन्तिम पंक्ति क्रमशः मूर्तिके दाईं और बाईं तरफ़ खुदी है तथा बीचकी लाइन पैरोंके बीचमें है।

मि० वोगसने इनको इस प्रकार पढ़ा था:—

(१) कथासरित्सागरमें लिखा है कि अपनी रानी पाटली (राजा महेन्द्रवर्माकी पुत्री) की प्रार्थनासे राजा पुत्रकने यह नगर बसाया था। इसीसे इसका नाम पाटलीपुत्र हुआ।

(२) स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ३६–३७।

(३) डफ़, क्रोनोलौजी ऑफ इण्डिया, पृ० ६।

(४) जरनल बिहार एण्ड उरीसा रिसर्च सोसाइटी, दिसंबर १९१९।

'[नि] भदपुगरिना [क]...[ग] अठ...पि...कुनि [क] ते वासिना [गोमितकेन] कता'

अर्थात्—कुनिकके शिष्य भदपुगरिन गोमतिकने बनाया।

परन्तु श्रीयुत जायसवालने इस लेखको इस प्रकार पढ़ा है:—

'सेनिअज सत्रु राजो सिरि
४,२० (थ) १० (द) ८ (हियाभि)
कुनिक सेवसि—नागो मगधानं राजा'

अर्थात्—मगधराज अजातशत्रु श्री कुनिक।

अतः श्रीयुत जायसवाल इन मूर्तियोंको मौर्यकालसे पहलेकी ही अनुमान करते हैं।

मि० स्मिथ भी इन मूर्तियोंको मौर्य-कालसे पहलेकी ही मानते हैं।

७ दर्शक।

पुराणोंसे पता चलता है कि यह अजातशत्रुका उत्तराधिकारी था। इसके दर्भक, हर्षक, दशक, वंशक आदि नाम भी मिलते हैं। इसका राज्यकाल मत्स्य और वायुपुराणमें क्रमशः २४ और २५ वर्ष लिखा है। तथा ब्रह्माण्डपुराणमें ३५ वर्ष दिया है।

कुछ विद्वानोंका मत है कि प्रसिद्ध जैनतीर्थंकर महावीर इसके समय तक भी विद्यमान् थे; परन्तु नहीं कह सकते यह कहाँतक ठीक हैं। क्यों कि महावीरकी मृत्यु ई० सनसे ५२७ वर्ष पूर्व मानी गई है।

महावीर तीर्थंकरका देहान्त पावा (पटना) में हुआ था।

भासके 'स्वप्नवासवदत्ता' नामक नाटकमें इस राजाका वर्णन है। उससे प्रकट होता है कि दर्शक मगधका राजा था और इसकी बहिन

(१) डफ़, क्रोनोलोजी, पृ० ५।

पद्मावतीका विवाह कौशाम्बीके राजा उदयनसे हुआ था। इसी दर्शकने सहायता कर उदयनके गये हुए राज्यको पीछा उसे दिलवा दिया।

उक्त नाटकका रचनाकाल ईसवी सन्की तीसरी शताब्दी अनुमान किया जाता है[1]।

स्मिथने इसका राज्यारोहणकाल ई० स० से ५२७ (वि० सं० से ४७०) वर्ष पूर्व अनुमान किया है।

इसीके समय पर्शियाके राजा डेरियस (ईसवी सन् पूर्वसे ५२१ से ४८५ तक) ने ई० स० से ५१६ वर्ष पूर्वके निकट हिरात, कन्धार सिन्ध, और उत्तर पश्चिमी पंजाबपर अपना अधिकार कर लिया था। बहुतसे विद्वान् इस घटनाका बिम्बिसारके समय होना अनुमान करते हैं।

८ उदयाश्व।

पुराणों और बौद्धग्रन्थोंमें इसके उदायी, उदासी, उदयिभद्दक, उदांभि और अजय आदि नाम मिलते हैं। मत्स्य और वायुपुराणमें इसका राज्यकाल ३३, ब्रह्माण्डमें २३ और महावंशमें १६ वर्ष लिखा है।

इसीने अपने राज्यके चौथे वर्ष पाटलिपुत्रके निकट कुसुमपुर नामका नगर बसाया था। वायुपुराणसे भी इस बातकी पुष्टि होती है।

सिंहलके और दूसरे बौद्ध लेखकोंने अपने ग्रन्थोंमें दर्शकका नाम नहीं लिखा है। उन्होंने उदयाश्वको ही अजातशत्रुका उत्तराधिकारी माना है।

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ३९।

विन्सैण्ट स्मिथ इसका राज्यारोहणकाल ईसवी सन्‌से ५०३ (वि० सं० से ४४६) वर्ष पूर्व अनुमान करते हैं।

सन्‌ १८१२ में पटनेके पाससे दो मूर्तियाँ मिली थीं। ये आजकल कलकत्तेके अजायब घरमें 'भरहुत गैलरी' नामक कमरेमें रक्खी हैं। इन मूर्तियोंके दुपट्टेकी कन्धोंके नीचेकी चुन्नटपर लेख खुदे हैं। इनमेंसे पहली बे सिरवाली मूर्तिके लेखको कनिंघहाम साहबने इस प्रकार पढ़ा था:—

'यखे सनतनन्द' (या—भरत)

और दूसरीको इस प्रकार:—

'यहे अचु सतिगित' (या—सनिगिक)

इन्हींके आधार पर उक्त साहबने इन मूर्तियोंको यक्षोंकी मूर्तियाँ अनुमान किया था और इनके अक्षरोंको अशोकके बादके अक्षर माना था।

परन्तु श्रीयुत जायसवालने इन परके लेखोंको क्रमशः इस प्रकार पढ़ा है:—

पहली मूर्तिका लेख—'भगे अचो छोनिधिसे'

(अर्थात्—पृथ्वीके स्वामी महाराज अज)

दूसरी मूर्तिका लेख—'सतखते वतनन्दि'

(अर्थात्—सम्राट् वर्तिनन्दि)

---

(१) आर्कियॉलाजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑफ इंडिया, जिल्द १५, पृ० २–३।

(२) जनरल बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, मार्च १९१९।

भागवतमें शिशुनागवंशी उदयाश्वके स्थान पर 'अज' और उसके पुत्र नन्दिवर्धनको 'अजेय' लिखा है। अतः जायसवाल महाशय पूर्वोक्त मूर्तिको इसी उदयाश्वकी अनुमान करते हैं।

इसी प्रकार वायुपुराणमें नन्दिवर्धनके स्थानमें 'वर्तिवर्धन' का नाम होनेसे वे 'वर्तिनन्दि' लेखवाली मूर्तिको उदयाश्वके पुत्र नन्दिवर्धनकी अनुमान करते हैं।

इन दोनों मूर्तियों पर मौर्यकालीन पत्थरके स्मारकोंके समान ही चिकनाहटके होनेसे उनका अनुमान है कि ये मूर्तियाँ और इन परके लेख अशोकसे पीछेके नहीं हो सकते; क्योंकि बादकी पत्थरकी बनी मूर्तियाँ आदिपर ऐसी चिकनाहट नहीं पाई जाती है। अतः उनके मतानुसार ये मूर्तियाँ और लेख इन्हीं राजाओंके समयके होने चाहिए।

९ नन्दिवर्धन।

मत्स्यपुराणमें इसका राज्यकाल ४० और वायु तथा ब्रह्माण्डमें ४२ वर्ष दिया है। परन्तु महावंशमें और आशोकावदानमें इसके स्थानमें अनिरुद्धक और मुण्ड लिखा है। और महावंशमें राज्यकाल केवल ८ वर्ष ही दिया है। इसकी मूर्तिका वर्णन हम उदयाश्वके इतिहासमें कर चुके हैं। इसका राज्यारोहण ई० स० से ४७० (वि० सं० से ४१३) वर्ष पूर्व माना गया है।

उदयगिरिसे जैन राजा खारवेल महामेघवाहनका एक लेख मिला है। इसका संशोधित संस्करण जायसवाल, और बनर्जीने छपवाया है।

(१) जरनल बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, जिल्द ३ (दिसंबर १९१७) पृ० ४२५-५०७।

इससे प्रकट होता है कि, "खारवेलने राजगृहके राजा पुष्यमित्रको हराकर मथुराकी तरफ़ भगा दिया था। यह पुष्यमित्र शुङ्गवंशका था। इसको बृहस्पति भी कहते थे। खारवेलने अपने राज्यके ५ वें वर्ष एक नहरकी मरम्मत करवाई थी जिसको नन्दने उस समयसे ३०० वर्ष पूर्व बनवाया था। इसी खारवेलका १३ वाँ राज्यवर्ष मौर्य संवत् १६५ (ई० स० पूर्व १५७) में था।" मौर्य संवत्का आरम्भ ई० स० से ३२२ वर्ष पूर्व माना जाता है। अतः खारवेलके राज्यका आरम्भ मौर्य संवत् १५२ और ई० स० से १७० वर्ष पूर्वमें हुआ होगा। तथा इसके राज्यका ५ वाँ वर्ष (मौर्य संवत् १५७) ई० स० पूर्व १६५ में पड़ा होगा। इसके ३०० वर्ष पूर्व अर्थात् ई० स० पूर्व ४६५ (वि० सं० पूर्व ४०८) में नन्दराजाने उक्त नहर बनवाई थी।

मि० विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि उक्त नहरका बनवानेवाला यही नन्दिवर्धन होगा और पुराणोंमें जहाँ पर शिशुनागवंशके पीछे नवनन्दोंका उल्लेख है वहाँ पर 'नव' शब्द नौ संख्याका बोधक न होकर नवीन या बादके नन्दोंका बोधक होगा। क्षेमेन्द्रने भी 'नन्दवर्धन' और महानन्दके लिये 'पूर्वनन्द' विशेषण प्रयुक्त किया है।

१० महानन्दि।

पुराणोंमें इसका ४३ वर्ष राज्य करना लिखा है। उन्हींके अनुसार यह इस वंशका अन्तिम राजा था। इसकी एक शूद्रा स्त्रीसे नन्द नामक पुत्र हुआ था। उसने इसके राज्य पर अधिकार कर इस वंशकी समाप्ति कर दी।

---

(१) आधुनिक अनुसन्धानसे खारवेलका राज्यारोहणकाल ई० स० से १७३ वर्ष पूर्व माना गया है।

गौतम बुद्ध।

जिस समय मगधपर शिशुनागवंशियोंका राज्य था उसी समय गोरखपुर परगनेके उत्तरके कपिलवस्तु नगरपर शाक्यवंशियोंका राज्य था।

इसी वंशके शुद्धोदन राजाके घरमें गौतमका जन्म हुआ था। इसकी कथा इस प्रकार है:—

शुद्धोदनके दो स्त्रियाँ थीं। परन्तु इनमेंसे किसीके भी बहुत समय तक कोई पुत्र नहीं हुआ। आख़िर वृद्धावस्थामें बड़ी रानीके गर्भ रहा और उस समयकी प्रचलित प्रथाके अनुसार प्रसूतिके लिये वह अपने पिताके घरको रवाना हुई। परन्तु मार्गमें ही लुंबिनीके कुंजमें पहुँचनेपर गौतमका जन्म हो गया। तब साथके लोग पुत्रसहित रानीको वापिस कपिलवस्तु ले आये। यहाँपर सातवें दिन रानीका देहान्त हो गया। इसपर गौतमके लालन-पालनका भार शुद्धोदनने अपनी छोटी रानीको सौंप दिया। बड़े होनेपर गौतम बहुत ही दयावान् निकले। दूसरेका दुःख देख इनका हृदय पसीज जाता था। ये हमेशा प्राणिमात्रके कल्याणार्थ चिन्ता किया करते थे। पुत्रकी यह दशा देख पिताने १८ वर्षकी अवस्थामें इनका विवाह इनकी मौसेरी बहन सुभद्रासे कर दिया। इससे इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस रात्रिको ही बुद्ध सोती हुई अपनी स्त्री और पुत्रके साथ ही राजपाट आदि छोड़ राजगृहकी तरफ़ रवाना हो गये और नगरके बाहर पहाड़ोंकी गुफाओंमें रहनेवाले संन्यासियोंसे दर्शनशास्त्रका अध्ययन करने लगे।

उसके बाद बुद्ध गयाके पासके वनमें उन्होंने छः वर्ष तक कठोर तपस्या की। परन्तु जब इससे भी उन्हें सन्तोष न हुआ तब वहाँसे उठकर वे अकेले निरंजना नदीके तटपर बोधि वृक्षके नीचे जा बैठे । यहीं पर उन्हें सुजाता नामकी एक ग्रामीण बालिका भोजन दे जाती थी । अन्तमें उन्होंने पवित्र जीवन और 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' के सिद्धान्तको ही सच्चे धर्मका सार निश्चित किया और उसी दिनसे वे बुद्ध (ज्ञानवान्) कहाने लगे। धीरे धीरे इनके मतका प्रचार बढ़ने लगा और उस समयके राजा लोग भी इनके उपदेशोंके सामने मस्तक झुकाने लगे । इनके शिष्योंकी संख्या भी दिनों दिन बढ़ने लगी। इनका पुत्र राहुल भी इनका अनुयायी हुआ । परन्तु शुद्धोदनने गौतमसे कह कर एक ऐसा नियम बनवाया कि आगेसे कोई बालक अपने माता पिताकी सम्मतिके विना संघमें न लिया जाये ।

इनके शिष्योंमेंसे आनन्द, उपाली, अनिरुद्ध और देवदत्त आदि प्रसिद्ध थे । इनमेंसे उपाली जातिका नाई था । परन्तु यह बड़ा प्रसिद्ध भिक्षु हुआ है और विनयपिटकके संबन्धमें इसके वचन आप्तवाक्य माने जाते हैं । किसी नियमके बाबत मतभेद हो जानेसे देवदत्त बुद्धका कट्टर विरोधी हो गया था । इसका वर्णन हम अजातशत्रुके वर्णनमें कर चुके हैं ।

पाँचवें वर्ष जब गौतमके पिताका ९७ वर्षकी अवस्थामें देहान्त हो गया तब इनकी विमाता प्रजापति और स्त्री यशोधरा आदि स्त्रियाँ पहले पहल भिक्षुनियाँ बनाई गईं और उनके लिये कुछ खास नियम

(१) महावग्ग १–५४ ।

रचे गये। छठे वर्ष कौशाम्बीसे लौट कर गौतमके राजगृह आने पर शिशुनागवंशी राजा बिम्बिसारकी रानी क्षेमा भी भिक्षुनी हो गई।

बारहवें वर्ष उन्होंने अपने पुत्र राहुलको 'महाराहुलसुत्त'का उपदेश दिया। उस समय इसकी अवस्था १८ वर्षकी थी। इसके दो वर्ष बाद २० वर्षकी अवस्थामें उसने भिक्षुसंघमें प्रवेश किया। उस समय उसे फिर 'राहुलसुत्त' का उपदेश दिया गया।

गौतम ३५ वर्षकी अवस्थामें बुद्ध हुए थे। उसके बाद वे ४५ वर्ष तक अपने निश्चित पथका उपदेश करते रहे। ८० वर्षकी अवस्थामें कुशी नगरमें इनका देहान्त हुआ।

अन्तमें इनके भस्मावशेषके ८ भाग किये गये और उनको मगधके राजा अजातशत्रुने, वैशालीके लिच्छवियोंने, कपिलवस्तुके शाक्योंने, इसी प्रकार और भी आसपासके लोगोंने आपसमें बाँट लिया और उनपर स्तूप आदि बनवाये। इनमेंसे कपिलवस्तुवाला भाग पिप्रावासे मिला है। यह जिस शिखरवाले गोलाकार प्यालेमें रक्खा गया था उसपर ब्राह्मी अक्षरोंमें "**......सलिल निधने बुधस भगवते.....**" लिखा हुआ है।

यह पिप्रावा शायद बस्ती ज़िलेके उत्तरमें नेपालकी तराईके पास है।

अबतक बुद्धका निर्वाणकाल ई० स० से ४८७ (वि०सं० से ४३०) वर्ष पूर्व माना जाता था, परन्तु अब खारवेलके लेखानुसार ई० स० से ५४४ या ५४५ (वि० सं० से ४८७ या ४८८) वर्ष पूर्व अनुमान किया जाता है। यही संवत् सीलोनकी पुस्तकोंमें भी माना गया है।

इस प्रकार बुद्धने ४५ वर्ष तक आत्मोन्नति, निष्काम पवित्र जीवननिर्वाह, सत्य पर विश्वास, सब प्राणियोंकी हितकामना आदिके सिद्धान्तोंका उपदेश किया। इनकी मृत्युके बाद पहले पहल महाकाश्यपके प्रस्तावसे अजातशत्रुके राज्यसमय बौद्ध धर्मकी एक बड़ी सभा की गई। इसमें आनन्द सहित ५०० भिक्षु एकत्रित हुए थे।

गौतम बुद्धकी मृत्युके करीब सौ वर्ष बाद वैशालीके भिक्षुओंने दस नियम प्रकाशित किये। इनमें भिक्षुओंको बिना उबली ताड़ी पीने और सोना चाँदी ग्रहण करनेकी आज्ञा दी गई थी। इस पर पश्चिम और दक्षिणके संघोंने इसका विरोध किया। पूर्वीय बौद्ध वैशालीवालोंकी तरफ़ रहे। इस झगड़ेका फैसला करनेके लिये ई० स० से ३७ वर्ष पूर्व ७०० भिक्षुओंकी एक सभा हुई। परन्तु इस सभाका निश्चय सर्वमान्य नहीं हुआ। इसीसे इस धर्मकी दो शाखाएँ हो गईं। एक उत्तरी–नैपाल, तिब्बत, चीन, आदिकी, और दूसरी दक्षिणी–लङ्का, बर्मा, स्याम आदिकी।

इस धर्मकी एक और बड़ी सभा अशोकके राज्यसमय पाटलिपुत्र (पटने) में हुई और उस सभाका कार्य ९ मास तक चला।

कनिष्कके समय भी ५०० अर्हतोंकी एक सभा हुई थी। यह उत्तरी सम्प्रदायवालोंकी थी।

अशोकके तेरहवें शिलालेखसे प्रकट होता है कि अशोकने एण्टिओचसके राज्य सीरियामें, टेलोमीके राज्य इजिप्टमें, अन्तिकके राज्य मैसिडोनियामें, मगस्के राज्य उत्तरी ऐफ्रिकामें और एलैक्जैण्डरके राज्य यपरसके देशमें, धर्मोपदेशक भेजकर बौद्धधर्मका प्रचार करवाया

था। अतः इस विषयपर विचार करनेसे अनुमान होता है कि ईसाई धर्म बौद्धधर्मकी ही छाया है।

आगे इन दोनों धर्मोंकी समानतासूचक बातें उद्धृत की जाती हैं:—

(१) ईसा मसीहके जन्मपर जिस प्रकार तारा दिखाई दिया था उसी प्रकार बुद्धके जन्मसमय भी पुष्य नक्षत्रका उदय हुआ[1] था।

(२) ईसामसीहके समय सीमियनकी तरह असितने आकर और बुद्धको देखकर उसके धर्मप्रचारक होनेकी भविष्यद्वाणी की थी।

(३) ईसामसीहके और बुद्धके बारह बारह प्रधान शिष्य थे[2]।

(४) जिस प्रकार बौद्धधर्म ग्रहण करनेके पूर्व जलसंस्कार आवश्यक होता है उसी प्रकार बपतिस्माके पहले भी होता है।

(५) बुद्धधर्म ग्रहण करने पर जिस प्रकार बुद्ध, धर्म, और संघमें विश्वास रखना पड़ता है उसी प्रकार, ईसाई धर्ममें दीक्षित होने पर पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा पर विश्वास रखना पड़ता है।

(६) दोनों धर्मोंमें दया आदिके सिद्धान्त भी एकसे हैं।

अब हम इस विषयमें कुछ पाश्चात्य विद्वानोंकी सम्मतियाँ उद्धृत करते हैं।

र्हेज डेविड साहब लिखते हैं कि "दोनों धर्मोंकी समानता यदि दैवसंयोगसे ही हुई हो तो कहना पड़ेगा कि यह एक अलौकिक घटना है और वास्तवमें यह दस हजार अलौकिक घटनाओंके समान है।"

रोमन कैथोलिक पादरी अब्बेहक जब पहले पहल तिब्बत पहुँचा और उसने लामाओंके कपड़े, पूजाके सामान, भजन और झाड़ फूँक

---

(१) नलक सुत्त। (२) महावग्ग १, ११, १।

आदि देखे तब उसने स्पष्ट ही स्वीकार किया था कि बौद्धोंकी और हमारी इसमें बिलकुल समानता है ।

मिस्टर अर्थरलिलीने और भी 'पापके स्वीकार आदि' की अनेक बातोंका विशद वर्णन कर इस समानताको स्वीकार किया है ।

बहुतसे तिब्बत-यात्री पादरियोंने दोनों सम्प्रदायोंकी उपर्युक्त समानताओंको देखकर लिखा है कि बौद्धोंने ये बातें ईसाइयोंसे ग्रहण की हैं । परन्तु ऐतिहासिक लोग इस बातको नहीं मान सकते; क्यों कि बुद्ध क्राइस्टसे करीब ५०० वर्ष पूर्व हुए थे और नालन्द (पटनेके निकट) के विश्वविद्यालय आदिका वर्णन पढ़नेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ईसाई धर्मके प्रचारसे बहुत पहले ही बौद्धधर्मने अच्छी उन्नति कर ली थी ।

श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्तने अपने 'भारतकी प्राचीन सभ्यताके इतिहास' में लिखा है कि अशोकके लेखोंसे प्रकट होता है कि उसने इजिप्ट और सीरिया आदिमें बौद्धधर्मोपदेशकों द्वारा उक्त धर्मका प्रचार करवाया था ।

इन उपदेशकोंने वहाँपर अपने बड़े बड़े समाज स्थापित किये थे। एलैक्जैण्ड्रियाके थेरापूटस और पैलैस्टाइनके एसेनीज जो कि यूनानियोंमें बड़े प्रसिद्ध आचार्य गिने जाते हैं वास्तवमें बौद्धसंघके अनुयायी ही थे।

इस बातको ईसाई विद्वान् डीनमेन्सल और डीनमिल्मेनने तथा दार्शनिक शैलिंग और शोपेनहारने भी निर्विवाद अङ्गीकार किया है ।

प्लीनी—जो कि ईसवी सन् २३ और ७९ के बीच हुआ था—लिखता है कि डैडसीके पश्चिमी किनारे पर, परन्तु समुद्रसे इतनी दूर

कि वे गन्दी हवाओंसे बचे रहें, ऐसेनीज लोग रहते हैं। वे लोग बड़े विरक्त होते हैं और स्त्रीप्रसंगसे दूर रहते हैं, तथा अपने पास धन दौलत भी नहीं रखते। अनेक लोग नित्य इनके पास जाते हैं और बहुतसे उनमेंसे जीवन-संग्रामसे दुःखी हो उनकी शरण लेते हैं। यद्यपि ये लोग सन्तानोत्पत्ति नहीं करते, तथापि हजारों वर्षोंसे इनका सम्प्रदाय विद्यमान है।

इससे प्रकट होता है कि अशोकके भेजे हुए उपदेशकों द्वारा बोए हुए बौद्धधर्मके बीजने उक्त देशोंमें उस समय तक खासी शाखाएँ फैला दी थीं और उक्त धर्मके अनुयायी ऐसेनीज लोग ईसा मसीहके समय तक भी यहूदियों द्वारा पूज्य दृष्टिसे देखे जाते थे।

इस प्रकार जब सीरिया और पैलेस्टाइनमें क्राइस्टके जन्मके पूर्व ही बौद्धधर्म प्रचलित हो चुका था, तब सम्भव है कि उसीके आधार पर ईसाई धर्मकी नींव रक्खी गई हो।

ईसाकी पाँचवी शताब्दीसे दसवीं शताब्दी तक समस्त मनुष्य जातिके आधेसे अधिक लोग बौद्धधर्मको मानने लगे थे और यद्यपि आजकल यह धर्म भारतसे उठ गया है, तथापि अब भी समस्त संसारमें करीब पचास करोड़, अर्थात् मनुष्य जातिके तीसरे हिस्सेके करीब, बौद्ध हैं।

बुद्ध-निर्वाण संवत्।

बुद्धके देहान्तसे जो संवत् प्रचलित हुआ वह बुद्ध-निर्वाण संवत्के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

---

(१) इण्डियन एण्टिकेरी, जि० १७, पृ० ३४३।

इसके बारेमें अनेक प्रकारकी सम्मतियाँ मिलती हैं:—

सीलोन[1], बर्मा, स्याम और आसामके लोग बुद्ध-निर्वाणका समय ई० स० से ५४४ (वि० सं० से ४८७) वर्ष पूर्व मानते हैं।

चीना लोगोंका मत है कि बुद्ध-निर्वाण ई० स० से० ६३८ (वि० स० से ५८१) वर्ष पूर्व हुआ था[2]।

चीनी यात्री फाहियानके लेखानुसार उक्त समय ई० स० से १०९७ (वि० सं० से १०४०) वर्ष पूर्व आता है।

हुएन्त्संगके लेखानुसार उक्त घटनाका ईसवीसन्‌से पूर्वकी चौथी शताब्दीमें होना पाया जाता है।

इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वानोंकी भी इस विषयमें भिन्न भिन्न सम्मतियाँ हैं। मिसेज डफ आदि इस घटनाका समय ई० स० से ४७७ वर्ष पूर्व अनुमान करते हैं। परन्तु अधिकतर विद्वानोंका मत है कि यह घटना ईसवी सन्‌से ४८७ (वि० सं० से ४३०) वर्ष पूर्व हुई थी। खारवेलके लेखके आधारपर मि० स्मिथने इस घटनाका समय ई० स० से ५४४ (वि० सं० से ४८७) वर्ष पूर्व माना है।

महावीर।

कुण्डग्रामके राजाका नाम सिद्धार्थ था और वह काश्यपवंशी ज्ञात्रिक क्षत्रिय कहलाता था। इसका विवाह वैशालीके राजा चेटककी बहन त्रिशलासे हुआ था और इसी चेटककी पुत्री मगधके राजा बिम्बिसारको ब्याही गई थी।

---

(१) कौपर्स इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जि० १, भूमिका, पृ० ३।

(२) यूजफुल टेबल्स, पृ० १६५।

त्रिशलाके गर्भसे वर्द्धमान (ज्ञातिपुत्र) ने जन्म लिया था। जब ये २८ वर्षके हुए तब इन्होंने राज, धन, स्त्री आदिको छोड़ दिया। एक वर्ष और एक महीने तक तो इन्होंने वस्त्र रक्खे। परन्तु बादमें उनका भी त्याग कर नग्न विचरने लगे और भिक्षा आदिक भी अंजलीमें ही लेकर खाने लगे। इसी प्रकार कठोर तपस्याके बाद तेरहवें वर्ष ग्रीष्मऋतुके चौथे पक्षमें—अर्थात् वैशाख शुक्लमें—दशमीके दिन जिम्भिक गाँवके बाहर साल वृक्षके नीचे इन्होंने श्रेष्ठ ज्ञान (कैवल्य) प्राप्त किया और उसके बाद इन्होंने अपने मतानुयायी भिक्षुओंका एक संघ स्थापन किया। ५८ वर्षकी अवस्थामें (वर्षाऋतुके सातवें पक्षकी अमावास्याको रात्रिमें अर्थात् कार्तिक मासके कृष्णपक्षकी अमावास्याको) पावा नगर (पटनाके समीप) में इनकी मृत्यु हुई।

मि० स्मिथने इनका वैशालीके लिच्छवि घरानेमें उत्पन्न होना लिखा है।

ये बुद्धके समकालीन थे; जैसा कि हम अजातशत्रुके वर्णनमें लिख चुके हैं। बौद्ध ग्रन्थोंमें कुण्डग्रामका नाम कोटिग्राम और महावीरको ज्ञातिपुत्रके बदले नातिपुत्र लिखा है तथा इन्हें निर्ग्रन्थों (निर्वस्त्रों साधुओं) का मुखिया माना है।

जैनकथाओंमें लिखा है कि महावीरकी मृत्युके दोसौ वर्ष पीछे जब मगधमें दुर्भिक्ष पड़ा, तब भद्रबाहु आचार्य अपने कई जैन साथियोंसहित वहाँसे कर्णाटककी तरफ चले गये।

इसके पीछे मगधवासी जैनियोंने अपने धर्मग्रन्थोंका निर्णय किया। इनमें ग्यारह अङ्ग और चौदह पूर्व माने गये। इन्हीं चौदह पूर्वोंको

बारहवाँ अङ्ग भी कहते हैं। कुछ समय बाद जब अकाल-निवृत्त हो गया और कर्नाटकसे जैन लोग वापिस लौटे तब उन्होंने देखा कि मगधके जैन साधु पीछेसे निश्चित किये धर्मग्रन्थोंके अनुसार श्वेतवस्त्र पहनने लगे हैं। परन्तु कर्नाटकसे लौटनेवालोंने इस बातको नहीं माना। इससे वस्त्र पहननेवाले जैन साधु श्वेताम्बर और नग्न रहने-वाले दिगम्बर कहलाये।

बहुतसे विद्वान् इन दोनों सम्प्रदायोंका ईसवीसन् ७९ या ८२ (वि० स० १३६ या १३९) में अन्तिम बार जुदा होना अनुमान करते हैं।

पहले पहल श्वेताम्बरोंने अपने ग्रन्थोंको वल्लभी (गुजरातमें) की सभामें लिपिबद्ध किया था। इसका समय ईसवीसन् ४५४ या ४६७ (वि० स० ५११ या ५२४) माना जाता है।

बहुतसे विद्वान् जैनधर्मको बौद्ध धर्मकी ही एक शाखा मानते थे। ईसवीसन्‌की सातवीं शताब्दीके चीनीयात्री हुएन्त्संगके लेखसे भी ऐसा ही प्रकट होता है। परन्तु मथुरासे मिली हुई जैन मूर्तियों परके लेखोंके आधार पर अब यह भ्रम दूर हो गया है। इन लेखोंमेंसे एक लेख शक संवत् ९ (ई० स० ८७=वि० स० १४४) का है। यह एक जैनमूर्तिके नीचे खुदा है। इससे प्रकट होता है कि यह मूर्ति जैनधर्मकी उपासिका विकटाने बनवाई थी।

(१) मि० स्मिथ इस घटनाका ईसवी सन्‌की दूसरी शताब्दीके प्रारम्भमें होना अनुमान करते हैं। उन्होंने महावीरका ४० वर्षकी अवस्थासे ७० वर्षकी अवस्था तक धर्म-प्रचार करना लिखा है।

एक लेखखण्ड बड़ली (अजमेर) से भी मिला है। इसमें "**वीराय भगवते चतुरशीति मिझमिका**" लिखा है। अर्थात् यह लेख वीर निर्वाणके ८४ वें वर्ष लिखा गया था। इससे प्रकट होता है कि ई०स० से ४४३ (वि० स० से ३८६) वर्ष पूर्व भी महावीर-का सम्प्रदाय अलग था।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि बौद्ध ग्रन्थोंमें इनका उल्लेख मिलता है। इससे भी सिद्ध होता है कि बुद्ध और महावीर समकालीन थे और इन दोनोंने दो भिन्नभिन्न सम्प्रदाय प्रचलित किये थे। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथके सिद्धान्तोंके आधार पर ही महावीरने अपना नया संप्रदाय खड़ा किया था।

वीर-निर्वाण संवत्।

महावीरकी मृत्युसे इस संवत्का प्रारम्भ माना जाता है। यह बहुधा जैनग्रन्थोंमें और कहीं कहीं लेखोंमें भी मिलता है।

श्वेताम्बर मेरुतुङ्गसूरिकी बनाई विचार-श्रेणीमें इस संवत्का और विक्रम संवत्का अन्तर ४७० दिया है।

नेमिचन्द्राचार्यने 'महावीरचरियं' में लिखा है कि वीर-निर्वाणसे ६०५ वर्ष और ५ महीने बाद शक राजा उत्पन्न होगा।

दिगंबर नेमिचन्द्ररचित 'त्रिलोकसार' में भी वीर निर्वाणसे ६०५ वर्ष और ५ महिने बाद शक राजाका होना लिखा है :—

"**पण छस्सयवस्सं पणमासजुदं गमिअवीर णिव्वुइदो।**
सगराजातो कक्की चदु-णव-तियमहिय सगमासं ॥८४८॥

(१) अर्थात् ई० स० से ५२७ वर्ष पूर्व। परन्तु मि० जैकोबी ई०स० से ४७७ वर्ष पूर्व मानते हैं।

परन्तु उक्त ग्रन्थके टीकाकार माधवचन्द्रने गलतीसे शककी जगह 'विक्रमाङ्क शक' लिख दिया; जिससे बहुतसे लोग भ्रममें पड़ गये हैं।

अतः विक्रम संवत्में ४७०, शक संवत्में ६०५ और ईसवी सन्में ५२७ जोड़नेसे उक्त वीर-निर्वाण संवत् आता है।

यतिवृषभ नामक दिगम्बर जैनाचार्यके 'त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति' नामक ग्रन्थमें—जो शककी चौथी शताब्दिके लगभगका बना हुआ प्राचीन ग्रन्थ है—दो मत दिये हैं। एकके अनुसार वीर-निर्वाणके ४६१ वर्ष बाद शकराजा हुआ और दूसरेके अनुसार ६०५ वर्ष और ५ महीने बाद[1]। इससे जान पड़ता है कि बहुत प्राचीन समयसे वीर-निर्वाणकालके सम्बन्धमें मतभेद चला आ रहा है। इस समय भी यह अच्छी तरहसे निर्णीत नहीं हुआ है। फिर भी पिछले मतकी ओर विद्वानोंका विशेष झुकाव है।

नन्द-वंश।

[वि० सं० पूर्व ३५६ (ई० स० पूर्व ४१३) से वि०सं० पूर्व २६८ (ई० स० पूर्व ३२५) तक।]

मत्स्यपुराणके २७२ वें अध्यायमें शिशुनागवंशका वर्णन करनेके बाद लिखा है:—

महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः।
उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तको नृपः॥ १७॥

---

(१) देखो जैनहितैषी, भाग १३, अंक १२, पृष्ठ ५३३।

ततः प्रभृति राजानो भविष्या शूद्रयोनयः ।
एकराट् स महापद्मो एकच्छत्रो भविष्यति ॥ १८ ॥
अष्टाशीति तु वर्षाणि पृथिव्याञ्च भविष्यति ।
सर्वक्षत्रमथोत्साद्य भाविनार्थेन चोदितः ॥ १९ ॥
सुकल्पादिसुताह्यष्टौ समाद्वादश ते नृपाः ।
महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात् ॥ २० ॥
उद्धरिष्यति कौटिल्यः समाद्वादशभिः सुतान् ।
भुक्त्वा मही वर्षशतं ततो मौर्यान् गमिष्यति ॥ २१ ॥

इससे प्रकट होता है कि महापद्मनन्दकी माता शूद्रा थी और इस (महापद्म) ने क्षत्रिय राजाओंका नाश कर ८८ वर्ष तक एकच्छत्र राज्य किया था। महापद्मके सुकल्प आदि आठ पुत्र हुए। उन्होंने केवल १२ वर्ष राज्य किया। इस प्रकार इन नव नन्दोंका राज्य १०० वर्ष तक रहा। इसके बाद चाणक्यने इनके राज्यको नष्ट कर मौर्य चन्द्रगुप्तको राज्य पर बिठला दिया।

जैनग्रन्थोंमें इनका राज्यकाल १५५ वर्ष लिखा है। परन्तु सुकल्पके भाइयोंके नाम नहीं मिलते हैं।

ग्रीक लेखकोंके लेखोंसे अनुमान होता है कि जिस समय ई० स० से ३२७ (विक्रम संवत्से २७०) वर्ष पूर्वमें मैसिडोनियाके महा प्रतापी राजा ऐलैक्ज़ैण्डरने भारत पर आक्रमण किया था उस समय

---

(१) भारतमार्तण्ड पं० गट्टूलालजीने इनके नाम इस प्रकार लिखे हैं:—

१ उदग्रधन्वा (उग्रधन्वा), २ तीक्ष्णधन्वा, ३ विकटधन्वा, ४ उत्कटधन्वा, ५ प्रकटधन्वा, ६ संकटधन्वा, ७ विषमधन्वा, और ८ शिखरधन्वा। (चाणक्यनी चतुराई, पृ० ९)

क्सैण्ड्रमस (Xandrames) का राज्य प्रासी जातिकी राजधानी पर था। यहाँ पर प्रासीसे पाटलीका और जातिसे पुत्रका तात्पर्य होना सम्भव है। अतः शायद उस समय पाटलिपुत्र पर अन्तिम नन्दका राज्य होगा[1]।

वैसे तो नन्दवंशी राजा लोग अपने द्रव्यके लिये कथाओंमें प्रसिद्ध ही हैं, परन्तु ग्रीक लेखकोंके लेख भी इस बातको पुष्ट करते हैं।

ईसवी सन्से ३२६ (वि० स० से २६९) वर्ष पूर्व जब ऐलैक्जैण्डरको व्यास नदी पर रुकना पड़ा, उस समय उसको एक बघेल राजाने पाटलिपुत्रके राजाका समाचार दिया था। उससे प्रकट होता है कि उस समय मगधाधिपतिकी सेनामें २०००० घोड़े, ३००० या ४००० के करीब हाथी, २००० रथ, और २००००० पैदल[2] थे।

महावंश नामक बौद्ध ग्रन्थसे और चीनी यात्री हुएन्त्संगके लेखोंसे भी इन राजाओंका समृद्धिशाली होना सिद्ध होता है।

ग्रीक लेखकोंके लेखोंके अनुसार प्रजा उस समयके राजासे अप्रसन्न थी। इसके उन्होंने दो कारण दिये हैं। एक तो उस समयके राजाका स्वभाव बहुत ख़राब था। दूसरा लोगोंका अनुमान था कि वह राजाका पुत्र न होकर नाईका पुत्र है और राजाके असली पुत्रोंका हक़ छीन कर राज्य दबा बैठा है। इससे भी पूर्वोल्लिखित पुराणोक्त इतिहासकी ही पुष्टि होती है[3]।

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ४०।

(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ४०।

(३) ,, ,, ,, ,, पृ० ४०—४१।

उदयगिरिसे कलिंगके जैन राजा श्रीखारवेल महामेघवाहनका एक प्राकृत लेख मिला है।[1] उसमें लिखा है कि उसने अपने राज्यके पाँचवें वर्ष एक नहरकी मरम्मत करवाई थी। यह नहर राजा नन्दके राज्यसमयसे बिलकुल बेकार पड़ी थी। आगे चल कर उसी लेखमें एक जगह फिर नन्दका उल्लेख[2] किया है। परन्तु मि० स्मिथ आदि विद्वान् इस नन्दको नन्दिवर्धन अनुमान करते हैं जैसा कि पहले उक्त राजाके इतिहासमें लिखा जा चुका है।

मत्स्यपुराणमें परीक्षितके जन्मसे १०५० वर्ष बाद महापद्म नन्दका राज्याभिषेक होना लिखा[3] है:—

महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्मपरीक्षितः।
एवं वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पंचाशदुत्तरं ॥ ३५ ॥

अर्थात्—परीक्षितके जन्मसे महापद्मके अभिषेकतक १०५० वर्ष बीत चुके थे।

कथासरित्सागरमें[4] नन्दके मारे जानेका वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है:—

---

(१) जरनल बंगाल एशियाटिक सोसायटी, जिल्द ६, पृ० १०७४।

(२) उक्त लेखमें लिखा है "पंचमे च दीनीवसे नंदराज तिवससतं ओघाटितं तनसुलिय वाटा पनाडिं नगरं प्रवेसति।" कुछ विद्वान् इसमेंके 'तिवससतं' का अर्थ तीन सौ वर्ष करके मरम्मतके समय तक उस नहरको बने ३०० वर्ष हो चुके थे ऐसा अनुमान करते हैं। और कुछ 'तिवससतं' से 'त्रिवर्ष सत्रं' —(तीसरे वर्षके सत्र) का तात्पर्य निकालते हैं। परन्तु अभी इस विषयमें निश्चित मत नहीं दिया जा सकता। (जरनल बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, दिसंबर १९१७ और छठी ओरियण्टल काँग्रेसकी रिपोर्ट १८८३)

(३) मत्स्यपुराण, अध्याय २७३।

(४) ईसवी सनकी पहली शताब्दीमें गुणाढ्य नामक पण्डितने पैशाची भाषामें एक लाख श्लोकोंका 'बृहत्कथा' नामक ग्रन्थ बनाया था। काश्मीरके

" गुरुदक्षिणा देनेके लिये व्यांडि और इन्द्रदत्तको एक कोटि सुवर्ण मुद्राओंकी आवश्यकता पड़ी। इसके लिये वररुचि सहित इन्होंने नन्दके पास जाकर माँगनेका विचार किया। उस समय नन्द अयोध्यामें था। अतः उपर्युक्त तीनों मित्र अयोध्यामें आये। परन्तु उसी समय नन्दका देहान्त हो गया। इस पर इन्द्रदत्तने अपने मित्रोंसे कहा कि योगबलसे मैं तो इस मृतराजाकी देहमें प्रवेश करता हूँ, और वररुचिको चाहिये कि वह राजभवनमें आकर मुझसे एक कोटि सुवर्ण मुद्राएँ माँगे। मैं उसकी प्रार्थना पर उक्त द्रव्य उसे दिलवा दूँगा। तथा इसके बाद ही राजाके शरीरसे निकल कर पीछा अपने शरीरमें आ घुसूँगा। परन्तु व्याड़िको चाहिये कि तब तक मेरे इस शरीरकी रक्षा करता रहे।

"इस प्रकार सब बातें निश्चित कर इन्द्रदत्तने राजा नन्दके मृत शरीरमें प्रवेश किया और राजा फिर जी उठा। इससे राज्यभरमें आनन्द छा गया। इसी समय वररुचिने योगानन्द[३] (नन्द) के पास पहुँच आशी-

---

राजा अनन्तराजके समय (ई० स० १०२८–८०) उक्त महाराजकी विदुषी रानी सूर्यवतीकी आज्ञासे सोमदेव भट्टने उपर्युक्त ग्रन्थका सार संस्कृतके पच्चीस हजार श्लोकोंमें निबद्ध किया और उसका नाम 'कथासरित्सागर' रक्खा।

(१) व्याडिने एक लाख श्लोकोंका 'संग्रह' नामक ग्रन्थ लिखा था। परन्तु इस समय वह नहीं मिलता है। पतञ्जलिने अपने महाभाष्यमें उक्त ग्रन्थका नाम लिखा है। सम्भवतः यह ग्रन्थ व्याकरण या कोशका होगा।

(२) वररुचिको कात्यायन भी कहते थे। 'अष्टाध्यायीवृत्ति' 'व्याकरणकी कारिका' 'प्राकृत-प्रकाश' 'पुष्पसूत्र,' 'लिङ्गवृत्ति' आदि अनेक ग्रन्थ इसके बनाये हुए हैं।

(३) राजा नन्द मर गया था। परन्तु योगबलसे इन्द्रदत्तने उसके शरीरमें प्रवेश किया, जिससे वह जी उठा। इस प्रकार योगबलसे पुनर्जीवित होनेके कारण ही नन्दका नाम योगानन्द पड़ा।

र्वाद दिया। तथा गुरुदक्षिणाके लिये एक करोड़ मुहरोंकी याचना की। इस पर राजाने अपने मन्त्री शकटारको आज्ञा दी कि इस ब्राह्मणको एक करोड़ मुहरें दे दो।

"इस प्रकार अचानक मरे हुए राजाका एकाएक जी उठना और एक अपरिचित याचकको इतना द्रव्य देनेकी आज्ञा देना, यह अजीब हाल देखकर बुद्धिमान् शकटारको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने विचारा कि इसमें कुछ न कुछ भेद अवश्य होगा। अन्तमें बुद्धिमान् शकटार इस भेदको समझ गया। परन्तु राजपुत्रके बालक होनेके कारण राज्यको शत्रुओंके आक्रमणसे बचाये रखनेके लिये राजाका जीवित रहना अत्यन्त आवश्यक समझ उसने देश भरके मुरदोंको ढूँढ ढूँढ कर जला देनेकी आज्ञा दे दी। इस आज्ञाके अनुसार इन्द्रदत्तका मृत शरीर भी—जो एक मन्दिरमें रक्खा हुआ था और जिसकी हिफ़ाज़त व्याडिके सुपुर्द थी—जबर्दस्ती छीन कर जला दिया गया। व्याडिने यह सब वृत्तान्त योगानन्दको जा सुनाया; जिसे सुन कर वह बहुत ही दुःखित हुआ।

"यद्यपि शूद्र-शरीरमें रह कर राज्यलक्ष्मी भोगनेका सुअवसर प्राप्त हुआ था, तथापि ब्राह्मणशरीरके छूट जानेका उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। अन्तमें व्याडिने समझाया कि अब पूर्व शरीर तो मिल ही नहीं सकता, अतः उसके लिये पछताना निरर्थक ही है। अब आपको चाहिये कि वररुचिको मन्त्री बनाकर अपने इस राज्यको स्थिर करनेका प्रबन्ध करें। कहीं ऐसा न हो कि शकटार आपको मार कर नन्दके पुत्र चन्द्रगुप्तको राज्य पर बिठला दे। क्योंकि वह इस भेदको समझ गया है। इस पर वररुचिको योगानन्दने अपना मन्त्री बनाया और

जीवित-ब्राह्मण शरीरके जला देनेका दोष लगाकर शकटारको उसके सौ पुत्रों सहित एक अंधे कुएँमें कैद करवा दिया। इसके बाद उनके खाने पीनेके लिये प्रतिदिन केवल एक कटोरा सत्तू और एक कटोरा ही पानी देनेकी आज्ञा दी। कुछ दिनोंमें शकटारके सौ पुत्र भूख और प्याससे दुःखी होकर उसके सामने ही उस कुएँमें मर गये। यह देख शकटारने योगानन्दको नाश करनेका पक्का सङ्कल्प कर लिया। इधर योगानन्दने कामासक्त होकर राज्यका सारा भार वररुचि पर छोड़ दिया। वररुचिने भी कामकी अधिकताके कारण राजासे प्रार्थना कर शकटारको कैदसे छुड़वा लिया और उसको अपना सहायक मन्त्री बना लिया।

एक दिन महलमें लगे हुए योगानन्दकी स्त्रीके चित्रकी जंघा पर वररुचिने एक तिलका चिह्न बना दिया। यह देख योगानन्दको वररुचिपर सन्देह हुआ। इससे उसने वररुचिके मार डालनेकी आज्ञा दे दी। परन्तु शकटारने उसे अपने घरमें छिपा दिया, और उसके बदले किसी दूसरेको मारकर राजासे वररुचिके मार डालनेकी सूचना कर दी। इस वृत्तान्तको सुनकर वररुचिकी स्त्री 'उपकेशा' सती हो गई और उसकी माताने भी पुत्रके मरनेसे दुःखित होकर प्राण छोड़ दिये।

कुछ समय बाद एक दिन योगानन्दका पुत्र 'हिरण्यगुप्त' बनमें शिकार खेलने गया। वहाँ वह अपनी सेनासे दूर निकल गया और सायंकाल हो जानेसे उसी जंगलमें रात बितानेका विचार कर एक वृक्षपर चढ़ गया। परन्तु ज्यों ही उस वृक्षपर चढ़ा त्यों ही उसने देखा

कि एक रीछ उस वृक्षपर पहलेसे ही बैठा है। यह रीछ सिंहके भयसे वृक्षपर चढ़ गया था। रीछने कुमारको अभय वचन दिया। इसके बाद इन दोनोंने आधी आधी रात तक जागकर पहरा देनेका प्रबन्ध किया। इस प्रकार निश्चिन्त होकर प्रथम राजकुमार सो गया और रीछ पहरा देने लगा। इतनेमें एक सिंह शिकारकी तलाश करता हुआ वहाँ आ पहुँचा। सिंहने रीछसे कहा कि इस मनुष्यको नीचे गिरा दे, तो इसे भक्षण कर मैं यहाँसे चला जाऊँ। यह सुन उस (रीछ) ने उत्तर दिया कि मैं मित्रघात कभी न करूँगा। कुछ समय बाद जब रीछके सोनेकी और कुमारके जागनेकी बारी आई; तब सिंहने कुमारसे कहा कि हे कुमार, तू इस रीछको नीचे गिरा दे। यह सुनकर उसने अपने प्राण बचानेकी इच्छासे रीछको नीचे ढकेलना चाहा। इतनेहीमें संयोगसे रीछ भी जाग उठा और राजकुमारके इस प्रकार विश्वासघात करनेके विचारको देखकर उसने उसे शाप दिया कि, "हे मित्रघातक! तू पागल हो जा और जब तक यह वृत्तान्त प्रकट न हो तब तक इसी दशामें रह।" दूसरे दिन वहाँसे लौट, घर आनेपर कुँवर पागल हो गया। उसकी यह दशा देख योगानन्दको बहुत ही दुःख हुआ और वह सोचने लगा कि यदि इस समय वररुचि होता तो कुँवरकी इस दशाका कारण अवश्य जान लेता। नाहक ही मैंने उसे मरवा डाला। शकटारने वररुचिके प्रकट करनेका यह अच्छा मौका समझा और राजासे प्रार्थना की कि महाराज! वररुचि अब तक जीवित है। यह सुनकर योगानन्दने वररुचिके लानेकी आज्ञा दी। इसपर वररुचि राजाके सामने लाया गया। उसने कुँव-

रको देखते ही कहा कि "यह मित्रद्रोहसे पागल हो गया है।" ये शब्द उसके मुखसे निकलते ही कुँवर शापसे मुक्त होकर पूर्ववत् हो गया। यह देखकर राजाने वररुचिसे पूछा कि तूने यह वृत्तान्त कैसे जाना? उसने उत्तर दिया कि जिस शक्तिसे मैंने रानीकी जंघाका तिल जाना था, उसी शक्तिसे यह वृत्तान्त भी जाना है। इस उत्तरको सुनकर राजा बहुत लज्जित हुआ और वररुचिका बहुत सत्कार करने लगा। परन्तु राजाके उस सत्कारका अनादर कर तथा अपने निर्दोष साबित होनेको ही बड़ा सत्कार समझ वररुचि वहाँसे अपने घर चला गया। जब वह अपने घर पहुँचा, तब उसको ज्ञात हुआ कि उसकी माता और स्त्री इस संसारमें नहीं हैं। इस पर वह हताश हो गया, और अपने कल्याणार्थ विरक्त हो तपोवनमें चला गया।

उधर वररुचिके चले जानेपर शकटारने योगानन्दको मार अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेका विचार किया। उसने चाणक्य नामके एक नीति-कुशल ब्राह्मणको नन्दद्वारा श्राद्धमें अपमानित करवाकर अपने पक्षमें मिलाया, और उससे कृत्या नामक क्रिया करवाई। उस क्रियासे योगा-नन्दको दाहज्वर हो गया और वह सातवें दिन मर गया। उसके मरनेपर शकटारने उसके पुत्र हिरण्यगुप्तको भी मार डाला, और नन्दके पुत्र चन्द्रगुप्तको सिंहासनपर बिठला दिया। इस तरह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर और चाणक्यको चन्द्रगुप्तका मंत्री बना शकटार वानप्रस्थ हो गया।"[1]

वि० स० की १२ वीं शताब्दीमें विक्रम संवत्के ही दूसरे रूप 'अनन्द' संवत्का उल्लेख मिलता है। इसका अर्थ 'नन्दके विना'

---

(१) कथासरित्सागर, कथापीठलंबक, तरंग ४,५।

होता है। पुराणोंके अनुसार नन्दका जन्म राजाकी शूद्रा स्त्रीसे हुआ था और वह ब्राह्मणों तथा क्षत्रियोंका शत्रु था। इस लिये ऐसे दुष्ट राजवंशके राज्यकालको दूषित समझ उसे विक्रम संवत्‌मेंसे घटाकर इसी संवत्‌का अनन्द संवत्‌के नामसे प्रयोग किया गया था। चन्दने भी अपने पृथ्वीराज रासेमें ९१ वर्ष घटाकर उक्त संवत्‌का प्रयोग किया है। इसीके आधारपर मि० विन्सैण्ट स्मिथने इन नव नन्दोंका राज्यकाल ९१ वर्ष माना है और इनमेंसे सबसे पहले नन्दका राज्यारोहणकाल मौर्य राजा चन्द्रगुप्तके राज्यारोहणकाल ई० स० पूर्व ३२२ (वि० सं० पूर्व २६५) से ९१ वर्ष पूर्व अर्थात् ई० स० से ४१३ (वि० स० से ३५६) वर्ष पूर्व अनुमान किया है। उनका यह भी अनुमान है कि बौद्ध या जैनमतानुयायी होनेके कारण ही पुराणों आदिमें इनको शूद्र लिख दिया होगा। उपर्युक्त बातोंके विषयमें अभी तक निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

मुद्राराक्षस नाटकमें लिखा है—“ चन्द्रगुप्तके पूर्वज नौ नन्दोंको मारकर चाणक्यने उसे गद्दीपर बिठलाया। ”

(१) विक्रम संवत् ४५७ के निकट मुद्राराक्षस नाटक विशाखदत्तने बनाया था। यह सामन्त वटेश्वरदत्तका पौत्र और महाराज पृथुका पुत्र था। इस ग्रन्थपर वटेश्वर महादेव और ढुंढिराज नामके पण्डितोंने टीकाएँ लिखी हैं। ढुंढिराजकी टीका शक संवत् १६३५ (वि० सं० १७७०) में भोंसले राजा सरभोजी (जो तंजोरके साहूजी भोंसलेका भाई था) के समयमें लिखी गई थी, ऐसा उस टीकासे प्रकट होता है।

(२) सिंहलद्वीप (लंका) के प्रसिद्ध विद्वान् ‘ महानाम ’ ने सिंहलद्वीपके इतिहासके महावंश नामक ग्रन्थका पूर्वभाग बनाया था। इसका रचनाकाल ई० स० की पाँचवीं शताब्दी है। इस ग्रन्थमें लिखा है:—

आगे पुराणों और बौद्ध ग्रन्थों आदिके आधारपर एक नकशा दिया जाता है। इससे पाठक उक्त पुस्तकोंमें लिखे हुए इस वंशके राजाओंके नाम और राज्यवर्ष जान सकते हैं।

एक बात और सोचनेकी है कि यद्यपि मत्स्यपुराणमें इनका राज्य-काल ३६० वर्षका लिखा है; परन्तु उसीमें दिये प्रत्येक राजाके पृथक् पृथक् समयको जोड़नेसे केवल ३३१ वर्ष ही आते हैं। इसी प्रकार और पुराणोंके समयमें भी अन्तर आता है।

विदेशियों द्वारा ज्ञात इतिहास।

[वैदेशिक लेखकोंके आधार पर ईसवी सन्से ५५८ वर्ष पूर्वसे ई० स० से ३३१ वर्ष पूर्व तकका उत्तरी भारतवर्षका संक्षिप्त इतिहास।]

ई० स० पूर्व ५५८ से ५३० वर्ष तक साइरस नामक राजाका समय माना जाता है। इसीने ईरानी राज्यकी पहले पहल स्थापना की थी। ग्रीक लेखकोंके लेखोंसे पता चलता है कि इसने गांधार तक

"शिशुनागने १८ वर्ष राज्य किया। उसके पुत्र कालाशोकके राज्यके १० वें वर्षमें बुद्धके निर्वाणके सौ वर्ष पूरे हुए थे। कालाशोकने २० वर्ष राज्य किया। उसके दस पुत्र थे। उन्होंने २२ वर्ष राज्य किया। इनके पीछे ९ राजा (नवनन्द) हुए। उन्होंने भी क्रमशः २२ वर्ष राज्य किया। इनके अन्तिम राजा धनद-नन्दको चाणक्य नामक ब्राह्मणने मार डाला और मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्तको सारे जम्बूद्वीपका राजा बना दिया।" (महावंशका अँगरेजी अनुवाद पृ० ११,१६।)

चाणक्यको कौटिल्य और विष्णुगुप्त भी कहते थे।

भिन्न भिन्न ग्रन्थोंके आधारपर शिशुनागवंशकी वंशावली और उनके राज्यवर्ष ।

मत्स्यपुराण (३६० वर्ष)	राज्यवर्ष	वायुपुराण (३६२ वर्ष)	राज्यवर्ष	विष्णुपुराण (३६२ वर्ष)	ब्रह्माण्डपुराण (३६२ वर्ष)	राज्यवर्ष	भागवत	महावंश	राज्यवर्ष	अशोकावदान	हेमचन्द्रान्वित परिशिष्टपर्व
शिशुनाक	४०	शिशुनाग	४०	शिशुनाग							
काकवर्ण	३६	शकवर्ण	३६	काकवर्ण							
क्षेमधर्मा	३६	क्षेमवर्मा	२०	क्षेमधर्मा	क्षेमधर्मा	२०					
क्षेमजित्	२४	क्षत्रौजा	४०	क्षत्रौजा	क्षत्रौजा	४०	क्षेत्रज्ञ				
विन्ध्यसेन	२८	बिम्बिसार	२८	विध्मिसार (विधिसार)	विधिसार	२८	विधिसार	बिम्बिसार	५२	बिम्बिसार	श्रेणिक
अजातशत्रु	२७	अजातशत्रु	२५	अजातशत्रु	अजातशत्रु	३५		अजातशत्रु	३२	अजातशत्रु	कूणिक
वंशक	२४	हर्षक	२५	दर्भक	दशक	३५	अर्भक				
उदासी	३३	उदायी	३३	उदयाश्व	उदासी	२३	अजय	उदयिभद्दक	१६	उदायी	उदायी
नन्दिवर्धन	४०	नन्दिवर्धन	४२	नन्दिवर्धन	नन्दिवर्धन	४२		अनुरुद्धक (मुण्ड)	८	मुण्ड	उदायीका पुत्र नन्द महावीरके निर्वाणके ६० वर्ष बाद राज्यपर बैठा ।
महानन्दी	४३	महानन्दी	४३	महानन्दी	महानन्दी	४३	महानन्दी	नागदासक	२०		
								शुशुनाग	१८		
								कालाशोक	२०	काकवर्णी	
								नवनन्द		सहाली	
										तुलकुचि	
										महामण्डल	
										प्रसेनजित्	
										नन्द	नवनन्द

(१) नोट आगेके पेजमें देखो ।

नोट:—

(१) हमारे पासकी मत्स्यपुराणकी पुस्तकमें विन्ध्यसेनके और अजातशत्रुके बीचमें ९ वर्ष तक कण्वायनका और १४ वर्ष तक भूमित्रका राज्य करना लिखा है। इस प्रकार उक्त पुस्तकमें १० के बदले १२ राजाओंके नाम हैं। यथा

शिशुनाकस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥ ५ ॥
काकवर्णः सुतस्तस्य षड्विंशत्प्राप्स्यते महीं ॥
षट्त्रिंशच्चैव वर्षाणि क्षेमधर्मा भविष्यति ॥ ६ ॥
चतुर्विंशत्समाः सोपि क्षेमजित् प्राप्स्यते महीम् ॥
अष्टाविंशतिवर्षाणि विन्ध्यसेनो भविष्यति ॥ ७ ॥
भविष्यति समाराजा नव कण्वायनो नृपः ॥
भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति ॥ ८ ॥
अजातशत्रुर्भविता सप्तविंशत्समा नृपः ॥
चतुर्विंशत्समा राजा वंशकस्तु भविष्यति ॥ ९ ॥
उदासी भविता तस्मात्त्रयस्त्रिंशत् समा नृपः ॥
चत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्धनः ॥ १० ॥
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव महानन्दी भविष्यति ॥
इत्येते भवितारो वै दशद्वौ शिशुनाकजाः ॥ ११ ॥
शतानि त्रीणि पूर्णानि षष्ठिवर्षाधिकानि तु ॥
शिशुनाका भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबन्धवः ॥ १२ ॥

—मत्स्यपुराण, अध्याय २७२, पृष्ठ २४९।

अपना अधिकार फैलाया था। पेशावर, रावलपिण्डी और काबुलके प्रदेश उस समय गांधारमें सम्मिलित थे। इस गांधार प्रदेशका उल्लेख वेदों आदिमें भी आया है और संस्कृतसाहित्यके अनुसार यह भारतका ही एक प्रदेश था।

इस समयसे लेकर करीब दो शताब्दियों तक गांधार पर ईरानवालोंका ही अधिकार रहा।

ई० स० से ५१६ वर्ष पूर्वके करीब डेरियस प्रथमने पश्चिमी पंजाब और सिन्धका प्रदेश भी इसमें मिला लिया था। जब यह राजा विजय करता हुआ काश्यपपुरमें पहुँचा तब इसने स्साइलेक्स नामक अपने सेनापतिको सिन्धुके मार्गसे लौटनेकी आज्ञा दी।

हैरेडोटसके लेखानुसार यह नव विजित प्रदेश[1] डेरियसके राज्यका बीसवाँ प्रदेश समझा जाता था और इसकी आमदनी अन्य सब प्रदेशोंसे अधिक और सुवर्णके रूपमें आती थी, क्यों कि यह प्रदेश सबसे ज्यादा आबाद और समृद्धिशाली था[2]।

हैरेडोटसके लेखसे यह भी पता चलता है कि जिस समय ई० स० से ४८५ वर्ष पूर्व डेरियसके उत्तराधिकारी ज़ैरक्ससने ग्रीस (यूनान) पर हमला किया उस समय आक्रमणकारी सेनामें गांधार और भारतके लोग भी शामिल थे। गांधारवाले नरसलके धनुष और छोटे छोटे भाले तथा भारतवासी धनुष और लोहेके फलवाले तीर भी काममें लाते थे।

---

(१) गांधार और उत्तर पश्चिमी पंजाब इससे अलग था और शायद ७ वीं सत्रपीमें गिना जाता था। इस प्रदेशकी आय २० वीं सत्रपीकी आयसे आधीसे भी कम होती थी।

(२) रौलिनसनकी इण्डिया एण्ड वैस्टर्न वर्ल्ड, पृ० १८।

' भारतीयोंकी पोशाक सूती कपड़ेकी होती थी।

इसके बादका ऐलैक्ज़ैण्डरके आक्रमण तकका वैदेशिक शासनका विशेष वृतान्त नहीं मिलता है। यह (ऐलैक्ज़ैण्डर) मैसिडोनियाका बादशाह था और ई० स० से ३३१ वर्ष पूर्व इसने ईरानके राजा डेरियस (दारा) तृतीयको हराकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया था।

ईरानी लोग आयोनिया वालोंके सम्बन्धके कारण ग्रीक लोगोंको 'यउन' कहा करते थे। और इसी 'यउन' शब्दसे हमारे संस्कृत 'यवन' शब्दकी उत्पत्ति हुई है। यह शब्द साधारणतया पाश्चात्य देशवालोंका बोधक है।

ईरानियोंके समयसे ही भारतके उत्तर पश्चिमीय प्रदेशमें खरोष्ठी लिपिका प्रचार हुआ था; जो ई० स० ४०० तक जारी रहा। इ-सीका उल्लेख पाणिनिके व्याकरणमें 'यवनानी' शब्दसे किया गया है।

अशोकके स्तम्भों परके परदार सिंह भी ईरानवालोंके ही प्रभावके कारण समझे जाते हैं।

पंजाबसे कुछ सिक्के ऐसे मिले हैं, जो इरानियोंके सत्रपों (गवर्नरों) ने ढलवाये थे।

भारतपर सिकन्दर (ऐलैक्ज़ेण्डर)का आक्रमण।

[ई० स० से ३२७ (वि० सं० से २७०) वर्ष पूर्वसे ई० स० से ३२५ (वि० सं० से २६८) वर्ष पूर्व तक।]

---

(१) 'इन्द्रवरुणभवशर्व०' इस सूत्रमें यवन शब्दका उल्लेख होनेसे ईरानियोंके आगमनके बाद पाणिनिका उक्त व्याकरण बनाना सिद्ध होता है। अतः मि० स्मिथके अनुसार पहले जो इसका समय ईसवीसन्से पूर्वकी सातवीं शताब्दी लिखा है वह चिन्त्य है।

सिकन्दरका[1] जन्म ईसवी सन्से ३५६ (वि० सं० से २९९ वर्ष) पूर्व हुआ था। तेरह वर्षकी अवस्था होने पर इसकी शिक्षाके लिये प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक ऐरिस्टाटल (अरस्तू) नियत किया गया। जब यह १६ वर्षका हुआ तब राजकाजमें पिताकी सहायता करने लगा। इसका पिता फिलिप पहले मेसिडोनियाका राजा था। परन्तु अन्तमें अपने बाहुबलसे सारे ग्रीसका बादशाह बन गया। इसका एशिया पर भी अधिकार करनेका इरादा था। परन्तु इस विचारको कार्यमें परिणित करनेके पूर्व ही यह एक मैसिडौनियानिवासीके हाथसे मार डाला गया।

पिताकी मृत्युके बाद करीब २० वर्षकी अवस्थामें सिकन्दर मकदूनियामें गद्दी पर बैठा। एक ही वर्षमें शत्रुओंको दबाकर इसने अपने राज्यकी सुव्यवस्था की और इसके बाद अपने पिताके विचारको पूर्ण करने के लिये करीब साठ हजार सेना लेकर एशियाकी तरफ़ कूच किया। मार्गमें फ़ारिस, सीरिया, इजिप्ट, फ़िनीशिया, पैलस्टाइन, बैबिलोन, बैक्ट्रिया, आदि देशोंपर विजय प्राप्त करता हुआ ई० स० से ३२७ (वि० सं० से २७०) वर्ष पूर्व मई मासमें हिन्दूकुश पर्वतको पारकर अपने बसाये हुए सिकन्दरिया[2] (ऐलैक्ज़ैण्ड्रिया) नगरमें पहुँचा। यहाँ पहुँच कर इसने अपनी सेनाके दो भाग किये। एक भागको काबुल नदीके रास्तेसे भारतकी तरफ़ जानेकी आज्ञा दी और स्वयं अफ़गानिस्तान और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तकी युद्धप्रिय छोटी छोटी स्वा-

(१) इसकी माताका नाम ओलिम्पिअस था।

(२) यह नगर इसने इस घटनाके करीब २ वर्ष पूर्व बसाया था। इस नगरसे तीन मार्ग भारतवर्षको आते थे।

धीन जातियोंको दबाता हुआ सिन्धुनदीके किनारे पहुँचा। इसकी सेनाका दूसरा भाग भी मार्गमें हस्तिनामक राजाको जीत कर इसी स्थान पर पहुँच गया था। इसके बाद ई० स० से ३२६ (वि० सं० से २६९) वर्ष पूर्व (फेब्रुअरीमें) वसन्त ऋतुमें अटकसे १६ मील ऊपर ओहिन्द नामक स्थानके निकट नावोंका पुल बनवाकर सिन्धुनदीके पूर्वकी तरफ़ पहुँचा। यहाँसे चल जब सिकन्दर तक्ष-शिलामें पहुँचा तब वहाँके राजा आम्भिने ससैन्य इसकी पेशवाई की और बहुतसी भेट देकर इसकी अधीनता स्वीकार की। इस पर सिकन्दरने उसमें अपनी तरफ़से बहुतसी सुवर्ण मुद्राएँ आदि मिलाकर वह भेट उसे वापिस कर दी।

तक्षशिलाके राजाकी इस निर्बलताका कारण यह था कि इसके पड़ोसी अभिसारवालोंसे और पोरस (पौरव) से इसकी शत्रुता थी। अतः यह सिकन्दरकी सहायता प्राप्त कर उनको दबाना चाहता था।

उस समय तक्षशिला[1] नगर भारतके प्रसिद्ध नगरोंमेंसे था और उत्तरी भारतका विद्यापीठ गिना जाता था। ख़ास कर आयुर्वेदमें इसने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। यहाँ पर सब तरहके लोग दूर दूरसे विद्या पढ़नेको आया करते थे।

इसी स्थान पर अभिसारके राजदूतने आकर सिकन्दरकी वश्यता स्वीकार की।

---

(१) शाहढेरी गाँव (रावलपिण्डी ज़िलेमें)के पास करीब १२ वर्गमीलमें कई ऊँचे ऊँचे टीले मिलते हैं। इसी स्थान पर पहले तक्षशिला नगर बसा हुआ था।

इसके बाद सिकन्दरने पोरस[1]को भी, जो कि झेलम और चिनाबके बीचके प्रदेशका शासक था, आत्मसमर्पण करनेके लिये कहलाया। मानी पोरस (पौरव) ने ऐसा करनेसे सगर्व इनकार किया और युद्धकी इच्छा प्रकट की। इस पर सिकन्दरने (उस पर आक्रमण करनेके लिये) झेलमकी तरफ़ कूच किया। पोरस (पौरव) भी पहलेसे ही नदीके उस पार ससैन्य मौजूद था। यहाँ पहुँच कर सिकंदरने जब पोरसको अपनी विशाल सेना और सुसज्जित हाथियों सहित खड़ा पाया तब एकाएक नदी पार करनेकी उसकी हिम्मत न पड़ी। अतः इसने कपटजाल रचनेका विचार किया। इसने अपने नावोंके[2] बेड़ेको नदीमें दूर दूर तक इधरसे उधर गश्त लगानेकी आज्ञा दी और पोरसकी फ़ौजके डेरोंके सामने ही अपनी सेनाकी छावनी डाल नदीमें बाढ़ कम होने तक ठहरे रहनेका बहाना किया। परन्तु इधर तो यह इस प्रकार कपटजाल बिछा रहा था और उधर उक्त स्थानसे १६ मील ऊपरकी तरफ़ हटकर इसने एक ऐसा स्थान ढूँढ़ लिया था जहाँसे चुपचाप सेना पार उतारी जा सकती थी। इसके बाद एक रातको जब कि वर्षा और तूफ़ानसे प्रकृतिने उग्र रूप धारण कर रक्खा था, यह (ऐलैकजैण्डर) केवल चुने हुए १२००० सिपाहियोंको साथ लेकर और बाकी सेना[3]को शत्रुओंको धोखेमें डाले रखनेके

(१) यह शायद पौरव जातिका हो। इस जातिका वर्णन ऋग्वेदमें भी आया है।

(२) ये नावें सिन्धुसे गाड़ियोंमें रख कर लाई गई थीं।

(३) तक्षशिलाके राजाकी ५००० सेना भी क्रटेरसकी सेनाके साथ कैम्पमें ही रही थी।

लिये क्रटेरसकी अधीनतामें उसी शिविरमें छोड़ तथा मार्गके पश्चा-द्भागकी रक्षा करनेकी हिदायत कर अपने पूर्वनिश्चित गुप्त स्थान पर आ पहुँचा। यहाँ पर पूर्वसंकेतानुसार नावोंका बेड़ा तैयार खड़ा था। अतः विना बाधाके प्रातःकालके पहले ही यह मय सेनाके चुपचाप उस पार जा पहुँचा। परन्तु उस समय इसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जिस समय इसने देखा कि आगे एक और नहर पार करनी बाकी रह गई है। खोजनेसे भाग्यवश शीघ्र ही एक स्थान ऐसा मिल गया जहाँ अन्य स्थानोंसे पानी कुछ कम था। बस यहाँसे नावोंकी सहा-यताके बिना ही पैदल सेनाको तैरकर और सवारोंको घोड़ोंकी सहा-यतासे पार होनेकी आज्ञा दी गई। पोरसको जब अचानक शत्रुसेनाके इस पार आनेकी सूचना मिली तब तुरन्त ही उसने मय २००० सवारों और १२० रथोंके अपने पुत्रको शत्रुको रोकनेके लिये भेजा। परन्तु समय बीत चुका था और मकदूनियाकी सेना इस पार पहुँच चुकी थी। अतः शीघ्र ही पोरसकी सेनाका यह टुकड़ा नष्ट कर दिया गया।

जब पोरसने अपनी सेनाकी दुर्दशाका समाचार सुना तब तत्काल कुछ सेना शिविरकी रक्षार्थ वहीं छोड़ शत्रुका सामना करनेको चला और शत्रुके सामने पहुँच व्यूहरचना करने लगा। सबसे आगे २०० हाथी रक्खे गये। उनके बीचमें और पीछे ३०००० पैदल सिपाहि-योंकी पाँतें खड़ी की गई। उनके दोनों बाजुओंपर ४००० सवार और ३०० रथ रक्खे गये। उस समय प्रत्येक रथमें ४ घोड़े जुतते थे और छः आदमियोंके बैठनेका स्थान होता था। उनमें दो सारथी, दो धनुर्धर योद्धा और दो ढालवाले रक्षक बैठते थे। धनुर्धर लोग

रथके इधर उधर दोनों तरफ़ बैठते थे। समय पड़नेपर सारथी लोगोंको भी शत्रुओंपर बाण चलाना पड़ता था। पैदल सिपाहियोंके पास दो हाथ लंबी तलवार और चमड़ेकी ढाल रहती थी। इसके सिवाय उनके पास बरछी या धनुष भी रहता था। यह धनुष पूरा आदमीके कदका होता था। इसका एक कौना ज़मीनपर रखकर और बाँये पैरसे उसे दबाकर यह चढ़ाया जाता था। इस धनुषसे छोड़ा जानेवाला तीर भी तीन गज़से कुछ ही कम लंबा होता था और भारतीय योद्धा द्वारा चलाये जानेपर ढाल या कवचको भी छेदकर शत्रुको आहत कर देता था। सवारोंके पास दो बरछे और एक ढाल रहती थी।

इस विशाल सेनाको देख सम्मुख रणमें प्रवृत्त होनेका ऐलैक्ज़ैण्डरको साहस न हुआ। अतः इसने ६००० सिपाहियोंको मौकेकी प्रतीक्षामें छोड़ बाकीके ६००० सैनिकोंसे नदीकी तरफ़ फैले हुए पुरु-सेनाके वाम भागपर आक्रमण करवाया। तीरोंकी वर्षा करती हुई दोनों तरफ़की वीर-वाहिनियाँ आपसमें गुथ गईं। इसी अवसरपर ऐलैक्ज़ैण्डर भी अपनी कुछ 'ताज़ा दम' फौज ले सहायताको आ उपस्थित हुआ। अपने बायें भागको इस प्रकार उलझा हुआ देख भारतीय सेनाका दायाँ भाग ज्यों ही पीछेकी तरफ़से उसकी मददको चला, त्योंही मौकेकी प्रतीक्षामें खड़े मकदूनियाकी फौजके बाकी सवारोंको लेकर कोइनसने इनपर पीछेसे हमला कर दिया। इस पर भारतीय सेनाके दायें भागको शत्रुका हमला रोकनेके लिये पीछे मुड़ना पड़ा। परन्तु वहाँ परकी ज़मीनके ढालू होनेके कारण उनका व्यूह भंग हो गया। रणकुशल एलैक्ज़ैण्डरने इस मौकेको ग़नीमत समझा और एक-

दम सेनाका ऐसा दबाव डाला कि पोरसकी सेनाके दोनों बाजू टूट गये। तथा उन स्थानोंके योद्धा बचावके लिये भाग कर अपने हाथियोंकी आड़में जा खड़े हुए। यह दशा देख महावतोंने अपने हाथी आगे बढ़ाये। यद्यपि मैसिडोनियाकी सेनाने इनको रोकनेके लिये जी तोड़कर बाणोंकी वर्षा की, तथापि युद्धार्थ सधाए हुए इन मस्त हाथियोंने उसे वर्षाकी बूँदोंके समान तुच्छ समझ शत्रुसेनाको पददलित करना प्रारम्भ किया; जिससे वे घबरा गये। ऐसे ही समय भारतीय सवार भी आगे बढ़ उनपर टूट पड़े। परन्तु स्थानकी विषमताके कारण भारतीय सवारोंके पैर उखड़ गये। अतः दम लेनेके लिये उन्हें फिर हाथियोंके पीछे आना पड़ा। इस छुपाछुपीमें भारतीय सेना सिमट कर हाथियोंके बिल्कुल पास आ गई थी। ऐसे समय शत्रुदलने फिर सम्हलकर हमला किया। भाग्यके फेरसे इस गड़बड़में हाथी भड़क गये और इधर उधर दौड़कर अपनी ही सेनाको कुचलने लगे। ऐलैक्ज़ैण्डरकी सेना तो फैली हुई होनेके कारण इधर उधर भागकर अपना बचाव करने लगी; परन्तु भारतीय सेना जो कि सिमटकर बिलकुल पास आ गई थी इन हाथियों द्वारा नष्ट होने लगी। जिस समय इधर यह भीषण काण्ड उपस्थित हो रहा था उसी समय उधरसे नदी पारकर क्रोटोरसकी सेना भी आ पहुँची। अपनी इस ताज़ा दम फ़ौजकी सहायता पा मैसिडोनियाकी सेनाका उत्साह दूना बढ़ गया और उसने एकत्र हो घबराई हुई भारतीय सेनापर भयंकर आक्रमण कर दिया। इस युद्धमें भारतीय सेनाके ३००० सवार और १२००० सिपाही मारे गये तथा ९००० कैद किये गये। वीर पोरस

(पुरु) जो कि आख़िर तक युद्धमें डटा हुआ अपनी सेनाको लड़ा रहा था नौ स्थानोंपर आहत होनेके कारण बेहोशीकी हालतमें पकड़ा गया।

ऐसी अवस्थामें जब यह एलैक्ज़ैण्डरके सामने लाया गया और उसने उससे पूछा कि "कहो अब तुम्हारे साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये" तब उसने मृत्यु अथवा कष्टोंकी कुछ भी परवाह न कर निर्भय हो गर्वके साथ उत्तर दिया कि "जैसा एक बादशाह दूसरे बादशाहके साथ करता है।" यह उत्तर सुन ऐलैक्ज़ैण्डर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने ऐसे निर्भय और सच्चे वीरके साथ मैत्री करना उचित समझ उसे उसका राज्य वापिस लौटा दिया। तथा वापिस लौटते समय झेलम और व्यास नदियोंके बीचका सारा प्रदेश; जिसमें करीब २०० शहर थे और सात जातियोंके लोग रहते थे, उसको सौंप दिया। किसी कविने सत्य ही कहा है 'वीरभोग्या वसुन्धरा।' इस विजयकी यादगारमें ऐलैक्ज़ण्डरने दो नगर बसाये। जो युद्ध स्थलपर बसाया गया उसका नाम 'निकइअ' और जो झेलमके उसपार बसाया गया (जहाँसे यह नदी पार करने चला था) उसका नाम बडकेफल रक्खा गया। यह दूसरा नगर उसने अपने बुड्ढे घोड़ेके नामपर बसाया था। नदीके घाटपर होनेके कारण यह ऐसा समृद्धिशाली हुआ कि उसके बसाये नगरोंमें सर्वश्रेष्ठ गिना जाने लगा।

इसी युद्धकी यादगारमें वीर सेनापतियोंको देनेके लिये इसने चाँदीके तमगे बनवाये थे। इनमें एक तरफ़ एक हाथमें वज्र और दूसरेमें बल्लम लिये तथा पर्शियन ढंगकी टोपी पहने ऐलैक्ज़ैण्डरकी खड़ी

(१) शायद यह झेलम नगरके स्थानपर था।
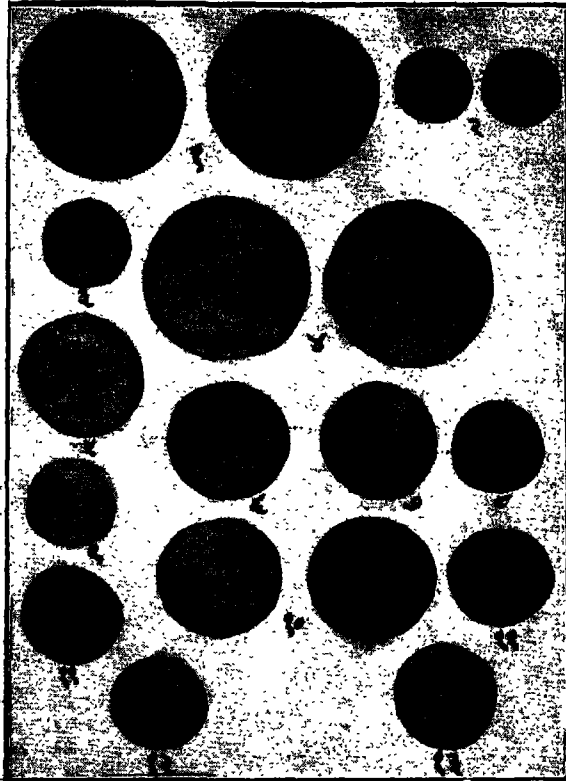
यवन, आन्ध्र, शक और कुशान राजाओंके सिक्के ।
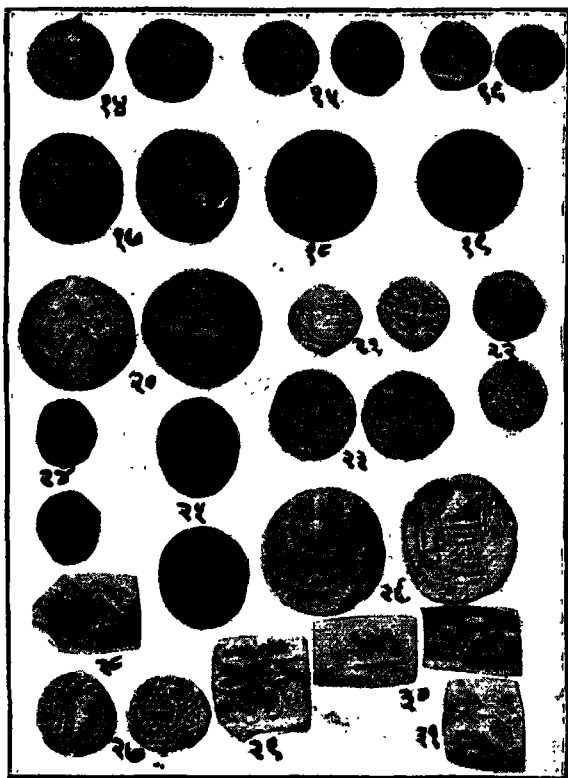
क्षत्रप, गुप्त, हूण, वैस और कुशान राजाओंके
फुटकर सिक्के।

मूर्ति बनी होती है और टाँगोंके पास ऐसा चिह्न A होता है। दूसरी तरफ़ भागते हुए हाथीके पीछे घोड़ा कुदाता हुआ और बल्लमसे प्रहार करता हुआ सवार बना होता है। इस हाथी पर दो आदमी बैठे होते हैं, जो सवारपर वार करनेकी चेष्टामें होते हैं।

इसके बाद बलिदान आदिसे निवृत्त हो ऐलैक्ज़ैण्डरने पास पड़ोसकी जतियोंको दबाना प्रारम्भ किया। गन्दारिके पोरस नामवाले एक दूसरे राजाने भी; जो कि उपर्युक्त पोरसका भतीजा था, इसकी अधीनता स्वीकार की।

इसी प्रकार बहुतसी अन्य जातियोंपर आधिपत्य स्थापन करता हुआ कुछ और पूर्वकी तरफ़ मुड़कर यह चिनाबके पार पहुँचा। उस स्थानपर चिनाबकी चौड़ाई ३००० गज़ थी और बहावका वेग भी अधिक था। इस वेगमें पड़कर बहुतसी नावें किनारेकी चट्टानोंसे टकराकर नष्ट हो गईं। यहाँसे आगे बढ़ उसने रावी नदी पार की। इसी स्थानपर इसे दूसरे पोरसके ईर्ष्यावश हो बग़ावत करनेका समाचार मिला। अपने चचा बड़े पोरसकी सम्मानवृद्धि ही इसका कारण थी। ख़बर पाते ही इसने उसे दबानेको 'हेफ़इसटिओन' को भेज दिया। आगे बढ़नेपर अनेक जातियोंसे युद्ध करता हुआ यह व्यास नदीके किनारे पहुँचा। मार्गमें ही वृद्ध पोरस भी ५००० सेना ले इससे आ मिला। उस समय व्यासके उसपार 'प्रसिओई' जाति रहती थी। 'प्रसिओई' शब्दसे शायद 'प्राच्य' का तात्पर्य हो। ग्रीक लेखकोंके अनुसार यह जाति बहुत बड़ी तथा अपनी वीरता और सभ्यताके लिये प्रसिद्ध थी। इससे अनुमान होता है कि शायद मगधवालोंने विदेशी-शत्रुका सामना करनेके लिये वहाँपर लोगोंको एकत्रित कर रक्खा होगा।

उपर्युक्त कारणसे और अपने देशको छोड़े बहुत दिन होनेसे ऐलैक्ज़ैण्डरकी सेनाने यहाँसे आगे बढ़नेके लिये इनकार किया। वीर ऐलैक्ज़ैण्डरने उनकी आज तककी बहादुरीकी तारीफ़ कर उन्हें भारतकी विशाल भूमि और सम्पत्तिका बहुत कुछ प्रलोभन दिया, परन्तु किसीने कुछ उत्तर न दिया। अन्तमें सेनापति कोइनसने कहा—"श्रीमान्! सेनाको अपना देश छोड़े आठ वर्ष हो गये हैं। इस बीच इनमेंसे बहुतसे युद्ध और रोगोंके कारण नष्ट हो चुके हैं, बहुतसे घायल होकर निकम्मे बन गये हैं और जो कुछ भी बचे हैं उनकी भी मार्गके कष्टोंके कारण बुरी दशा हो रही है। रातदिनके परिश्रमसे उनका स्वास्थ्य ख़राब हो गया है। कालके प्रभावसे उनके वस्त्र और शस्त्र भी निकम्मे हो रहे हैं। इतना होनेपर भी यद्यपि ऐसी वीर और उत्साही सेनाका अधिनायक होना वास्तवमें गौरवकी बात है; क्यों कि इस सेनाके रहते कोई भी आपका कुछ नहीं कर सकता, तथापि दैवी घटनाओंका पता लगाना या उनसे बचनेकी चेष्टा करना सर्वथा असम्भव है।"

यह उत्तर सुन ऐलैक्ज़ैण्डर बहुत हताश हुआ और लौट कर अपने खेमेंमें चला गया। दो दिन इसके विचारमें बीते। तीसरे दिन लाचार हो इसने सेनाको लौटनेकी आज्ञा दी। यह घटना ई० स० से ३२६ (वि० स० से २६९) वर्ष पूर्वके सितम्बर मासकी है।

इस प्रकार लौटनेका निश्चय कर ऐलैक्ज़ैण्डरने उक्त स्थान पर अपनी यात्राके चिह्नस्वरूप १२ देवताओंके लिये १२ बड़े बड़े चैत्य बनवाये। ये चौकोर पत्थरोंसे बनाये गये थे। इनमेंसे प्रत्येककी

ऊँचाई ५० हाथ थी। इन चैत्यों पर बहुतसा बलिदान किया गया। प्लीनीने इन चैत्योंका व्यास नदीके उस पर होना लिखा है। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता; क्यों कि ऐलैक्ज़ेण्डरकी सेनाने व्यासके उस पार पैर ही नहीं रक्खा था। कथाओंसे पता चलता है कि मौर्य-वंशी राजा चन्द्रगुप्त और उसके वंशज भी कभी कभी इन चैत्योंकी पूजा करनेके लिये व्यासके इस पार आया करते थे। मि० विन्सेण्ट स्मिथका अनुमान है कि शायद गुरदासपुर, होशियारपुर, या काँगड़ा ज़िलेमें ढूँढ़नेसे व्यास नदीके पुराने स्थानके पास इनके कुछ चिह्न मिल जायँ।

कथाओंमें लिखा है कि वापिस लौटनेके पहले ऐलैक्ज़ैण्डरने वहाँ पर चारों तरफ़ बड़ी भारी खाई खुदवा कर उसके बीचमें अपनी फ़ौजकी छावनीसे तिगुनी बड़ी छावनी बनवाई थी। इसमें सैनिकोंके रहनेके बड़े बड़े स्थान भी तैयार किये गये थे।

व्यास नदी परसे लौट कर यह विदेशी सेना चिनाब पर पहुँची। उस समय तक 'हेफ़इस्टिओन' ने वहाँ पर एक सुदृढ नगर तैयार करवा लिया था। इसमें आसपासके गाँवोंके लोग और ऐसे लोग जो सेनाकी तकलीफ़ोंको उठानेमें असमर्थ थे बसाये गये। स्वयं ऐलैक्ज़ैण्डरने यहाँसे जलमार्ग द्वारा यात्रा करनेकी तैयारी शुरू की। यहाँ पर भी आसपासके बहुतसे छोटे छोटे राजाओंने आकर इसकी अधीनता स्वीकार की। इस पर ऐलैक्ज़ेण्डरने अभिसारके[1] राजाको यहाँका सत्रप नियुक्त किया। इसी अवसर पर थ्रेससे ५००० सवारोंकी सेना और बेबीलोनसे ७००० पैदल सेना बहुतसे फ़ौजी साज़ सामा-

(१) भिम्भर या रजौरी।

नके साथ आ पहुँची। इस नई सेनाकी लाई हुई सामग्री पुरानी सेनामें बाँट दी गई और उसकी फटी पुरानी वरदियाँ वग़ैरा जला दी गईं। कुछ दिन ठहर यह सेना चिनाब पार कर झेलमके किनारे पहुँची। यह शायद वही स्थान था जहाँपर पोरसने आते हुए इसकी अग्रगति रोकनेके लिये डेरा डाला था। यहीं पर ठहरकर जहाज़ी बेड़ा तैयार करवाया गया। इसमें मनुष्यों, घोड़ों और भारबरदारीके लिये बने कुल जहाज़ोंकी संख्या करीब २००० के थी।

जब सब तैयारियाँ हो चुकीं तब ऐलैक्ज़ैण्डरने एक बड़ा भारी दरबार किया। इसमें इसके सेनापतियोंके सिवाय आसपासके भारतीय नरेशोंके राजदूत भी उपस्थित थे। इस दरबारमें इसने वृद्ध वीर पोरसको व्यास और झेलमके बीचके समस्त प्रदेशका राजा बनाया। हम पहले लिख चुके हैं कि इस प्रदेशमें करीब २००० नगर थे और उनमें भिन्न भिन्न सात जातियोंके लोग रहते थे। झेलमसे सिन्धु तकका प्रदेश पहले ही तक्षशिलाके राजाको सौंप दिया गया था।

इसके बाद ऐलैक्ज़ैण्डरने मार्गको निष्कण्टक करनेके लिये झेलमसे सिन्धु तक फैली हुई नमककी पहाड़ियोंके राजा सौभूतिको दबानेके लिये अपनी सेना भेजी। इसके पहुँचते ही उसने बिना किसी तरहकी बाधाके इसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

इस सौभूतिके चाँदीके सिक्के मिले हैं। इनपर एक तरफ़ ढाटा लगाये और टोपी पहने राजाका मस्तक बना होता है। दूसरी तरफ़ मुर्ग़ेका चित्र होता है और उसके ऊपरकी तरफ़ बिच्छूकासा चिह्न और पेटके पास ग्रीक अक्षर होते हैं।

जब सब तैयारियाँ हो चुकीं तब ऐलैक्ज़ैण्डरने ई० स० से ३२६ (वि० स० से २६९) वर्ष पूर्व अक्टूबर मासमें जलमार्गसे यात्रा आरम्भ की। इस बेड़ेकी रक्षार्थ करीब १,२०,००० सैनिक और २०० हाथी नदीके दोनों किनारों पर चलते थे। तथा इसकी पृष्ठ भागकी रक्षाका भार सिन्धुके पश्चिमी प्रदेशके सत्रप फ़िलिपसको दिया गया था। पाँचवें दिन पृष्ठरक्षक फ़िलिपसको आगे चलनेकी आज्ञा दी गई और ५ दिनकी यात्रा करनेके बाद यह बेड़ा चिनाब और झेलमके संगम पर पहुँचा। यह स्थान उस समय बहुत संकीर्ण था और यहाँ पर जलमें भँवर भी पड़ते थे। इन्हींके कारण दो नावें उनमेंके अधिकांश मल्लाहों सहित डूब गईं। यहाँ ठहरकर इसने आसपासकी कई जातियोंको अपने अधीन किया।

यहाँसे रवाना होकर यह जल और स्थल सेना रावी और झेलमके संगमपर पहुँची। यहाँपर उसने मल्लोई (मालव) लोगोंको परास्त किया। उस समय उनके पास ९०,००० पैदल, १०,००० सवार और ७००से ऊपर रथ थे। इन्हींको पीछे खदेड़ता हुआ उक्त बादशाह एक किलेके पास पहुँचा और एक लकड़ीकी सीढ़ीके सहारे केवल तीन साथियोंके साथ उसमें घुस गया। यहाँपर शत्रुओंसे घिरकर इसका एक साथी मारा गया और स्वयं यह छातीमें तीर घुस जानेसे बेहोश होकर गिर पड़ा। इसपर इसके बाकी बचे दो साथी इसकी रक्षार्थ शत्रुओंसे लड़ने लगे। ऐसे ही समय इसकी सेना किलेकी दीवार तोड़ मौक़ेपर पहुँच गई, जिससे इसके प्राण बच गये। किलेको जीतने और शत्रुओंका नाश करनेके बाद ऐलैक्ज़ैण्डर अपने

डेरेपर लाया गया। यहाँपर जिस समय इसकी छातीसे तीर निकाला गया उस समय इतना अधिक रुधिर निकला कि लोगोंको इसके बचनेकी आशा न रही। परन्तु अभी इसकी आयु बाकी थी इसलिये ज्यों त्यों कर बच गया।

यह युद्ध रावीके पास ही हुआ था, अतः कमज़ोर होनेके कारण ऐलैक्ज़ेण्डर रावीपर लाया गया और वहाँसे नावद्वारा अपनी सेनाके पड़ाव रावी और चिनाबके संगमस्थलपर पहुँचाया गया। यहींपर आकर मल्लोई लोगोंने और उनकी पड़ोसकी जातियोंने इसकी अधीनता स्वीकार की। यहाँसे रवाना होनेके पहले इसने फ़िलिपसको इन जातियोंका सत्रप (हाकिम) नियुक्त किया।

यहाँसे चलकर यह बेड़ा झेलम और व्यासके संगमको पारकर सिन्धुनदीके संगमपर पहुँचा। यही स्थान फ़िलिपसके ज़िम्मे किये हुए प्रदेशकी दक्षिणी सीमा थी। यहींपर ऐलैक्ज़ेण्डरकी स्त्री रोक्सानाका पिता परोपनिसदई (काबुलका) सत्रप बनाया गया। यहाँपर भी आसपासके बहुतसे लोग वश्यता स्वीकार करनेको बाध्य किये गये और जिन्होंने इसमें बाधा दी वे नष्ट कर दिये गये। इसी स्थानसे ऐलैक्ज़ेण्डरने अधिकांश सेना और हाथियोंको ले क्रेटेरोसको कन्दहार और सीस्तानके मार्गसे कारमेनिया पहुँचनेकी आज्ञा दी और आप खुद बाकी बची हुई सेनाके साथ पटल[1] पहुँचा। यहाँपर इसने अपने सेनापति हेफ़इस्टिओनको एक किला बनवाने और आसपास पानीके लिये कूँए खुदवानेकी आज्ञा दी। तथा जहाँपर सिन्धुकी दो धाराएँ

(१) यह शायद बाह्मनाबादके पास होगा।

जुदा होती थीं वहाँ नावोंके लिये घाट बनवानेका इरादा किया। इधर तो उपर्युक्त काम शुरू किया गया और उधर इसने सिन्धुकी इन दोनों धाराओंका अनुसन्धान किया। जब सब काम समाप्त हो गये तब रसद आदिका प्रबन्ध कर 'नीअरचोस' को जलमार्गसे नावोंका बेड़ा ले यूफ़्रेटसके मुहाने पर पहुँचनेकी आज्ञा दी और स्वयं स्थलसैन्यके साथ ई०स०से ३२५ (वि०सं०से २६८) वर्ष पूर्व मकरान होता हुआ पर्शिया (ईरान) की तरफ़ चला।

नीअरचोसके बेड़ेको मार्गमें अनुकूल हवा न मिलनेके कारण एक सुरक्षित स्थान पर कुछ दिन रुकना पड़ा। इसी स्थानका नाम उसने 'ऐलैक्ज़ैण्डरका स्वर्ग' रक्खा।

जिस समय ऐलैक्ज़ैण्डर कारमेनियामें पहुँचा उसी समय इसे सूचना मिली कि चिनाब और सिन्धुके संगमस्थलके उत्तरी प्रदेशके सत्रप फ़िलिपसको उसकी भारतीय सेनाने धोखेसे मार डाला है। इसीके साथ यह भी ख़बर मिली कि उक्त सत्रपके देशीय (मैसिडोनियन) अङ्गरक्षकोंने अपराधियोंको प्राणदण्ड दे दिया है।

यह सुन उसने तक्षशिलाके राजा आम्भिको और सिन्धुके ऊपरी भागके प्रदेशके सेनानायक इयूडीमसको कहला भेजा कि जब तक दूसरे सत्रपका प्रबन्ध न हो तब तक तुम उस प्रदेशका राज्य प्रबन्ध सँभालो। यह घटना ई० स०से ३२४ (वि०स०से २६७) वर्ष पूर्वकी है।

---

(१) आते समय सिकन्दर गान्धार और उत्तरी पंजाबसे होकर आया था और जाते हुए पश्चिमी पंजाब और सिन्धु प्रदेशकी तरफ़से गया था।

(२) यह स्थान शायद कहीं करांचीके पास होगा।

इस प्रकार सिन्धु परसे एक दूसरेसे जुदा होकर मार्गके अनेक प्रकारके कष्टोंको सहती हुई एलैक्ज़ैण्डरकी उक्त सेनाएँ ई० स० से ३२४ वर्ष पूर्व मई मासमें सूसामें पहुँच कर फिर आपसमें मिल गई।

इसके बाद ई० स० से ३२३ (वि० सं० से २६६) वर्ष पूर्व जून महीनेमें ३३ वर्षकी अवस्थामें बेबीलोनमें इस बादशाहकी मृत्यु हो गई और उससे इसका सब कराकराया गड़बड़ हो गया। इसका राज्य इसके सेनापतियोंने बाँट लिया।

इसके बाद ई० स० से ३२१ (वि० सं० से २६४) वर्ष पूर्व जब दुबारा ऐलैक्ज़ैण्डरके राज्यका विभाग किया गया तब 'एण्टिपेटर' ने पुरु और आम्भिको सिन्ध और पंजाबका स्वाधीन शासक मान लिया तथा ऐलैक्ज़ैण्डर द्वारा बनाये गये सिन्धुके मुहानेके सत्रप पीथोनको वहाँसे हटाकर सिन्धुके पश्चिमी प्रदेशका सत्रप बना दिया। इस प्रकार तीन वर्षके अन्दर ही अन्दर भारतवर्ष मैसिडोनियन लोगोंकी अधीनतासे निकल एकबार फिर स्वाधीन हो गया। केवल 'इयुडेमस' ई० स० से ३१७ (वि० सं० से ३६०) वर्ष पूर्व तक सिन्धुके पासके कुछ प्रदेशपर थोड़ा-बहुत अधिकार जमाये रहा। इसने सिकन्दरकी मृत्युके बाद स्वतन्त्र होनेकी इच्छासे अपने साथी पोरसको धोखेसे मार डाला। इसलिये मौर्य चन्द्रगुप्तकी अधीनतामें पंजाबवालोंने ई० स० से ३२२ (वि० सं० से २६५) वर्ष पूर्व इसके राज्यका बहुतसा हिस्सा छीन लिया। अन्तमें यूमिनसकी सहायताके लिये ई० स० से ३१७ (वि० सं० से २६०) वर्ष पूर्व यह अपनी सेनासहित भारत छोड़ चला गया। मि० विन्सैण्ट स्मिथके लेखानुसार करीब १९ महीने तक ऐलैक्ज़ण्डर सिन्धुके पूर्वमें रहा था।

ऐलैक्ज़ैण्डरका आक्रमण भारतके लिये एक साधारण तूफ़ान था, जो आया और बिना किसी प्रकारका विशेष चिह्न छोड़े ही तत्काल निकल गया। संस्कृत साहित्यमें इस घटनाका उल्लेख न होना ही इसका सबसे बड़ा प्रमाण है।

ई० स० से ३०५ (वि० सं० से २४८) वर्ष पूर्व सीरियाके राजा सिल्यूकस निकोटार (विजेता) ने ऐलैक्ज़ैण्डरके जीते हुए भारतीय प्रदेशोंपर फिर एकबार अधिकार करनेकी चेष्टा की। परन्तु मौर्यवंशी चन्द्रगुप्तसे इसे हार माननी पड़ी।

आजकलके सिन्धु और औक्सस नदियोंके पास रहनेवाले वहाँके छोटे छोटे राजा लोग अपनेको ऐलैक्ज़ैण्डरका वंशज बतलाते हैं। मि० स्मिथने लिखा है कि शायद ये रानी केलिओफिस द्वारा उत्पन्न हुए ऐलैक्ज़ैण्डरके पुत्रके वंशज हों[1]। इनकी संख्या आठके करीब[2] है।

ऐलैक्ज़ैण्डरके वर्णनमेंके मल्लोई आदि जातियोंके हालको पढ़नेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ईसवीसन् पूर्वकी चौथी शताब्दीमें भी भारतमें प्रजातन्त्र राज्य विद्यमान थे और यहाँके लोग बड़े समृद्धिशाली और व्यापारकुशल थे।

---

(१) ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ५८-५९।

(२) १ दरवाज, २ कुलाब, ३ शिघनान, ४ वखन, ५ चितराल, ६ गिलगत, ७ इस्करदोके राजा और ८ बदखशांके पुराने मीर।

मौर्य-वंश ।

[ई० स० से ३२२ (वि० स० से २६५) वर्ष पूर्वसे ई० स० से १८५ (वि० सं से १२८) वर्ष पूर्व तक ।]

मत्स्यपुराणमें लिखा है[1]:—

उद्धरिष्यति कौटिल्यः समाद्वादशभिः सुतान् ।
भुक्त्वा महीं वर्षशतं ततो मौर्यान् गमिष्यति ॥ २१ ॥
भविता शतधन्वा च तस्य पुत्रस्तु षट्समाः ।
बृहद्रथस्तु वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः ॥ २२ ॥
षट्त्रिंशत्तु समा राजा भविता शक एव च ।
सप्तानां दशवर्षाणि तस्य नप्ता भविष्यति ॥ २३ ॥
राजा दशरथोऽष्टौ तु तस्य पुत्रो भविष्यति ।
भविता नववर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः ॥ २४ ॥
इत्येते दश मौर्यास्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुन्धराम् ।
सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान् गमिष्यति ॥ २५ ॥

अर्थात् नौ नंदोंके १०० वर्ष राज्य कर लेने पर उनको नष्ट करके चाणक्य नामक ब्राह्मण मौर्य-राज्य स्थापन करेगा । इस वंशमें शतधन्वा, बृहद्रथ आदि दस राजा १३७ वर्ष तक राज्य करेंगे । इनके बाद शुङ्ग वंशका राज्य होगा ।

इसी प्रकार विष्णुपुराणमें लिखा है[2]:—

---

(१) मत्स्यपुराण, अध्याय २७२, पृ० २५० ।
(२) विष्णुपुराण, अध्याय २४, पृ० १९९ ।

ततश्च नव चैतान् नंदान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति। तेषामभावे मौर्य्याः पृथिवीं भोक्ष्यंति। कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्पन्नं राज्येऽभिषेक्ष्यति। तस्यापि पुत्रो बिन्दुसारो भविष्यति। तस्याप्यशोकवर्द्धनस्ततस्सुयशास्ततश्च दशरथस्ततश्च संयुतस्ततश्शालिशूकस्तस्मात् सोमशर्मा। तस्यापि सोमशर्म्मणश्शतधन्वा। तस्यानु बृहद्रथनामा भविता। एवमेते मौर्य्या दशभूपतयो भविष्यंति अब्दशतं सप्तत्रिंशदुत्तरम्। तेषामन्ते पृथिवीं दश शुंगा भोक्ष्यंति।

अर्थात् नवनन्दोंको नष्ट करनेवाले चाणक्य द्वारा अभिषिक्त किये मौर्य चन्द्रगुप्तके वंशमें बिन्दुसार, अशोकवर्द्धन, सुयशा, दशरथ, संयुत, शालिशूक, सोमशर्मा, शतधन्वा और बृहद्रथ नामक राजा होंगे। इन दस राजाओंका राज्य १३७ वर्ष रहेगा और अन्तमें शुंगवंशी राजा पृथ्वीके स्वामी होंगे।

बौद्ध ग्रन्थोंसे पाया जाता है कि बुद्धके वंशमें ही मौर्यवंशी राजा हुए थे। यदि यह ठीक हो तो इनका शाक्यवंशी होना सिद्ध होता है। उक्त ग्रन्थोंमें यह भी लिखा है कि चन्द्रगुप्तका पिता हिमालय प्रदेशके एक छोटेसे राज्यका स्वामी था और उक्त प्रदेशमें मोर अधिकतासे होनेके कारण ही वहाँका राज्य मौर्य राज्य कहलाता था।

विद्वानोंका अनुमान है कि उक्त प्रदेशमें मोर अधिक होनेसे ही मौर्य लोग हिन्दूधर्मकी प्रचलित प्रथाके प्रतिकूल मोर खाया करते थे[1]। कथाओंमें ऐसी भी प्रसिद्धि है कि नन्दवंशके राजा महानन्दकी मुरा नामक नाई जातिकी स्त्रीसे चन्द्रगुप्तका जन्म हुआ था। इसीसे इसके वंशज मौर्य कहलाये। परन्तु इस कथाका उल्लेख किसी ग्रन्थमें नहीं मिलता है।

---

(१) अशोकका पहला शिलालेख—'दुवे मजुला एके मिगे।'

विशाखदत्तने ई० स० ४०० (वि० सं० ४५७) के आसपास मुद्राराक्षस नामक नाटक बनाया था[1] । इससे प्रकट होता है कि चाणक्य चन्द्रगुप्तको 'वृषले[2]' कहकर पुकारा करता था[3] ।

इन कथाओंके विषयमें विद्वानोंका अनुमान है कि मौर्यवंशियोंके बौद्ध हो जानेके कारण ब्राह्मण धर्मको बहुत कुछ हानि उठानी पड़ी थी । इसी कारण उन लोगोंने मौर्योंको पतित और शूद्र प्रसिद्ध करनेके लिये उक्त कथाओंकी सृष्टि कर ली होगी ।

जो कुछ भी हो, यह तो कहना ही पड़ेगा कि इस वंशका संस्थापक चन्द्रगुप्त और उसका पौत्र अशोक जगत्प्रसिद्ध हो गये हैं । यह बात उनके इतिहाससे सिद्ध होगी ।

मौय संवत् ।

हाथी-गुंफा (उदयगिरि—उड़ीसा) से एक लेख मिला[4] है । यह कलिंगके जैन राजा खारवेलका है । इसका समय इसमें इस प्रकार लिखा है:—

'पनंतरियसठिवससते राजमुरियकाले वोछिने च चोयठ अगसतिकुतरियं'

इससे इस लेखका मौर्य संवत् १६५ का होना सिद्ध होता है । परन्तु अभी तक इस विषयके विशेष प्रमाण न मिलनेसे इसके आरम्भके विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते ।

---

(१) स्मिथकी अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ४३, नोट १ ।
(२) वृषल शूद्रको कहते हैं । (३) मुद्राराक्षस, तृतीय अङ्क, पृ० ९५ ।
(४) आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, १९०५-१९०६ ।

परन्तु सम्भवत: इसका प्रारम्भ ईसवी सन्से ३२२ (वि० सं० से २६५) वर्ष पूर्वके निकटसे होना प्रतीत होता है; क्योंकि उसी समयके आसपास भारतका प्रतापी राजा मौर्य चन्द्रगुप्त मगधके सिंहासनपर बैठा था।

चन्द्रगुप्त मौर्य।

ईसवी सन्से ३२३ (वि० सं० से २६६) वर्ष पूर्व जब जगत्प्रसिद्ध और भारतपर जोरशोरके साथ आक्रमण करनेवाला पहला पश्चिमी राजा सिकन्दर भारतसे लौटते हुए मार्गमें बेबीलोन[1] नगरमें ज्वराक्रान्त हो इस असार संसारसे कूच कर गया तब उसके अधीनके देशोंमें बड़ी गड़बड़ मची। पंजाबके लोग भी यवनशासनको दूर कर स्वाधीन होनेकी चेष्टा करने लगे। इसी छीना-झपटीमें मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त बलवाइयोंका मुखिया हो गया और अन्तमें धीरे धीरे भारतका महान् प्रतापी राजा बन बैठा।

कथासरित्सागर और मुद्राराक्षस नाटकसे प्रकट होता है कि इसने चाणक्यकी सहायतासे पाटलिपुत्रका राज्य प्राप्त किया था।

परन्तु अब तक यह निश्चय नहीं हुआ है कि इसने पहले पाटलि[2]पुत्रका राज्य प्राप्त किया या पंजाबकी तरफ़का।

ग्रीक[3] लेखकोंके लेखोंसे पता चलता है कि जब ईसवी सन्से ३२६ या ३२५ वर्षपूर्व सिकन्दर पंजाब और सिन्धकी तरफ़से निकला

---

(१) आधुनिक बगदादके पास।

(२) यदि पहले पाटलिपुत्रका राज्य प्राप्त किया होगा तो इस घटनाका समय ई० स० से ३२५ (वि० सं० से २६८) वर्ष पूर्व होगा।

(३) प्लुटार्कका एलक्ज़ेण्डर, चैपटर ६२।

था तब नवयुवक चन्द्रगुप्त उससे मिला था और कई दिनों तक उसके साथ भी रहा था। परन्तु अन्तमें किसी अज्ञात कारणसे सिकन्दरको इसपर सन्देह हो गया। इससे यह वहाँसे चला आया।

अधिकारप्राप्तिके समय शायद इसकी अवस्था २५ वर्षके करीब थी। धीरे धीरे इसका अधिकार कोशल, तिरहुत, बनारस, अङ्ग और मगध देश तक फैल गया। इसकी राजधानीका नाम पाटलिपुत्र (पटना) था।

इसके मन्त्री चाणक्यके दूसरे नाम कौटिल्य और विष्णुगुप्त भी थे। इसीका लिखा हुआ अर्थशास्त्र[1] राजनीतिका बड़ा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इससे उस समयकी अवस्थाका बहुत कुछ पता चलता है।

ईसवी सन्से ३०५ (वि० सं० से २४८) वर्ष पूर्व सीरियाके राजा सिल्यूकस निकटोर (विजेता) ने स्वर्गवासी बादशाह सिकन्दरके जीते हुए भारतीय प्रदेशोंपर अधिकार करनेके लिये हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की। परन्तु ई० स० से ३०३ (वि० सं० से २४६) वर्ष पूर्व उसे चन्द्रगुप्तसे हारना पड़ा और इसकी एवज़में सिल्यूकसको अपनी कन्याका विवाह मगधेश्वरसे कर काबुल, हिरात, कन्दहार और बलुचिस्तानके प्रदेश इसके हवाले करने पड़े। चन्द्रगुप्तने भी ५०० हाथी भेट दे अपने नवीन श्वसुरका सत्कार किया।

इस प्रकार इन दोनोंके आपसमें मैत्री हो गई और दोनोंके राज्योंके बीच हिन्दुकुशपर्वत प्राकृतिक सीमा निर्धारित किया गया[2]। इसके उपरान्त सिल्यूकसने मैगेस्थनीज़को अपना राजदूत बनाकर मौर्य

(१) शामशास्त्रीने इसका अँगरेजी अनुवाद छपवाया है।
(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ११९।

राजाकी सभामें भेजा। उसने उस समयका हाल अपनी पुस्तकमें इस प्रकार लिखा है:—

पाटलिपुत्र।

यह नगर ८० स्टेडिया (९ मीलके करीब) लम्बा और १५ स्टेडिया ($१\frac{१}{२}$ मीलके करीब) चौड़ा था। इसके इर्द गिर्द लकड़ीकी बड़ी मज़बूत शहर-पनाह थी। इसमें तीर चलानेके लिये छेद बने हुए थे। तथा यह शहर-पनाह ६४ फाटक और ५७० बुर्जोंसे सुशोभित थी। शहरके एक तरफ़ गंगा और दूसरी तरफ सोनकी धारा बहती थी। शहर पनाहके चारों तरफ़ ६०० फ़ीट चौड़ी और करीब ३० हाथ गहरी खाई थी। इसमें सोनका जल भरा जाता था।

सड़कें।

भारतकी सीमासे पाटलिपुत्र तक राजमार्ग बना हुआ था। यह मार्ग शायद पुष्कलावती (गान्धारकी राजधानी) से तक्षशिला होकर झेलम, व्यास, सतलज, जमनाको पार करता हुआ तथा हस्तिनापुर, कन्नौज और प्रयाग होता हुआ पाटलिपुत्र पहुँचता था। इस पर आध आध कोसके फ़ासलेसे पत्थर लगे थे। इन पर मार्गका फ़ासला और स्थानका नाम लिखा रहता था।

सम्भवत: इसी मार्गसे मैगेस्थनीज़ पाटलिपुत्रमें आया था। न माळूम और भी इसी प्रकारके कितने ही अन्य मार्ग (सड़कें) उस समय विद्यमान होंगे; जिनको देखनेका सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं हुआ होगा।

---

(१) इण्डिया एण्ड दि वैस्टर्न वर्ल्ड, पृ० ४२–४३।

उपर्युक्त सड़ककी लम्बाई १०,००० स्टेडियां[1] (१००० कोस) थी और इस प्रकारकी सड़कों आदिकी मरम्मतके लिये एक अलग ही विभाग था। यही विभाग इनका प्रबन्ध किया करता था।

इस विवरणसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऐसे मार्गोंसे व्यापार और सेना-संचालनमें बड़ा सुभीता रहता होगा।

राजा।

इसका निवासस्थान (राजमहल) शहरके बीचों बीच था और यह सुन्दर और अमूल्य वस्तुओंसे सजा रहता था। राजाकी पोशाक भी बड़ी भड़कीली होती थी। यह (राजा) दिनभर राजसभामें बैठकर न्याय किया करता था और वैदेशिक दूतों आदिसे मिलता था।

राजाकी रक्षाके लिये औरतें नियत होती थीं जो हरदम राजाके साथ रहती थीं और इन्हींपर ख़ास तौरसे राजरक्षाका भार रहता था। दूसरे सिपाही आदि बाहर दरवाज़ेपर पहरा दिया करते थे। ये औरतें बाल्यावस्थामें ही उनके मा-बापोंसे ख़रीद ली जाती थीं और इसी कार्यके लिये ख़ास तौरसे शिक्षित की जाती थीं। ये जिस प्रकार शस्त्रविद्या सीखती थीं उसी प्रकार गानविद्यामें भी दक्षता प्राप्त करती थीं। विद्वानोंका अनुमान है कि शायद ये औरतें यूनान देशकी होती थीं और दासवृत्तिके लिये उनके अभिभावकोंसे ख़रीद ली जाती थीं। इन यवनियोंके यहाँकी भाषा और रहन-सहनसे पूर्णतया अपरिचित होनेके कारण इनके किसी षड्यन्त्रमें सम्मिलित होनेका भय भी नहीं रहता था।

इसकी पुष्टिमें संस्कृत नाटकोंसे कुछ अवतरण दिये जाते हैं:—

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० १३५।

"एसो[1] बाणासणहत्थाहिं जवणीहिं वणपुप्फमालाधारिणीहिं पडिवुदो इदो एव्व आअच्छदि पिअवअस्सो।"

अर्थात्—जंगली फूलोंकी माला धारण करनेवाली और हाथोंमें धनुष ली हुई यवनियोंसे घिरा हुआ राजा इधर ही आ रहा है।

आगे चल कर इसी नाटकके छठे अङ्कमें जिस समय मातलिने विदूषकसे छेड़छाड़ की और वह रक्षाके लिये चिल्लाया उस समय उसकी रक्षाके लिये उद्यत हुए राजाने अपना धनुष माँगा, वहाँ पर लिखा है:—

"**प्रविष्य शार्ङ्गहस्ता यवनी**"[2] जिसका तात्पर्य यह है कि यवनीने धनुष लाकर हाजिर किया।

इसी प्रकार विक्रमोर्वशी नाटिकामें भी एक स्थल पर लिखा है:—

"**यवनी धनुर्हस्ता प्रविश्य**"[3]

अर्थात् यवनी धनुष हाथमें लेकर हाजिर हुई।

इसी प्रकार और भी अनेक अवतरण मिल सकते हैं।

राजा जब कभी बाहर जाता था तब उसकी सवारी बड़ी तड़क भड़कके साथ निकलती थी। उसकी सवारीके चारों तरफ सशस्त्र उपर्युक्त स्त्रियाँ चलती थीं और उनके इर्द गिर्द बर्छेवाले सिपाही रहते थे। मार्गमें रस्सियोंसे सीमा निर्धारित कर दी जाती थी। इस सीमाको उल्लंघन करनेवाला—चाहे वह पुरुष हो या स्त्री—समान रूपसे मृत्युदण्डका भागी होता था।

---

(१) "एष बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिर्वनपुष्पमालाधारिणीभिः परिवृत इत एवागच्छति प्रियवयस्यः" (शकुन्तला नाटक, अङ्क २)।

(२) शकुन्तला, अङ्क ६, पृ० २२४। (३) विक्रमोर्वशी, अङ्क ५, पृ० १२३।

शिकारमें भी ये यवनियाँ राजाके साथ रहती थीं जैसा कि ऊपर उल्लेख किये हुए शकुन्तला-नाटकके उदाहरणसे प्रकट होता है। यदि राजा हाथी पर बैठ कर शिकारको जाता था तो ये भी रथों, घोड़ों और हाथियों पर सवार हो उसके साथ साथ रहती थीं।

सेना।

चन्द्रगुप्तकी सेनामें ६,००,००० पैदल, ३०,००० सवार, ९,००० हाथी और असंख्य रथ थे। रथोंमें सारथीके सिवाय दो योद्धा और हाथीपर महावतके अलावा तीन सिपाही बैठा करते थे। इस हिसाबसे इसकी सेनामें कुल ६,९०,००० मनुष्य होंगे।

शस्त्रोंमें उस समय ढाल, तलवार, बरछा और तीर कमान काममें लाये जाते थे।

पैदल सिपाहियोंके धनुष उनकी ऊँचाईके बराबर होते थे और उनको वे पृथ्वीपर टिकाकर और बाँए पैरसे दबाकर चढ़ाते थे। उनका तीर भी करीब तीन गज़के लम्बा होता था और भारतीय योद्धाके हाथसे चलाये जानेपर ढालों और कवचोंको कागज़की तरह छेद देता था। उनकी ढाल भी बहुत बड़ी होती थी। बहुतसे सिपाही नेज़ा (भाला) और तलवार भी रखते थे। ये तलवारें भी करीब तीन हाथ तक लम्बी होती थीं और दोनों हाथोंसे चलाई जाती थीं। सवारोंके पास दो भाले रहते थे[3] और उनकी ढालें भी पैदल सिपाहियोंसे छोटी

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १२५।

(२) प्राचीन भारतवर्षकी सभ्यताका इतिहास, पृ० ३१।

(३) इण्डिया एण्ड दि वैस्टर्न वर्ल्ड, पृ० ४९-५०।

होती थीं। इनके घोड़ोंके ज़ीन व लगाम नहीं होते थे। केवल मुँह-पर रस्सा बाँध दिया जाता था।

हाथी सेनाके एक ख़ास अङ्ग समझे जाते थे[1]।

सेनाका प्रबन्ध करनेके लिये ३० आदमियोंकी एक सभा होती थी[2]। यह सभा ६ उपसभाओंमें बँटी रहती थी। प्रत्येक उपसभामें ५ सभासद होते थे। षडङ्गिनी सेनाके एक एक अङ्गका प्रबन्ध एक एक उपसभाके अधीन रहता था। उसका विवरण इस प्रकार है:—

(१) नौका-विभाग—यह विभाग नौकाओंका प्रबन्ध करता था। उस समय इनसे भी युद्धमें काम लिया जाता था।

(२) रसद-विभाग—इसके अधीन सामानकी गाड़ियाँ सिपाहियों और पशुओंकी खाद्यसामग्री तथा इसी प्रकारके अन्य सेना-संबन्धी रसद-विभागके प्रबन्ध रहते थे।

(३) पैदल सेना-विभाग—इसके अधीन पैदल फ़ौजका प्रबन्ध होता था।

(४) रिसाला-विभाग—यह विभाग सवारोंके रिसालेका प्रबन्ध करता था।

(५) रथ-विभाग—यह विभाग युद्धके रथोंकी देख भाल करता था।

(६) हस्ति-विभाग—युद्धके हाथियोंका प्रबन्ध यह विभाग किया करता था।

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १२५।

(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १२६।

नगर-प्रबन्ध।

इसके लिये भी ३० सभ्योंकी एक सभा होती थी। यह भी पूर्वोल्लिखित सभाकी तरह ६ भागोंमें बँटी हुई रहती थी। उन विभागोंके कार्य इस प्रकार थे:—

(१) शिल्पकला-विभाग—यह विभाग शिल्पकलाकी देख भाल करता था। अर्थात् वस्तुओंकी कीमत निश्चित करना, कारीगरोंकी रक्षा करना और बढ़िया सामान बनवानेका प्रबन्ध करना इसी विभागके आधीन था।

(२) वैदेशिक-विभाग—इस विभागका काम विदेशियोंके जान-मालकी रक्षा करना था। अर्थात्—यही विभाग नगरमें और मार्गमें विदेशियोंकी हिफाजतका पूरापूरा प्रबन्ध करता था, उनके बीमार पड़नेपर उनकी सहायता करता था, और मर जानेपर उनकी लाशको गड़वा कर उनके माल असबाबको उनके उत्तराधिकारियोंके पास पहुँचवा देता था।

(३) जन्ममरण-विभाग—इसका काम प्रजाके जन्म-मरणकी गिनती रखना था। यह काम केवल कर लगानेके लिये ही नहीं किया जाता था। बल्कि प्रत्येक मनुष्यके जन्म-मरणका हाल राज्यसे छिपा न रहे, यह भी इसका उद्देश्य था।

(४) व्यापार-विभाग—यह विभाग वाणिज्य और व्यापारका प्रबन्ध करता था। नाप और तौलकी देख भाल करना भी इसीके जिम्मे था। तथा फ़सलकी पैदावारके बिकने आदिका हिसाब भी यही रखता था। कोई मनुष्य दुगना कर (टैक्स) दिये बिना एकसे

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १२७–१२९।

अधिक वस्तुका व्यापार न करे, इस बातकी देख भाल रखना भी इसी विभागके ज़िम्मे था।

(५) वस्तुनिरीक्षक-विभाग—दस्तकारीकी चीज़ोंकी देखरेख और उनके बेचनेका प्रबन्ध करना तथा नयी और पुरानी वस्तुओंको जुदा जुदा बिकवानेका इन्तिज़ाम करना इसका काम था।

(६) कर-विभाग—यह विभाग बिकी हुई वस्तुओंके मूल्यमेंसे दसवाँ हिस्सा करके रूपमें वसूल करता था। इसमें गड़बड़ करने-वालेको प्राणदण्ड दिया जाता था।

यद्यपि उपर्युक्त सभाओंका कार्य इस प्रकार बँटा हुआ होता था, तथापि सार्वजनिक स्थानों–बाज़ार, मन्दिर, घाट आदि–का प्रबन्ध इनकी संयुक्त महासभाके अधीन रहता था।

इनके अलावा एक विभाग ऐसा भी था; जिसके कर्मचारी नदि-योंकी देख भाल करते थे, भूमिको नापते थे और सब खेतवालोंको बराबर पानी मिले इसके लिये उन द्वारोंका निरीक्षण करते थे जिनमेंसे होकर मुख्य नहरका पानी अनेक शाखाओंमें बँटता था।

उस समय इस (आबपाशी) के लिये दूरदूरके सूबों तकमें प्रबन्ध किया जाता था। इसके प्रमाणमें यहाँपर शक संवत् ७२ (ई० स० १५०=वि० सं० २०७) का महाक्षत्रप रुद्रदामाका एक लेख पेश किया जा सकता है। यह लेख[1] गिरनारसे मिला है। इससे प्रकट होता है कि चन्द्रगुप्तके समय उसकी तरफ़से वैश्य पुष्यगुप्त पश्चिमी माल-वेका सूबेदार था। उसने वहाँपर सुदर्शन नामक एक झील बनवाई

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ८, पृ० ३६ ।

थी। परन्तु उस समय उसमें नहरोंका प्रबन्ध नहीं हो सका था। अत: इस कार्यकी पूर्ति चन्द्रगुप्तके पौत्र अशोकके समय वहाँके सूबेदार पर्शियन राजा तुषास्फने की थी।

पाठक! यह तो एक झीलका वर्णन हुआ। परन्तु जिस प्रकार उपर्युक्त झीलके नष्ट हो जानेसे आज कल वहाँके जंगलमें उसका पता लगाना भी कठिन हो गया है उसी प्रकार न मालूम उस समयकी कितनी नहरें आदि इस समय रसातलमें समाई पड़ी होंगी। यह सब कालकी कराल गतिका प्रभाव है। नहीं तो यह बात स्वयं सिद्ध है कि जब दूरदूरके प्रान्तोंमें इस प्रकार कृषिकी उन्नतिके लिये नहरें निकाली गई थीं तब राजधानीके निकट तो अवश्य ही इसके लिये उत्तमोत्तम प्रबन्ध किये गये होंगे।

शिकारका, लगान-वसूलीका, भूगर्भजात वस्तुओंका और सड़कोंकी मरम्मतका प्रबन्ध भी इसी विभागके अधीन था। अर्थात् यही विभाग शिकारियोंकी योग्यताके अनुसार उन्हें दण्ड या पुरस्कार देता था, लगान वसूल करता था, भूगर्भसे उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं—लकड़ी, लोहा आदि—को काममें लानेवाले बढ़इयों, लुहारों और कान (खान) में काम करनेवालोंकी देख भाल करता था तथा सड़कोंकी मरम्मत करवाकर दस दस स्टेडिया (करीब आधे कोस) पर फ़ासला बतानेवाले पत्थर लगवाता था।

प्रान्तोंका प्रबन्ध।

दूरदूरके सूबोंके प्रबन्धके लिये राजघरानेसे सम्बन्ध रखनेवाले

(१) अर्ली हिस्ट्री, ऑफ़ इण्डिया, पृ० १२९।

सूबेदार नियत किये जाते थे। उन्हींके अधीन उन सब सूबोंका शासन रहता था।

गुप्तचर[1]।

अन्य विभागोंके अलावा एक ख़ास विभाग ख़बरनवीसीके लिये भी था। इस विभागके कर्मचारी प्रत्येक स्थान और समयकी ख़बर यथासमय राजाके पास पहुँचाया करते थे। तथा इनको राजासे हर-समय मिल सकनेकी इजाज़त रहती थी।

कृषि।

उस समय यहाँकी पृथ्वीमें दो फ़सलें होती थीं और कन्द, फल, मूल भी बहुतायतसे मिलते थे। दुर्भिक्षका भय नहीं था। इसका एक कारण तो समय पर वर्षाका होना था और दूसरा कारण यह था कि किसानोंके कार्यमें किसी प्रकारकी गड़बड़ नहीं की जाती थी। यदि उनके खेतोंके पास ही युद्धानल धधक उठता तो भी उनके खेतोंकी रक्षा की जाती थी और यूरोपवालोंमें जिस प्रकार युद्धके समय भूमिको उजाड़ने और उसकी उर्वरता नष्ट करनेकी प्रथा चली आती है, उस प्रकार शत्रुभूमिके वृक्षोंको काट डालने या भस्म करनेकी रीति यहाँ पर न थी।

फ़सलको पानी देनेके लिये कूँओं और नहरोंका भी अच्छा प्रबन्ध था। राजा कृषिकी उपजका चौथा हिस्सा लिया करता था।

खनिज पदार्थ।

पृथ्वीके गर्भमें सब प्रकारकी धातुओंकी असंख्य कानें थीं और इनमेंसे सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा और जस्ता आदि अनेक धातुएँ

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १२९।

निकलती थीं। इनसे कामकाजकी वस्तुएँ, गहने और युद्धसामग्री बनाई जाती थी।

कानूनें।

प्रत्येक अपराध बड़ी सख़्तीके साथ दबाया जाता था। यदि कोई किसीका अङ्गच्छेद कर डालता था तो उसकी एवज़में अपराधीका भी वही अंग भंग कर दिया जाता था और इसके अलावा उसका हाथ भी काट लिया जाता था। यदि कोई किसी कारीगरका हाथ या आँख तोड़ फोड़ देता था तो उसे प्राणदण्ड दिया जाता था।

झूठी गवाही देनेवालेका भी अङ्ग (जीभ) भङ्ग कर दिया जाता था। बेचे हुए मालकी कीमतका दसवाँ भाग चुंगीके रूपमें न देनेवाला और राजाकी सवारीके समय निर्धारित की हुई सीमाके बीच प्रवेश करनेवाला प्राणदण्डका भागी होता था। बहुतसे अपराधोंमें मुण्डनका दण्ड भी दिया जाता था।

समाज।

उस समयके लोग बड़े सीधे और मितव्ययी होते थे। इसी कारण हमेशा सुखसे रहते थे। वे यज्ञोंको छोड़ कभी मदिरा नहीं पीते थे। उनको न्यायालयोंमें जानेका बहुत ही कम काम पड़ता था। वे लोग आपसमें एक दूसरेका विश्वास रखते थे और देनलेनके मामलोंमें लिखा पढ़ी या गवाहोंकी आवश्यकता नहीं होती थी। वे लोग एक दूसरेके पास अपनी अमानत रखनेमें भी संकोच नहीं करते थे। उनमें गिरवी या

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १३०–३१ तथा मेगास्थनीज़का भारतवर्षीय वर्णन पृ० ३४।

धरोहरके बाबत कभी कोई मुकद्दमा नहीं होता था। वे अक्सर अपने घर और सम्पत्तिको भी यों ही विना विशेष प्रबन्धके छोड़ देते थे। उस समय चोरी बहुत कम होती थी। वे सत्य और धर्मका समान आदर करते थे। वे किसी विदेशीको भी गुलामीके बन्धनमें कभी नहीं जकड़ते थे। उस समय धर्मसूत्रोंके अनुसार न्याय हुआ करता था।

एरियनने नियार्कसका एक लेखांश उद्धृत किया है। उसमें लिखा है:—

" भारतवासी नीचे रूईका एक वस्त्र पहनते हैं; जो घुटनेके नीचे आधी दूरतक रहता है और उसके ऊपर एक दूसरा वस्त्र पहनते हैं जिसे कुछ तो वे कंधों पर रखते हैं और कुछ अपने सिरके चारों ओर लपेट लेते हैं। वे सफ़ेद चमड़ेके जूते पहनते हैं; जो बहुत ही अच्छे बने हुए होते हैं।"

इस लेखसे हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें लिखे हुए ' अधोवस्त्र ' और ' उत्तरीय ' का बोध होता है। साथ ही यह भी प्रकट होता है कि उस समय उत्तरीय वस्त्रसे ही उष्णीश (साफ़े) का भी काम ले लिया जाता था।

भारतके अधिकांश लोग अन्न पर ही गुज़ारा करते थे, परन्तु पहाड़ी लोग शिकार किया करते थे।

ऊपर उल्लेख की हुई बातोंके अलावा वे लोग अपनी शारीरिक सजावटके बड़े शौकीन होते थे। वे अपने शरीरको नीरोग रखनेके लिये *अभ्यङ्ग* (मालिश) करवाया करते थे। यह मालिश आबनूसके चिकने बेलनोंको त्वचा पर फिराकर की जाती थी। अमीरोंके पहननेके

वस्त्र उत्तम सुनहले कामसे युक्त होते थे। वे बढ़िया मलमलके फूल-दार कपड़े भी पहनते थे तथा सुवर्णके आभूषणों और रत्नोंसे अङ्गकी शोभा बढ़ाया करते थे। जब वे घरसे बाहर निकलते थे तो एक आदमी पीछेसे छत्र थामे साथ साथ चलता था।

जाति या वर्ण।

मैगेस्थनीज़के लेखानुसार उस समयके लोग निम्नलिखित सात विभागोंमें विभक्त थे:—

(१) दार्शनिक—इस वर्गके लोग यद्यपि संख्यामें कम थे तथापि प्रतिष्ठामें सबसे बढ़े चढ़े थे। इनका काम धार्मिक कृत्योंका संपादन करना था। ये लोग ज्योतिष आदिके आधारपर भविष्यद्वाणी भी किया करते थे। यदि वह ठीक निकलती थी तो भविष्यद्वक्ता कर आदिसे मुक्त कर दिया जाता था। परन्तु तीन बार झूठी भविष्यद्वाणीका करनेवाला आजन्म मौन रहनेके दण्डका भागी होता था।

(२) कृषक—इस वर्गके लोगोंकी संख्या सबसे अधिक थी। ये लोग स्वभावके सीधे तथा सज्जन होते थे और प्रायः गाँवोंमें ही रहा करते थे। युद्धादिके समय भी इनकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध रहता था। ये सैनिक सेवासे मुक्त होते थे।

(३) पशुपालक—ये लोग शिकार करते, चौपाये रखते और उन्हें बेचते या किरायेपर दिया करते थे। ये लोग इधर उधर घूमते रहते थे और अपने रहनेके लिये डेरे रखते थे। कृषि आदिमें हानि पहुँचानेवाले पशुपक्षियोंका शिकार करनेके कारण इन्हें राज्यकी तरफ़से नियत प्रमाणमें कुछ अन्न मिला करता था।

(४) शिल्पी और व्यापारी—इस वर्गके बहुतसे व्यापारी तो बरतन आदि बेचते थे और बहुतसे कारीगर सामान आदि बनाते थे। इनमेंसे कुछको तो कर देना पड़ता था और कुछको राज्यसम्बन्धी नियत सेवाएँ (बेगार) करनी पड़ती थीं। परन्तु जहाज़ और कवच बनानेवाले राजाके ही नौकर समझे जाते थे। उन्हें भोजन तथा वेतन उसीकी तरफ़से मिलता था।

(५) सैनिक—ये लोग राजाकी तरफ़से केवल युद्धार्थ ही वेतन पाते थे और शान्तिके समय आनन्दसे बैठे बैठे खाते थे।

(६) निरीक्षक—इन लोगोंका काम प्रत्येक बातका निरीक्षण करना था। ये लोग नगर, सेना, आदि प्रत्येक स्थानकी देख भाल करते रहते थे और छिपेछिपे सब ख़बरें राजाके पास पहुँचाते थे। राज्यके बड़े बड़े पद और न्यायालय आदिकोंका कार्य इसी वर्गके लोगोंके सुपुर्द रहता था।

उस समय विना राजाज्ञाके किसीको भी अपना व्यवसाय छोड़ दूसरा व्यवसाय ग्रहण करनेकी अथवा एकसे अधिक व्यवसाय करनेकी आज्ञा नहीं थी।

मैगेस्थनीज़के आधार पर लिखी उपर्युक्त बातोंसे पाठकोंको भारतकी आजसे करीब २२ सौ वर्ष पूर्वकी सभ्यताकी बहुत कुछ झलक माळूम हुई होगी। यह सब वृत्तान्त एक निष्पक्ष विदेशी राजदूतका लिखा हुआ है और उस समयके भारतकी समृद्धि और यहाँके उत्तम राज्यप्रबन्धका बोध कराता है।

इस विवरणको पढ़कर हर एक आदमी समझ सकता है कि उस

समय भारतकी अवस्था ऐसी दीन हीन नहीं थी और उस समयके भारतवासी उदरज्वालासे जलकर असमयमें ही कालके गालमें नहीं समा जाते थे। यहाँका शिल्प और वाणिज्य उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँचा हुआ था और यहाँकी बनी हुई वस्तुएँ दूर दूरके देशोंमें बिकनेके लिये जाती थीं।

रौलिनसन साहबकी पुस्तकसे इस विषयके कुछ प्रमाण नीचे उद्धृत करते हैं। उक्त साहबने अपनी 'इण्डिया एण्ड दि वैस्टर्न वर्ल्ड' नामक पुस्तकके ५ वें पृष्ठमें लिखा है कि सिन्धु और युफ्रेटिसके बीचका व्यापार बहुत पुराना है। इस सम्बन्धका सबसे प्राचीन प्रमाण हिटाइट राजाओंके लेखोंमें मिलता है। ये लेख ईसासे चौदह या पन्द्रह सौ वर्ष पहलेके समझे जाते हैं। इन राजाओंके नाम आर्योंसे मिलते हुए ही होते थे।

असुर बेनीपाल (ई० स० से ६६८ से ६२६=वि० सं० से ६११ से ५६९ वर्ष पूर्व) के समय सिन्धु शब्दका प्रयोग भारतकी रूईके अर्थमें होता था। इस असुर बेनीपालने भारतमें पैदा होनेवाले रूई आदिके बीज लानेके लिये आदमी भेजे थे।

इसी प्रकार ईसासे पूर्वकी छठी शताब्दीके नेबूचन्दनेज़रके महलों आदिमें भारतीय सागवानके लट्ठे लगे हुए मिलते हैं।

जातकोंसे भी भारतीय व्यापारियोंका नावमें बैठकर बावेरु (बेबीलोन) तक जाना प्रकट होता है।

अस्तु, अब हम फिर अपने प्रस्तुत विषय पर आते हैं।

इस प्रकार करीब २४ वर्ष निष्कण्टक राज्य करके भारतसम्राट्

चन्द्रगुप्त ई० स० से २९८ (वि० सं० से २४१) वर्ष पूर्वके निकट ५० वर्षकी आयुके पूर्व ही स्वर्गको सिधारा ।

प्रत्येक मनुष्य स्वयं विचार सकता है कि यह कैसा प्रतापी और विलक्षण राजा था; जिसने केवल २४ वर्षके अल्प समयमें ही अपने हाथों स्थापित किये नवीन राज्यको ऐसी उन्नत दशापर पहुँचा दिया। आजसे २२ सौ वर्ष पूर्वके इसके राज्यप्रबन्धका वर्णन पढ़कर हमारे पूर्वजोंको मूर्ख समझनेवाली आज कलकी सभ्याभिमानी जातियाँ भी आश्चर्यचकित होती हैं[1] । मि० विन्सैण्ट स्मिथने भी अपने इतिहासमें चन्द्रगुप्तके दक्षिण विजयपर विचार करते हुए लिखा है कि इस अलौकिक शक्तिशाली राजाके लिये दक्षिणका जीतना कुछ कठिन नहीं था। सम्भव है कि इसने भारतके दक्षिणी प्रदेशों पर भी बहुत कुछ प्रभाव जमा लिया होगा।

इस चन्द्रगुप्तका राज्य हिन्दुकुशसे लगाकर अफगानिस्तान, पंजाब, युक्तप्रदेश, बिहार और काठियावाड़ तक फैला हुआ था ।

सम्भव है इसीमें बंगाल भी शामिल हो; क्योंकि इसके अन्त समय नर्मदाके उत्तरसे अफ़गानिस्तान तक इसका अधिकार था। आश्चर्य नहीं कि इसने नर्मदाके दक्षिणमें भी विजय पाई हो ।

बहुतसे विद्वान् इसका शैव होना अनुमान करते हैं। परन्तु जैनोंका कहना है कि यह राजा जैन था और जब पाटलिपुत्रमें १२

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १२८ ।

(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १४९ ।

वर्षका काल पड़ा तब राज्य छोड़ भद्रबाहुके साथ श्रवणबेलगोला (माइसोर) में जाकर साधुकी तरह रहने लगा तथा वहीं अन्तमें अनशन व्रत ले स्वर्गको सिधारा।

विशाखदत्तने ई० स० ४०० (वि० सं० ४५७)के करीब मुद्राराक्षस नाटक बनाया था। उसमें चन्द्रगुप्तका वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है:—

चाणक्यने नन्द वंशको नष्ट कर चन्द्रगुप्तको पाटलिपुत्रका स्वामी बनाया। परन्तु नन्दका पुराना ब्राह्मण मन्त्री राक्षस (सुबुद्धि शर्मा) चन्द्रगुप्तको राज्यसे हटानेके लिये पर्वतकके पुत्र मलयकेतुको—जिसके पिताको चाणक्यने छलसे मरवा डाला था—चढ़ा लाया। परन्तु पर्वतककी मृत्युके करीब दस महीने बाद उसके पुत्र मलयकेतुको भी चाणक्यकी नीतिमें फँसना पड़ा।

बिन्दुसार।

यह चन्द्रगुप्तका पुत्र था और ई० स० से २९८ (वि० सं० से २४१) वर्ष पूर्व उसका उत्तराधिकारी हुआ।

इसका दूसरा नाम 'अमित्रघात' भी मिलता है।

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया पृ० १४६। यतिवृषभ नामक दिगम्बर जैनाचार्यने अपने 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' नामक ग्रन्थमें—जो कि शककी चौथी शताब्दिके लगभगका बना हुआ है—लिखा है—

मउडधरेसुं चरिमो जिणदिक्खं धरदि चंदगुत्तो य।
तत्तो मउडधरादो पव्वज्जं णेव गेण्हंति ॥ ७१ ॥

अर्थात् मुकुटधर राजाओंमें सबसे अन्तिम राजा चन्द्रगुप्तने जैनधर्मकी दीक्षा ली। उसके बाद कोई मुकुटधारी राजा जिनदीक्षा नहीं लेगा।

(२) विल्सन साहब इसका रचना-काल ईसाकी पाँचवीं शताब्दी अनुमान करते हैं।

चन्द्रगुप्तके समयसे जो ग्रीक (यवन) बादशाहोंके साथ सम्बन्ध स्थापित हुआ था वह इसके समय तक भी विद्यमान था । इसी लिये वहाँके राजा एण्टिओचस सोटेरने मैगेस्थनीज़के स्थानमें डाइमेचसको अपना राजदूत बनाकर इसके दरबारमें भेजा था।

उस समयके ग्रीक लेखकोंके लिखे विवरणसे पता चलता है कि इस राजाने एण्टिओचसको—जो कि ईसवी सन्से २८० (वि० स० से २२३) वर्ष पूर्व पश्चिमी एशियाका अधिपति था—लिखा था कि कृपाकर मेरे लिये वहाँके अंजीर, अंगूरकी मदिरा और एक अध्यापक ख़रीद कर भेज देना। इसके उत्तरमें एण्टिओचसने अंजीर और मदिरा तो भेज दी परन्तु अध्यापकके बारेमें लिखा कि ग्रीक-नियमानुसार अध्यापक ख़रीदा नहीं जा सकता[1]।

मिस्रके राजा टालेमी फ़िलाडैलफ़सने— जिसका समय ईसवी सन्से पूर्व २८५ से २४७ (वि० सं० से पूर्व २२८ से १९०) वर्ष तक था—अपना एक एलची मगधकी राजसभामें भेजा था। इसका नाम 'डायोनिसिअस' था। परन्तु निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि यह बिन्दुसारके समय आया था या उसके पुत्र अशोकके समय।

तारानाथ लिखते हैं कि बिन्दुसारने पूर्वी और पश्चिमी समुद्रके बीचका देश विजय किया था[2]।

इस प्रकार बिन्दुसारने करीब २५ वर्ष राज्य किया[3] और ई० स०

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया पृ० १४७।

(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १५४।

(३) बहुतसे स्थानोंपर इसका २८ वर्ष राज्य करना माना गया है।

से २७३ (वि० सं० से २१६) वर्ष पूर्व यह मृत्युको प्राप्त हुआ।

अशोक।

यह बिन्दुसारका पुत्र था और सब भाइयोंमें योग्यतम होनेके कारण अपने पिता (बिन्दुसार) द्वारा अपना युवराज बना लिया गया था।

बिन्दुसारके समय यह उत्तरपश्चिमी सीमान्त प्रदेश और पश्चिमी भारतका सूबेदार रह चुका था। उस समय उत्तरपश्चिमी सीमान्तप्रदेशमें काश्मीर, पंजाब और सिन्धु नदीके पश्चिमी प्रदेश थे। इस सूबेकी राजधानी तक्षशिला थी; जहाँ पर बड़े बड़े विद्वान् रहा करते थे और इसी कारण दूर दूरके लोग यहाँपर विद्याध्ययन करने आया करते थे। इसी प्रकार पश्चिमी भारतकी राजधानी उज्जयिनी (मालवेमें) थी और यह भी उस समय किसी तरह कम प्रसिद्ध न थी।

अशोकावदानमें लिखा है कि अशोक सुभद्राङ्गी नामकी ब्राह्मण जातिकी रानीसे उत्पन्न हुआ था। यह अपनी युवावस्थामें बड़ा उपद्रवी था। इसी कारण तक्षशिलामें उत्पन्न हुई गड़बड़को मिटानेके लिये भेजा गया था। इसने उस कार्यको बड़ी योग्यताके साथ पूरा किया।

सीलोनके लेखकोंने लिखा है कि अशोक अपने ९९ भाइयोंको मारकर राज्यपर बैठा था। केवल इसका एक छोटा भाई ही जीता

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १५५।
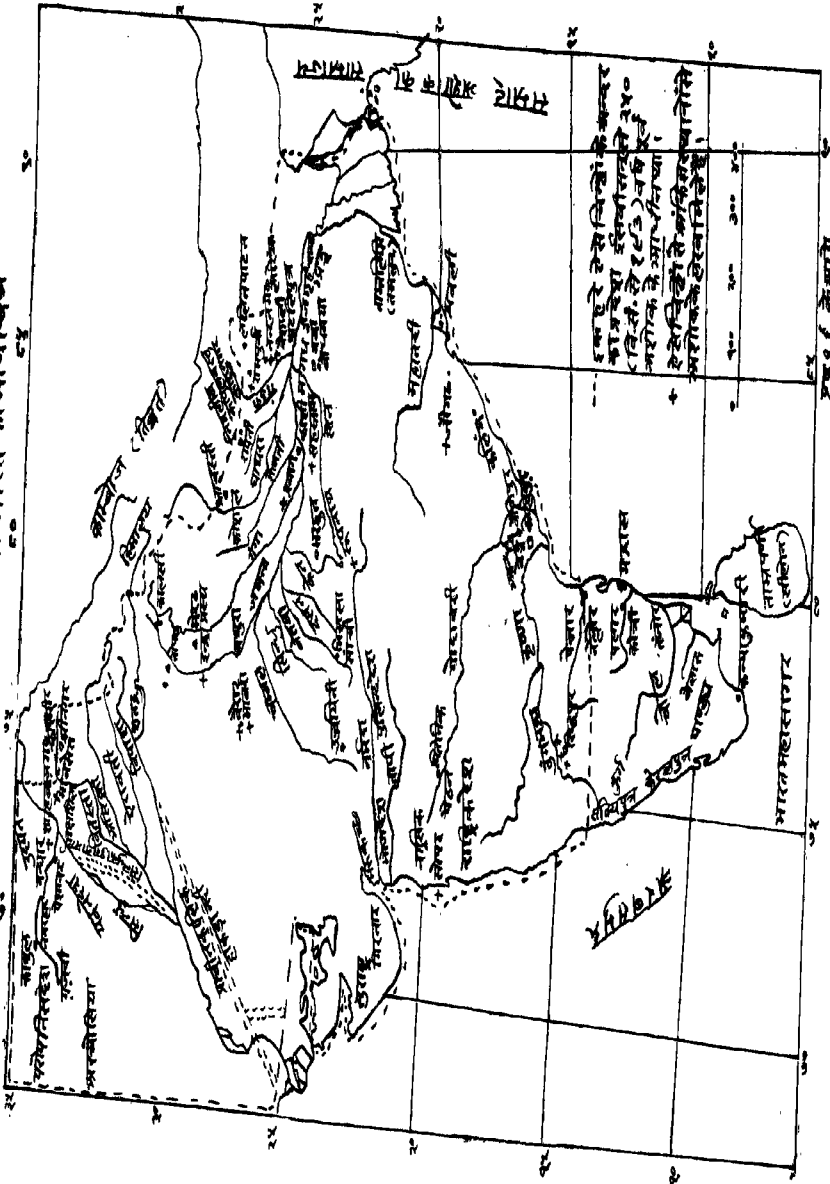
बचा था । परन्तु यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती । क्यों कि इसके पाँचवें शिलालेखमें निम्नलिखित पंक्तियाँ खुदी हैं:—

"एवं अनुबधं पजावति वा कटाभिकालेति वा महालकेति वा वियापटाते हिदा बहिलेसु चा नगलेसु सवेसु ओलोधनेसु भातिनं चने भगिनिना एवापि अंने नातिक्ये सवता वियापटा"

संस्कृतच्छाया—**एवमनुबन्धं प्रजावन्त इति वा कृताधिकारा इति वा महान्त इति वा व्यापृतास्त इह बाह्येषु च नगरेषु सर्वेषु अवरोधनेषु भ्रातॄणां चान्ये भगिनीनामेवमप्यन्ये ज्ञातिषु सर्वत्र व्यापृताः ।**

अर्थात्—प्रजाकी सुख-समृद्धि और धर्मप्रचारके लिये नगरोंमें, बाहर, महलोंमें, भाइयोंमें, बहनोंमें और इसी प्रकार अन्य रिश्तेदारोंमें भी मैंने कुटुम्बवाले, पेन्शनप्राप्त और वयोवृद्ध आदमी नियत कर दिये हैं ।

इससे प्रकट होता है कि अशोकके राज्याभिषेकके तेरहवें वर्ष तक—अर्थात् बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेनेके बाद तक—उसके भाई बहन जीवित थे । अत: अशोकके अपने भाइयोंको मार डालनेकी कथा बौद्धधर्मके महत्त्वको बढ़ानेके लिये ही कल्पित की गई है; जिससे लोगोंको मालूम हो कि जो अशोक पहले वैसा क्रूर था वही बौद्ध हो जाने पर ऐसा सज्जन और दयालु हो गया ।

बिन्दुसारके मरनेपर ईसवी सन्से २७३ या २७२ (वि० सं० से २१६ या २१५) वर्ष पूर्व यह (अशोक) गद्दीपर बैठा । परन्तु इसका राज्याभिषेक इसके तीन या चार वर्ष बाद सन् ईसवीसे २६९ (वि० सं० से २१२) वर्ष पूर्व हुआ था । इस बिलम्बका कारण अब तक ज्ञात नहीं हुआ है[1] ।

---

(१) कथाओंके अनुसार इसके बड़े भाई सुसीमका अपने बैठे इसकी राज्य-प्राप्तिमें बाधा डालना ही इस विलम्बका कारण बताया जाता है ।

यह राजा पहले शैव था[1]। परन्तु कलिङ्गविजयके बाद बौद्ध हो गया और जीवदयाका पूर्ण पक्षपात करने लगा। इसी समयसे इसने राज्यवृद्धिकी लालसा भी छोड़ दी।

कलिंग-विजयके बाबत इसके तेरहवें शिलालेखमें लिखा है:—

"अठवषाभिसितष देवानंपियषा पियदषिने लाजिने कलिंग्ये विजितादियढमाते पानषतषहशे येतझा अपवुढे शतषहषमाते तत-हते वहुतावंतके वामटे तता पछा अधुनालधेषु कलिंग्येषु तिवे धंमवाये।"

संस्कृतच्छाया—**अष्टवर्षाभिषिक्तस्य देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनो राज्ञः कलिङ्गाः विजिताः अध्यर्धमानं प्राणशतसहस्रं यत्ततोपव्यूढं शतसहस्रमात्रास्तत्रहता वहुतावत्का मृताः। ततः पश्चादधुना लब्धेषु कलिङ्गेषु तीव्रं धर्मपालनं।**

अर्थात्—आठ वर्षसे अभिषिक्त देवताओंके प्यारे और दयावान् राजाने कलिङ्गदेश विजय किया। इसमें डेढ़ लाख मनुष्य पकड़े गये, एक लाख हत हुए, और इससे भी अधिक नष्ट हुए। अब इसके बाद जीते हुए कलिङ्गदेशमें ख़ूब धर्मका पालन किया जाता है।

उपर्युक्त नरनाशको देखकर ही अशोकको युद्धसे घृणा हो गई थी। आगे चलकर इसी (१३ वें) शिलालेखमें इसने अपने उत्तराधिकारियोंको युद्ध न करनेकी सलाह दी है:—

"एताये चा अथोय इयं धंमलिपिलिखिता किति पुता पापोता मे अ...सवं विजयमविजयंतविय मनिषु षयकषिनो विजयषिखंति चालहु दंडताचालोचेतु तमेवचाविजयं मनतु ये धंमविजये।"

(१) मि॰ स्मिथका अशोक, पृ॰ २३।

संस्कृतच्छाया—"**एतस्मैचार्थायेयं धर्मलिपिर्लिखिता किमिति पुत्राः प्रपौत्राः मे (श्रृणुयुः) सर्वं विजयं माविजेतव्यं मन्येरन् शराकर्षिणो विजये शान्तिं च लघुदण्डतां च रोचयन्तां तमेव विजयं मन्यन्तां यो धर्मविजयः।**"

अर्थात्—इसीलिये यह धर्मलेख लिखा गया है कि शायद मेरे पुत्र और प्रपौत्र इस बातको सुन लें और युद्धविजयको बुरा समझ छोड़ दें। तीर चलानेके समय भी शान्ति और थोड़े दण्ड देनेको ही पसन्द करें। धर्मविजयको ही असली विजय समझें।

यह कलिङ्गदेश महानदी और गोदावरीके बीच था। मैगेस्थनीज़ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:—

"कलिङ्ग लोग समुद्रके सबसे निकट रहते थे। इस देशकी राजधानी पार्थलिस थी। इसके प्रबल राजाके पास ६०,००० पैदल, १,००० घोड़े और ७०० हाथी थे।"

अशोकका अभिषेक ईसवीसन्से २६९ वर्ष पूर्व हुआ था और यह लेख इसके नवें राज्य-वर्षका है। अतः इसके कलिङ्गविजयका समय ईसवी सन्से २६१ (वि० सं० से २०४) वर्ष पूर्व आता है।

इस विजयके बाद अशोकने अपने सूबेदारोंके नाम आज्ञाएँ प्रचारित की थीं। इनमेंसे एक धवलीसे और दूसरी जौगढ़से मिली है। ये दोनों स्थान कलिङ्ग प्रदेशमें थे। पहला पुरी ज़िलेमें भुवनेश्वरके पास और दूसरा मद्रास प्रदेशके गंजाम ज़िलेमें है।

धवलीकी आज्ञा तोसलीके प्रधान मन्त्री और नगरके हाकिमोंके नाम है। उसमें लिखा है कि "तुम लोग हज़ारों प्राणियोंके अधिकारी हो। हमारा फ़र्ज़ है कि भले आदमियोंके प्रीतिपात्र बनें। सब आदमी मेरी

प्रजा (सन्तान) हैं । मैं अपने पुत्रोंके समान ही प्रजाका भी इह-लौकिक और पारलौकिक हित और सुख चाहता हूँ । अतः तुमको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि जिससे एक आदमी भी दुखी न हो।"

जौगढ़की आज्ञा समापाके महामात्योंके नाम है। इसमें उपर्युक्त लेखकी अनेक बातोंके साथ साथ यह भी लिखा है कि "तुमको प्रजाके साथ ऐसा बर्ताव करना चाहिये कि मेरे राज्यकी सीमाके पासके अविजित देशोंके लोग भी मुझमें विश्वास करने लगें और यह समझें कि यदि क्षमाके लायक अपराध होगा तो उनको अवश्य क्षमा दी जायगी। तुम लोगोंको अपना कर्तव्य समझकर मेरी इस आज्ञाका पालन करना चाहिये; जिससे वे लोग मुझे पिताके समान समझने लगें।"

इनसे प्रकट होता है कि कलिंग देशकी राजधानी तोसली नियत की गई थी और वहाँका सूबेदार एक राजपुत्र बनाया गया था। यद्यपि तोसली नगरका अब तक पूरा पता नहीं लगा है तथापि यह धवलीके आसपास ही कहीं होगा।

अशोकका राज्य पश्चिममें हिन्दूकुश, उत्तर-पश्चिममें काश्मीर, उत्तरमें नेपाल, पूर्वमें गंगाके मुहानेका समतल प्रदेश, दक्षिणपूर्वमें तमलुक बंदर[1], दक्षिणमें माइसोरका उत्तरी प्रदेश और दक्षिण पश्चिममें काठियावाड़ तक था। (उत्तरमें) तक्षशिला, (पश्चिममें) उज्जयिनी, (पूर्वमें) तोसली, और (दक्षिणमें) सुवर्णगिरि नामक नगरोंमें इसके सूबेदार रहा करते थे; जो अपने अपने अधीनके प्रदेशोंका शासन किया करते थे। इस प्रकार सुदूर दक्षिणको छोड़ करीब करीब

(१) तमलुक बंदर बंगालमें ताम्रलिप्ति नदीके मुहानेपर था।

सारा हिन्दुस्तान, अफ़गानिस्तान और बलूचिस्तान इसके अधिकार-में था।

राजतरङ्गणीसे पता चलता है कि इसने काश्मीरमें श्रीनगर नामकी एक नई राजधानी बनवाई थी। यह आजकलके श्रीनगरसे तीन मील ऊपरकी तरफ़ थी; जो अब शायद 'पाडरेथन' नामसे प्रसिद्ध है।

नेपालमें इसने ललितपट्टण नामक नगर बसाया था और वहाँ पर अनेक स्तूप भी बनवाये थे।

दीपवंश और महावंशसे प्रकट होता है कि अशोकने अपने राज्यके चौथे वर्ष बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। परन्तु इसके लेखोंपर विचार करनेसे पता चलता है कि यह धर्मपरिवर्तन इसके राज्यके नवें वर्षके बाद हुआ होगा; क्योंकि कलिङ्गविजयमें हुए नरनाशको देख कर ही इसका हृदय द्रवित हो गया था।

अब आगे हम इसके शिलालेखोंका भाषानुवाद उद्धृत करते हैं। इससे उस समयका बहुत कुछ सच्चा सच्चा हाल प्रकट हो जायगाः—

पहला शिलालेख।

यह धर्मलेख देवताओंके प्यारे राजा प्रियदर्शीने खुदवाया है। इस संसारमें न तो कोई प्राणी मारा जाय, न बलि दिया जाय और न भोज (दावत) किया जाय; क्योंकि प्रियदर्शी (सबका भला चाहनेवाला) राजा भोजमें बहुतसी बुराइयाँ देखता है। लेकिन कुछ समाज (भोज)

(१) इसके लेखोंमें इसके राज्यवर्ष ९ से २८ तक मिलते हैं। इसका राज्याभिषेक ई० स० पूर्व २६९ में हुआ था। तदनुसार ई०स० पूर्व २६१ में इसके राज्यका नवाँ और ई० स० पूर्व २४२ में २८ वाँ वर्ष आता है।

ऐसे भी हैं जिनको देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा अच्छा समझता है। पहले देवताओंके प्यारे प्रियदर्शी राजाके रसोई-घरमें नित्य हज़ारों प्राणी मारे जाते थे। परन्तु अब जबसे यह धर्मलेख लिखवाया गया है तबसे तीन ही प्राणी मारे जाते हैं। दो मोर और एक हरिण। यह हरिण भी हमेशाके लिये नहीं है। आगे ये तीनों प्राणी भी नहीं मारे जायँगे।

दूसरा शिलालेख।

देवताओंके प्यारे प्रियदर्शी राजाके जीते हुए राज्यमें सब जगह और सीमाप्रदेशकी जातियों—जैसे चोल[1], पाण्ड्य[2], सत्यपुत्र[3] और केरलपुत्र[4]—के राज्योंमें, ताम्रपर्णी (सीलोन) तक और यवनराज (ग्रीक) अन्तियोक[5] (Antiochos) तथा उसके जो सामन्त (अधीन) राजा हैं उनके देशोंमें सब जगह देवताओंके प्यारे प्रियदर्शी राजाने दो प्रकारकी चिकित्साओंका प्रबन्ध किया है। आदमियोंकी और पशुओंकी। तथा जहाँ जहाँ आदमियोंके और पशुओंके

---

(१) चोल—भारतके दक्षिणी प्रायद्वीपका दक्षिण-पूर्वकी तरफ़का हिस्सा। इसकी राजधानी उडियूर त्रिचनापलीके पास थी।

(२) पाण्ड्य—चोल देशका दक्षिणी हिस्सा। मदुरा और तिनेवलीके आसपासका प्रदेश।

(३) सत्यपुत्र—मंगलोरके आसपासका प्रदेश।

(४) केरलपुत्र—मालाबार प्रदेश। इसका विस्तार कन्याकुमारी (Cape Comorin) तक था।

(५) यह सिल्यूकस निकटोरका पौत्र और सीरिया तथा पश्चिमी एशियाका राजा था। इसका समय ई० स० से पूर्व २६१ से २४६ (वि० स० से पूर्व २०४ से १८९) तक माना जाता है।

उपयोगमें आनेवाली औषधियाँ नहीं मिलती थीं वहाँ वहाँ सब जगह वे भिजवाई और लगवाई हैं। इसी प्रकार जहाँ जहाँ मूल और फल नहीं थे वहाँ वहाँ सब स्थानों पर भिजवाये और लगवाये हैं। मनुष्यों और पशुओंके लिये रास्तोंपर वृक्ष लगवाये और कुएँ खुदवाये हैं।

तीसरा शिलालेख।

देवताओंके प्यारे प्रियदर्शी राजाने इस तरह कहा—

बारह वर्षसे अभिषिक्त हुए मैंने यह आज्ञा दी। मेरे सारे राज्यमें मेरे नगरके और बाहरके कर्मचारी हर पाँचवें वर्ष इसके लिये—इस धर्मशिक्षाके लिये और दूसरे कामोंके लिये भी—दौरेमें जावें। माता-पिताकी सेवा करना अच्छा है, दोस्तों, जान पहचानवालों, रिश्तेदारों, ब्राह्मणों और श्रमणों (भिक्षुओं) को दान देना अच्छा है। जीव-हिंसा न करना अच्छा है। कमख़र्ची और कम सामान एकत्रित करना अच्छा है। भिक्षुसंघ भी कर्मचारियोंको कारण (देशकाल) और धर्मके आदेशानुसार (ख़र्च और सामानकी) गिनती करनेकी आज्ञा देंगे।

चौथा शिलालेख।

बहुत समय बीत गया (यहाँ तक कि) सैंकड़ों वर्षों तक प्राणियोंकी बलि, जीवोंकी हिंसा, रिश्तेदारोंके साथ बुरा बरताव, तथा ब्राह्मण और श्रमणोंके आदरका अभाव बढ़ता ही गया। इस लिये आज देवताओंके प्यारे प्रियदर्शी राजाके धर्माचरणसे भेरीका शब्द, धर्मकी घोषणा, रथों और हाथियोंके दर्शन (सवारी), रोशनी आदि और कई तरहके दिव्यरूप आदमियोंके देखनेके लिये हुए हैं। जैसा कि सैकड़ों वर्षोंसे पहले कभी नहीं हुआ था वैसा आज देवताओंके प्यारे

प्रियदर्शी राजाकी धर्मशिक्षासे, प्राणियोंका बलि नहीं देना, जीवहिंसा नहीं करना, रिश्तेदारोंका सत्कार करना, ब्राह्मणों और श्रमणोंका सत्कार करना, मा बापकी सेवा करना आदि कई तरहके धर्माचरणका प्रचार बढ़ा है। और देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इसको इसी तरह बढ़ाता रहेगा। देवताओंके प्यारे प्रियदर्शी राजाके पुत्र, पौत्र, और प्रपौत्र भी इस धर्माचरणको सृष्टिके अन्त तक बढ़ाते रहेंगे, तथा धर्म और शीलका पालन करते हुए धर्मका उपदेश (प्रचार) करेंगे। यह धर्मका आचरण करना बड़ा अच्छा काम है। भक्तिसे वर्जित पुरुषके लिये धर्माचरण असम्भव है। इस लिये इसकी रक्षा और वृद्धि करना अच्छा है। इसी लिये यह लिखा गया है, (इस लिये वे लोग) इसकी वृद्धिमें लगे रहें और हानिको न देखें। बारह वर्षसे अभिषिक्त हुए देवताओंके प्यारे प्रियदर्शी राजाने लिखवाया।

पाँचवाँ शिलालेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा बोला। भलाई मुशकिलसे होती है। जो आदमी भलाई करता है वह बड़ा कठिन काम करता है। इस लिये मैंने बहुत भलाई की है। इस लिये मेरे पुत्र, पौत्र और उनके बादके मेरे वंशज कल्पके अन्त तक उसका अनुकरण करेंगे—पुण्य करेंगे और जो इसके थोड़ेसे अंशकी भी हानि करेंगे वे पाप करेंगे; क्योंकि पाप आसानीसे फैलता है। बीते हुए समयमें पहले धर्म महामात्र (धर्मप्रचार करनेवाले राज्याधिकारी) नहीं थे। तेरह वर्षसे अभिषिक्त मैंने धर्म महामात्र नियत किये हैं। वे धर्मकी देख भालके लिये, धर्मयुक्त मनुष्योंके उस (धर्मकी) वृद्धिद्वारा हित और सुखके लिये, सब धर्मवालोंमें लगाये गये हैं। ये यवनोंके, कम्बोज और गान्धार-

वालोंके, इसी प्रकार दूसरी सीमाप्रान्तकी जातियोंके और नौकरोंके, आर्यों (स्वामियों) के, ब्राह्मणोंके, अनाथोंके तथा बुड्ढोंके हित और सुखके लिये, धर्मवालोंकी रक्षाके लिये, कैद और वध (फाँसी) को रोकनेके लिये, रक्षाके लिये और मोक्ष (बचाव) के लिये लगाये गये हैं। इसी लिये कुटुम्बवाले, पेन्शनप्राप्त, और वयोवृद्ध लोग पाटलिपुत्रमें, बाहरके शहरोंमें, सब ज़नाने महलोंमें, इसी प्रकार कुछ भाइयोंमें और कुछ बहनोंमें तथा रिश्तेदारोंमें सब जगह नियत किये गये हैं। मेरे राज्यमें सब जगह धर्मात्मा और दानी धर्ममहामात्र धर्माधिकारियोंपर नियुक्त हैं। इसी (धर्म प्रचारके) लिये लिखा हुआ यह धर्मलेख बहुत समय तक बना रहे और मेरी प्रजा इसका अनुकरण करे।

छठा शिलालेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस प्रकार बोला। बहुत समय बीत गया पर पहले हर समय कार्य करने और हाल (रिपोर्ट) सुननेका रिवाज नहीं था। मैंने ऐसा किया कि खाते समय, ज़नानेमें, एकान्तगृहमें, पाख़ानेमें, अखाड़ेमें और बगीचेमें सब जगह ख़बरनवीस प्रजासम्बन्धी ख़बरें निवेदन कर सकते हैं, क्योंकि मैं हर समय मनुष्योंके कार्यको करूँगा। और जो कुछ कि मैं जबानी दानकी या सुनानेकी आज्ञा देता हूँ तथा जो कुछकी आवश्यकताके समय प्रधान मन्त्री लोग आज्ञा देते हैं उसमें विवाद या विचारके उपस्थित होनेपर परिषद (सभा) को चाहिये कि शीघ्र ही हरसमय और हरवक्त इसकी मुझको इत्तिला दे, ऐसी मैंने आज्ञा दी है; क्योंकि मुझे अपने उत्थान और कार्योंसे सन्तोष नहीं होता है। सबोंका हित करना ही मेरा ख़ास मत है। तथा उसका मूल उद्योग और कार्य करना ही

है। सबकी भलाईके सिवाय मुझे दूसरा काम नहीं है। जो कुछ कि मैं करता हूँ वह सब प्राणियोंसे उऋण होनेके लिये, और कइयोंको इस लोकमें सुखी करने और परलोकमें स्वर्गप्राप्त करनेके लिये करता हूँ। इसीके लिये यह धर्मलेख लिखवाया है। यह बहुत समय तक रहे और मेरे पुत्र और स्त्रियाँ सब लोगोंके हितके लिये उद्योग करें। यह विना पूर्ण उद्योगके नहीं हो सकता।

सातवाँ शिलालेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा चाहता है कि सब जगह सब धर्मावलम्बी रहें; क्यों कि वे सब ही इन्द्रियनिग्रह और मनकी शुद्धि चाहते हैं। आदमी भिन्न भिन्न रुचि और इच्छाके होते हैं। (उनमेंसे) कुछ पूरा और कुछ एक भाग करेंगे। जिनके पास दानके लिये बहुत धन नहीं है वे भी हमेशा संयम, भावशुद्धि, कृतज्ञता और दृढभक्ति रख सकते हैं।

आठवाँ शिलालेख।

समय बीत गया जब कि देवताओंके प्यारे (राजालोग) विहारके लिये यात्रामें जाते थे। इसमें शिकार और इसी प्रकारके दूसरे आमोद प्रमोद होते थे। दशवर्षसे अभिषिक्त देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा ज्ञानी होकर (यात्रामें) निकला। इसी लिये यह धर्मयात्रा की गई। इसमें ब्राह्मणों और भिक्षुओंके दर्शन होते हैं, उनको दान दिया जाता है, वृद्धोंके दर्शन होते हैं, उनको दान दिया जाता है। नगरवासियोंसे मिलने और उनको धर्मोपदेश देने तथा धर्मसंबन्धी पूछताछ करनेका समय मिलता है। इसी लिये देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा पुरानी विहारयात्राओंसे इन धर्मयात्राओंको अधिक पसन्द करता है। आगे भाग्य है।

नवाँ शिलालेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा बोला। मनुष्य कई तरहके मङ्गल कार्य करता है। बीमारीमें, निमन्त्रणमें, विवाहमें, पुत्र होनेपर, बाहर जानेके समय और ऐसे ही दूसरे समय बहुत मङ्गल कार्य करता है। इन अवसरोंपर माताएँ बहुतसे कई तरहके तुच्छ और निरर्थक मंगल करती हैं। मङ्गल कार्य तो अवश्य करने चाहिये। परन्तु ये मङ्गल थोड़े फलको देनेवाले होते हैं। किन्तु धर्मसम्बन्धी मङ्गल बहुत फलको देते हैं। क्योंकि इनमें दासों (गुलामों) और नौकरोंके साथ अच्छा बर्ताव किया जाता है, गुरुओंकी पूजा की जाती है, प्राणोंका संयम (रोकना) किया जाता है, भिक्षुओं और ब्राह्मणोंको दान दिया जाता है। ये और ऐसे ही अन्य कार्य धर्ममङ्गल हैं। इसका उपदेश पिता, पुत्र, भाई, मालिक, दोस्त और जानपहचानवालेको भी करना चाहिये। यह श्रेष्ठ है। यह धर्ममङ्गल उस कार्यकी समाप्ति तक करना चाहिये। यह कैसे? क्योंकि यहाँपर दूसरा मङ्गल संशयपूर्ण होता है। शायद उस कार्यको सिद्ध करे या नहीं, या इसी लोकके लिये हो। परन्तु यह धर्ममङ्गल हर समय हो सकता है और यदि इस लोकमें कार्यकी सिद्धि नहीं करे तो भी परलोकमें बहुत फल देता है। और यदि इस लोकमें भी उस उद्देश्यकी सिद्धि कर दे तो इस धर्ममङ्गलसे दोनों फ़ायदे हो जाते हैं। इस लोकमें उस कार्यकी सिद्धि होती है और परलोकमें अनन्त पुण्य प्राप्त होता है।

दसवाँ शिलालेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा यश या कीर्तिको परलोकमें विशेष कामकी नहीं समझता। और जो कुछ कि यश और कीर्तिको चाहता है वह इस लिये कि वर्तमानमें और आगे भी लोग धर्म-

वाक्योंको सुनें और मेरे धर्मव्रतका अनुकरण करें। इसी लिये देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा यश और कीर्तिको चाहता है। जो कुछ कि उद्योग देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा करता है वह सब परलोकके लिये ही है; क्योंकि इससे सब ही अधोगतिसे बच जावें। यह अधोगति ही पाप है। परन्तु विना प्रबल उद्योगके छोटे या बड़े आदमी द्वारा यह कार्य करना बड़ा कठिन है। चाहे सब छोड़ दो फिर भी बड़े आदमीके लिये भी यह कार्य दुष्कर (मुशकिलसे करने लायक) है।

ग्यारहवाँ शिलालेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस तरह बोला कि धर्मोपदेश करने, धर्मके विभाग करने और धर्मके साथ सम्बन्ध करनेके समान कोई दान नहीं है। इसी लिये दास (गुलाम) और नौकरोंके साथ उचित बर्ताव करना, माबापकी सेवा करना, मित्रों, जान पहचानवालों, रिश्तेदारों, ब्राह्मणों और श्रमणों (भिक्षुओं) को दान देना, जीवोंकी हिंसा न करना उचित है।

यह श्रेष्ठ है, यह करना चाहिये, ऐसा पिताको, पुत्रको, भाईको मालिकको, मित्रको, जान पहिचानवालेको, रिश्तेदारको और पड़ोसीको भी कहना चाहिये। ऐसा करनेवाला इस लोकको सुधारता है और उस धर्मदानसे परलोकमें भी अटूट पुण्य प्राप्त करता है।

बारहवाँ शिलालेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा सब धर्मवालोंको, संन्यासियोंको और गृहस्थोंको दानसे और अनेक तरहके सत्कारसे पूजता (आदर करता) है। देवताओंका प्यारा सब धर्मवालोंकी धार्मिक आचरणकी

उन्नतिके बराबर किसी भी दान या पूजाको नहीं समझता है। यह उन्नति कई प्रकारकी है। इसका मूल वाणीका संयम है। क्योंकि इससे अपने धर्मकी स्तुति और दूसरेके धर्मकी निन्दा नहीं होती। इसके अभावमें नाहक लघुता हो जाती है। उन उन मौकों पर दूसरे धर्मवालोंकी भी उन्हींके अनुसार पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे (आदमी) अपने पंथकी उन्नति करता है और दूसरे पन्थोंका भी उपकार करता है। इससे विपरीत करनेसे अपने पंथको भी हानि पहुँचाता है और दूसरोंके धर्मोंकी भी बुराई करता है। जो कोई अपने पन्थकी भक्तिसे या अपने पन्थकी उन्नतिकी इच्छासे अपने धर्मवालोंको पूजता है और दूसरे धर्मवालोंकी बुराई करता है, ऐसा करनेसे वह अपने पन्थपर कठोर प्रहार करता है। मेल मिलाप ही अच्छा है; क्योंकि इससे दूसरे धर्मानुयायी भी धर्मको सुन सकते हैं। देवताओंके प्यारे (राजा) की ऐसी इच्छा है कि सब पन्थवाले पूरी तौरसे जानकार और सच्ची विद्यावाले हों। प्रत्येक धर्मके माननेवालोंको कहना चाहिये कि देवताओंका प्यारा (राजा) सब धर्मवालोंके आचरणकी उन्नतिके बराबर किसी दान या पूजाको नहीं मानता। इसीके लिये बहुतसे धर्ममहामात्र (धर्मके उपदेश करनेवाले प्रधान अधिकारी), स्त्रियोंके कार्योंकी देख भाल करनेवाले महामात्र, व्रात्य भूमिक (इन्सपैक्टर) और दूसरी सभाएँ नियत की गई हैं। इनका कार्य अपने अपने पन्थकी वृद्धि और धर्मकी उन्नति करना है।

तेरहवाँ शिलालेख।

आठ वर्षसे अभिषिक्त (अर्थात् अभिषेकके नवें वर्ष) देवताओंके प्यारे प्रियदर्शी राजाने कलिङ्ग विजय किया। इसमें डेढ़ लाख आदमी

पकड़े गये, एक लाख वहाँपर हत हुए और इससे भी अधिक नष्ट हो गये। उसके बाद अब उन प्राप्त किये हुए कलिङ्ग देशोंमें देवताओंके प्यारे राजाके धर्मका अच्छी तरह पालन, धर्मकार्य और धर्मोपदेश किया जाता है। देवताओंके प्यारे और कलिङ्गोंको जीतनेवाले राजाको यह अफ़सोस है, मैं इस जीतको जीत नहीं समझता हूँ; क्यों कि युद्धमें आदमियोंका वध मृत्यु और गिरफ्तारी होती है।

यह वध पीडाजनक होनेसे देवताओंका प्यारा (राजा) इसे बहुत बुरा समझता है। वहाँ पर ऐसे ब्राह्मण, भिक्षु, दूसरे पन्थवाले या गृहस्थ रहते हैं जिन पर बड़ों और बुड्ढोंकी सेवाका, मातापिताकी सेवाका, गुरुओंकी सेवाका, तथा दोस्त, जान पहचानवालों, मदद-गारों, रिश्तेदारों, दासों और नौकरोंके साथ अच्छे वर्ताव और श्रद्धाका भार रहता है। इनका उस (युद्ध) में नाश या नुकसान होता है अथवा उन्हें वहाँसे जुदा होना पड़ता है। जिनकी आपसकी मोहब्बत कम नहीं हुई है ऐसे सुरक्षित पुरुषोंके दोस्त, जान पहचानवाले, सहाय-क और रिश्तेदार दुःखमें पड़ते हैं वह भी उन्हीं (सुरक्षित पुरुषों) पर प्रहार होता है। यह सब पुरुषोंके भाग्यका प्रतिघात देवताओंके प्रिय (राजा) के बड़े अफ़सोसका विषय है।

ऐसा कोई नगर नहीं है जहाँपर इन निकायों—सभाओं—को ब्राह्मणों और श्रमणोंमें (समानताकी) आज्ञा न दी गई हो। ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँपर मनुष्योंका एक न एक धर्ममें अनुराग न हो। उस समय प्राप्त किये कलिङ्गोंमें जितने आदमी ज़ख्मी हुए, मारे गये और पकड़े गये उनका सौवाँ या हज़ारवाँ भाग भी अब देवताओंके प्यारे (राजा) के लिये बहुत भारी है।

बुराई करनेवाला भी यदि क्षमाके लायक हो तो क्षमा करना ही देवताओंके प्यारे (राजा) का मत है और अब भी जो देवताओंके प्रियके (मेरे) अधिकारमें आवेगा, प्रार्थना करेगा, विचार करेगा, पश्चात्ताप करेगा और देवताओंके प्यारे मेरे अधिकारमें रहेगा (वह भी क्षमा किया जायगा)। इससे (लोग) लज्जित होंगे और हिंसा नहीं करेंगे । क्यों कि देवताओंका प्यारा सब प्राणियोंका क्षेम, संयम (आत्मनिग्रह), समानभाव और प्रसन्नता चाहता है। यही विजयमें मुख्य है।

देवताओंके प्यारे (राजा) का जो धर्मविजय है वह प्राप्त हुआ है । देवताओंके प्रियके राज्यमें आठ सौ योजन[1] तकके सीमाके राज्योंमें जहाँ पर अन्तियोक[2] नामका यवन राजा है और उस अन्तियोकके आगे (उत्तरमें) जो चार राजा है—तुरमय[3], अन्तिकोन[4], मग[5], अलिकसुन्दर[6] (उनके राज्यमें) तथा नीच, चोड़, पाण्ड्य, ताम्रपर्णीय, और

---

(१) चार कोसका एक योजन होता है।

(२) Antiochos (ई० स० से २६१ से २४६ वर्ष पूर्व)। यह सीरिया और पश्चिमी-एशियाका राजा और सिल्यूकस निकटोरका पौत्र था।

(३) Ptolemy Philadelphos (ई० स० से पूर्व २८५ से २४७ वर्षतक) यह मिस्रका शासक था। इसीके समय प्रसिद्ध यूक्लिड (Euclid) एलैक्जैण्ड्रियामें रहता था।

(४) Antigonos Gonatas (ई० स० से पूर्व २७७ से २३९ वर्ष तक) यह मेसीडोनियाका शासक था।

(५) Magas यह उत्तरी एफ्रिकाके Cyrene प्रदेशका शासक था। और इसका समय ई० स० से पूर्व २८५ से २५८ तक था।

(६) Alexander यह यपरसका शासक था। इसका समय ई० स० से २७२ से २५८ वर्ष पूर्वतक अनुमान किया जाता है।

दरद इनमें और विषवज्र, यवने, कम्बोजे, नाभक, नाभप्रान्त, भोजे, प्रतिनिक्यें, आन्ध्रे और पुलिन्दोंमें सब जगह देवताओंके प्यारेकी धर्म-शिक्षाका अनुकरण किया जाता है। और जहाँपर देवताओंके प्यारेके दूत नहीं जाते हैं वहाँके (लोग) भी देवताओंके प्यारेके धर्मके हाल, तरीके और उपदेशको सुनकर इसका अनुकरण करते हैं और करेंगे। इससे जो सब स्थानोंपर विजय प्राप्त होती है वह प्रसन्नता देनेवाली है। धर्म-विजयकी जो प्रीति है वही गहरी प्रीति है। (परन्तु) वह प्रीति एक साधारण वस्तु है। (वास्तवमें) देवताओंका प्यारा (राजा) परलोकके लाभको ही बड़ा लाभ समझता है। इसी लिये यह धर्मलिपि लिखी गई है; क्यों कि मेरे पुत्र और और प्रपौत्र (इस धर्मविजयको) सुनें और दूसरे सब तरहके विजयोंको अनुपादेय समझें। तीर चलानेसे प्राप्त विजयमें भी शान्ति और हलके दण्डको ही पसन्द करें और जो धर्मविजय है उसीको विजय समझें। यह इस लोक और पर लोकमें लाभकारी है। सब तरहकी प्रीति उद्यमकी तरफ़ ही होनी चाहिये; क्योंकि इससे इस लोकमें और परलोकमें लाभ होता है।

चौदहवाँ शिलालेख।

यह धर्मलेख देवताओंके प्यारे प्रियदर्शी राजाने लिखवाया है। कहीं संक्षेपसे, कहीं मध्यम भाव (मामूली तौर) से और कहीं

(१) ग्रीक लोग, और भारतके उत्तर-पश्चिमीय सीमापरके विदेशी लोग।
(२) हिमालयके उत्तरके लोग। बहुतसे इनको तिब्बतवासी समझते हैं।
(३) इलिचपुर (बरार) के पासके रहनेवाले।
(४) बहुतसे लोग इनको पैठनके निवासी अनुमान करते हैं।
(५) गोदावरी और कृष्णा नदियोंके बीचके प्रदेशमें रहनेवाले।
(६) विन्ध्य और सतपुराकी पहाड़ी जातियाँ।
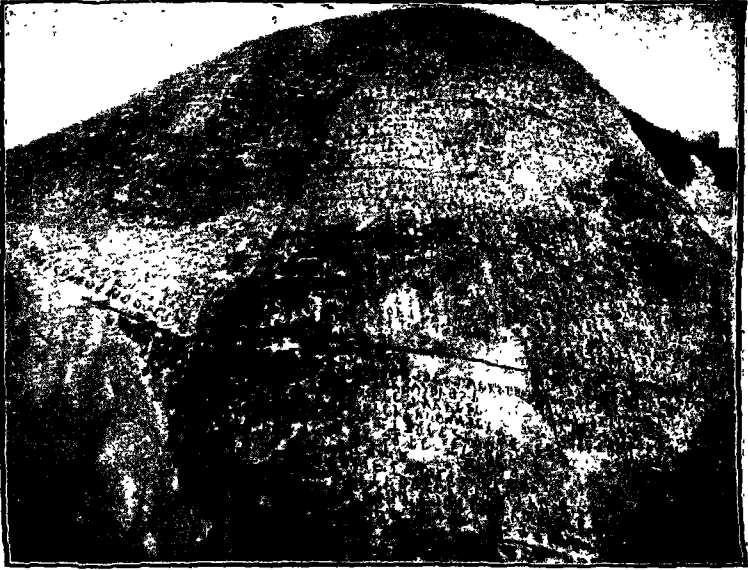
गिरनार पर्वतपर खुदी हुई अशोककी आज्ञाएँ।

[पृष्ठ ११२.

विस्तारसे; क्योंकि सब स्थानोंपर सबकी आवश्यकता नहीं है। मैंने (दुनियाका) बहुत बड़ा भाग जीता है, बहुतसा लिखा है और (आगे भी) हमेशा ही लिखवाता रहूँगा। इसमें जो जो (बहुतसी बातें) बार बार लिखी गई हैं, वे उस उस बातकी मधुरता बढ़ानेके लिये हैं; जिससे लोग उसको प्रयोगमें लावें। इसमें कुछ अधूरा लिखा गया हो, ठीक न हो और सन्देहजनक हो वह लिखनेवालेका दोष समझा जाय।

धवलीका लेख।

देवताओंके प्यारे (राजा) की आज्ञासे 'तोसली' के प्रधान मन्त्री और नगरके हाकिमोंको (इस प्रकार) कहना चाहिये। जो कुछ कि मैं देखता हूँ उसका प्रयोग और उसे तरीकेके साथ करना चाहता हूँ। इसका ज़रिया तुम लोगोंको उपदेश देना है। यही मेरा मुख्य मत है, क्यों कि तुम हज़ारों प्राणियोंके अधिकारी हो। (हमको चाहिये कि) भले आदमियोंकी प्रीति हासिल करें। सब लोग मेरी प्रजा हैं। जिस प्रकार मैं अपनी सन्तानके लिये चाहता हूँ कि वह इस लोकके और परलोकके सब प्रकारके हित और सुखको प्राप्त करे, उसी प्रकार सब लोगोंके लिये भी चाहता हूँ। तुम इसका पूरा तात्पर्य नहीं समझ सकते। (तुममेंसे शायद) कोई एक पुरुष इसको जानता हो, परन्तु वह भी थोड़ासा ही (जानता होगा) पूरा नहीं। तुम इसे देखो। यह नीति अच्छी है। एक आदमी भी जो कि बन्धन या दुःख पाता हो और कारागारमें मर जाय तो इससे दूसरे बहुतसे आदमी अत्यन्त दुःखित होते हैं। (इस लिये) तुमको मध्यस्थ वृत्ति (निष्पक्षता) ग्रहण करनी चाहिये। परन्तु यह इतनी बातोंसे नहीं हो सकती:—

ईर्ष्यासे, सुस्तीसे (परिश्रमके विना), निष्ठुरतासे, जल्दीसे, मूर्खतासे, आलस्यसे और थकावटसे। इस लिये ऐसी कोशिश करनी चाहिये कि ये मेरे न हों (अर्थात् इनसे बचना चाहिये।) नीतिमें थकावटका न होना और जल्दी नहीं करना ही इसकी जड़ है। इस लिये उठो, कोशिश करो, बढ़ो और पहुँचो। यह देखकर क्या तुमको उपदेश न करना चाहिये ? क्या तुम आज्ञाको नहीं देखते हो कि इस इस प्रकार देवताओंके प्यारे (राजा) की आज्ञा है ? इसका कार्यमें परिणत करना महा फलदायक है और नहीं करना महा विघ्नरूप है। जो इसे नहीं मानते हैं वे न तो स्वर्गकी आराधना करते हैं न राजाकी। मैंने इस कामके दो नतीजे रक्खे हैं। इसके करनेसे तुम स्वर्गको प्राप्त करोगे और राजाकी तरफ़का फ़र्ज़ भी अदा करोगे।

यह लिपि तिष्य (पुष्य) नक्षत्रके दिन सुननी चाहिये और उसके बीच भी मौके मौके एक आदमी तकको भी सुननी चाहिये। ऐसा करते हुए तुमको इसको काममें लानेकी कोशिश करनी चाहिये। इसी लिये यह लेख लिखा है, ताकि नगरके हाकिम हर समय भलाईमें लगे रहें और नगरवासियोंको अकस्मात् दुःख या क्लेश न हो। इसी लिये मैं धर्मसे हर पाँचवें साल धर्माध्यक्षको भेजूँगा जो रहमदिल, भला और हरकामको सहूलियतसे करनेवाला होगा। इस बातको जाननेवाले जैसी मेरी आज्ञा है वैसा ही करते हैं।

उज्जैनसे भी कुमार इसी लिये ऐसे ही धर्माध्यक्ष (वर्ग) को भेजेगा और तीन वर्षका उल्लंघन नहीं करेगा (अर्थात् हर तीसरे वर्षके पहले ही भेजा करेगा)। इसी प्रकार तक्षशिलासे भी। और जब कि वे प्रधान मन्त्री अपने दौरेपर निकलेंगे तब वे अपने काममें

हर्ज नहीं करते हुए इसको भी समझेंगे और वैसा ही करेंगे, जैसा कि राजाकी आज्ञा है।

जौगढ़का लेख।

देवताओंका प्यारा इस प्रकार बोला। राजाकी आज्ञासे समापाके प्रधान मन्त्रियोंको इस प्रकार कहना चाहिये। जो कुछ कि मैं देखता हूँ उसको मैं काममें लाना चाहता हूँ और बाक़ायदा प्रारम्भ करता हूँ। इसका ख़ास ज़रिया, मेरे मतसे तुम लोगोंको उपदेश देना है। सब मनुष्य मेरी प्रजा हैं। मैं अपनी सन्तानके लिये चाहता हूँ कि वे सब तरहके हित और सुखको प्राप्त करें और प्रजाके लिये भी चाहता हूँ कि वे इस लोक और परलोकके सब प्रकारके हित और सुखको प्राप्त करें। उसी प्रकार सब आदमियोंके लिये भी चाहता हूँ। मेरे राज्यकी सीमाके पासके नहीं जीते हुए लोग यह जानना चाहते होंगे कि हम लोगोंके लिये राजाका क्या ख़याल है। उनके लिये मेरी यह इच्छा है। मैं चाहता हूँ कि उनको मेरी तरफ़से किसी प्रकारकी घबराहट न हो××वे मेरेमें भरोसा करें। वे मेरेसे सुखी हों दुखी न हों (और समझ लें) कि राजा हमारे क्षमाके लायक अपराधको क्षमा करेगा××××मेरे लिये धर्मका आचरण करें और इस लोक और परलोकको सुधारनेकी कोशिश करें। इसी लिये मैं तुमको आज्ञा देता हूँ। इससे तुम अपना फ़र्ज़ अदा करोगे। तुमको आज्ञा देनेको और अपने विचार ज़ाहिर करनेको मेरा निश्चय और प्रतिज्ञा अचल है। इस लिये ऐसा करनेका उद्योग करना चाहिये और उन (सीमाके बाहर रहनेवालों) को दिलासा देना चाहिये जिससे वे समझें कि राजा हमारे पिताके समान है। जिस प्रकार वह (राजा) अपना ख़याल रखता

है उसी प्रकार हमारा भी रखता है। जैसी उसकी प्रजा है वैसे ही हम भी हैं। तुमको आज्ञा देनेको और विचार ज़ाहिर करनेको मेरा धैर्य और प्रतिज्ञा अचल है। इसके लिये मैं अपने कर्मचारियोंको आज्ञा दूँगा; क्योंकि तुम उनको दिलासा देने और उनके इस लोक और परलोकके हित और सुखके लिये योग्य हो। इस प्रकार कार्य करते हुए तुम स्वर्गकी प्राप्तिका उद्योग भी करोगे और मेरा जो तुम पर फ़र्ज़ है उसको भी अदा करोगे।

इसी मतलबसे यह लेख लिखा है। इस लिये सीमाके पास रहनेवालोंके दिलासेके लिये और धर्माचरणके लिये प्रधान मन्त्री लोग हर समय इसके अनुसार कार्य करें। इस लेखको हर चौथे महीने (चार चार महीनेका एक एक मौसम होता है, अतः हर मौसमके आरम्भमें) पुष्य नक्षत्रके दिन और बीचमें भी सुनना चाहिये। समयपर शान्तिमें अकेले आदमीको भी सुनना चाहिये। ऐसा करते हुए तुम इसके प्रचारकी चेष्टा करोगे।

ऊपर जिन शिलालेखोंका उल्लेख किया गया है उनमेंसे पहले १४ लेख अशोकके खास शिलालेख समझे जाते हैं और पिछले प्रादेशिक लेख। उनमेंके पहले दस लेख निम्नलिखित स्थानोंसे मिले हैं:—

१ शाहबाज़गढ़—(पेशावर)

२ मानसहरा—(हज़ारा प्रान्त, उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश।)

३ कलसी—(देहरादून—सहारनपुर)

४ गिरनार—(भावनगर—काठियावाड़)

५ धवली—(पुरी—उड़ीसा)

६ जौगढ़—(गंजाम—मद्रास)

ग्यारहवाँ, बारहवाँ और तेरहवाँ लेख ऊपर लिखे पहले चार स्थानोंसे मिला है और पिछले दो स्थानोंमें इन तीनोंकी एवज़में क्रमशः उपर्युक्त एक एक प्रादेशिक लेख खुदा है। चौदहवाँ लेख मानसहराको छोड़ अन्य सब स्थानोंमें विद्यमान है।

इसके छठे शिलालेखका कुछ भग्नांश सोपारा (थाना—बंबई) से भी मिला है। इससे प्रकट होता है कि वहाँ पर भी इसकी आज्ञाएँ खुदवाई गई थीं।

अब हम अशोकके स्तम्भों परके लेखोंका अनुवाद देते हैं:—

पहला स्तम्भलेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस प्रकार बोला। छब्बीस वर्षसे अभिषिक्त हुए मैंने यह धर्मलेख खुदवाया है। इस लोकका और परलोकका प्राप्त करना विना अधिक धर्मप्रेमके, विना कठोर निरीक्षणके, विना कठिन सेवाके, विना अत्यन्त भयके, विना कठिन साहसके, मुश्किल है। मेरे धर्मोपदेशसे अपनी अपनी जगह धर्मकी आवश्यकता और धर्मका विचार बढ़ा है और बढ़ेगा। मेरे बड़े, छोटे और मध्यम आदमी भी भटकते हुए लोगोंको राहपर लानेके लिये इसका अनुकरण और आचरण करते हैं। इसी प्रकार सीमान्तके प्रधान मन्त्री भी (करते हैं)। यह क़ायदा है कि धर्मसे पालन, धर्मसे न्याय, धर्मसे सुख और धर्मसे ही रक्षा होती है।

दूसरा स्तम्भलेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस प्रकार बोला कि धर्म श्रेष्ठ है। धर्म क्या है? बुराईसे दूर रहना, भलाई, दया, दान, सत्य और

पवित्रता। मैंने दो पैरवालों, चार पैरवालों, पक्षियों और जलचरोंके लिये कई तरहसे ध्यान दिया है। मैंने प्राणदक्षिणासे लेकर कई प्रकारकी कृपाएँ की हैं और भी कई तरहकी भलाइयाँ की हैं। इसी लिये यह धर्म लेख लिखवाया है कि (लोग) ऐसा ही करें और यह चिरस्थायी हो। जो ऐसा करेगा वह सुकृत करेगा।

तीसरा स्तम्भलेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस प्रकार बोला। यह मैंने भलाई की, इस प्रकार आदमी अपनी भलाई ही देखता है। पर यह मैंने पाप किया, इस तरह आदमी अपने पापको नहीं देखता कि यह बुराई है। यह देखना बड़ा मुश्किल है। इसी प्रकार यह भी देखना चाहिये। ये बुराइयाँ हैं। जैसे:—उग्रता, निष्ठुरता, क्रोध, घमण्ड, ईर्ष्या। इनके सबबसे मैं बुरा न बनूँ। यह अच्छी तरहसे देखना चाहिये कि यह मेरे इस लोक और यह मेरे परलोकके लिये (अच्छा) है।

चौथा स्तम्भलेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस तरह बोला। छब्बीस वर्षसे अभिषिक्त हुए मैंने यह धर्मलेख लिखवाया है। मेरे सूबेदार बहुतसे सैकड़ों हज़ारों प्राणियोंपर नियत हैं। उनको न्याय और दण्डमें मैंने स्वतन्त्र कर दिया है; क्यों कि (इससे) वे लोग कामोंको विना स्वार्थके तथा विना भयके करें और मुल्कमें रहनवाले आदमियोंके हित और सुखका ध्यान रक्खें। तथा उनपर कृपा करें। वे सुख और दु:खको समझेंगे और देशवासियोंके साथ धर्मयुक्त व्यवहार करेंगे, ताकि वे इस लोककी और परलोककी आराधना करें। मेरे सूबेदार मेरी सेवा करना चाहते हैं। दूसरे आदमी भी जो कि मेरी इच्छाके अनुसार करना

चाहेंगे वे भी उसी प्रकार अपने हलके (वालों)के साथ बर्ताव करेंगे, जिस प्रकार कि सूबेदार मेरी सेवा करनेकी कोशिश करते हैं। जिस प्रकार पिता अपनी सन्तानको प्रसिद्ध धात्री (धाय) को सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है कि वह होशियार धात्री मेरे बच्चेको सुखसे पालेगी; इसी प्रकार मैंने देशवासियोंके हित और सुखके लिये सूबेदार नियत किये हैं कि जिससे वे लोग विना भय, विना स्वार्थके और खुशीके साथ अपना काम करें। इसी लिये मैंने उनको न्याय और दण्डमें (दीवानी और फ़ौजदारी मामलोंमें) स्वतन्त्र कर दिया है। यह उचित ही है; क्यों कि इससे न्याय और दण्डमें समता रहेगी। आजसे यह भी मेरी आज्ञा है कि जिन कैदी मनुष्योंके दण्डका निर्णय हो कर फाँसीकी आज्ञा हो गई हो उनके लिये तीन दिनकी मोहलत मैंने दी है। इससे उनके भाई-बन्धु उनके जीवनके लिये अपील कर सकेंगे, या मरणका ख़याल कर दान देंगे, या परलोकसम्बन्धी व्रत करेंगे। मेरी इच्छा है कि इस रुकावटके समय भी वे परलोककी आराधना कर लें। (इससे) आदमीमें कई प्रकारका धर्मका आचरण, संयम और उचित दानका प्रचार बढ़ता है।

पाँचवाँ स्तम्भलेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस तरह बोला। छब्बीस वर्षसे अभिषिक्त हुए मैंने इतनोंको अवध्य किया है। वे ये हैं:—तोता, मैना, अरुण (लाल), चकवा, हँस, नान्दीमुख, गेलाट, चमगीदड़, रानी-कीड़ी, पहाड़ी कछुआ, दण्डी, बिना हड्डीका मत्स्य, तीतर, गंगाकुक्कुट (एक प्रकारका मुर्ग़ा), बाम मछली, जलका कछुआ, सेल, गिलहरी, बारहसींगा, साँड, बन्दर, धब्बेदार हरिन, सुफ़ेद कबूतर, (गाँवका कबूतर)

और वे सब चौपाये जो न तो काममें आते हैं न खाये जाते हैं। भेड़ या सूअरनी जो गर्भिणी हो या दूध देती हो अवध्य है और छः महीनेसे छोटे बच्चे भी अवध्य हैं। मुर्ग़ेके अण्डकोश नहीं निकालने चाहिये। जीवयुक्त भूसी नहीं जलानी चाहिये। नुकसानके लिये या शिकारके लिये जंगल नहीं जलाना चाहिये। एक जीवसे दूसरे जीवका पोषण नहीं करना चाहिये।

तीनों चातुर्मासोंकी पूर्णिमाके दिन[1], पुष्यनक्षत्रवाली पूर्णिमाके दिन, चौदस, पंचदशी और प्रतिपदा इन तीन दिन और साधारणतः उपवासोंके दिन न तो मत्स्य मारना चाहिये और न बेचना चाहिये। इन्हीं दिनोंमें नाग-वन (हाथी पकड़नेके जंगलमें) और कैवर्त भोग (मछुओंकी बस्ती) में जो अन्य जीव हैं उनको भी नहीं मारना चाहिये। प्रत्येक पक्षकी अष्टमी, चतुर्दशी और पंचदशीको, पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रके दिन, तीनों चतुर्मासियोंके दिन, और शुभ दिनोंमें सांडको बधिया नहीं करना चाहिये। (इसी प्रकार) बकरा, मेंढ़ा, सूअर और जो दूसरे जानवर बधिया किये जाते हैं वे नहीं किये जाने चाहिये। पुष्य, पुनर्वसु तथा चातुर्मास्यके दिन और चातुर्मास्यके दोनों पक्षोंके दिन घोड़ोंके और बैलोंके निशान नहीं लगाने चाहिये। अब तक छब्बीस वर्षसे अभिषिक्त मैंने पचीस कैदी छुड़वाये हैं।

छठा स्तम्भलेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस प्रकार बोला। बारह वर्षसे

---

(१) पहले बहुतसे स्थानोंमें वर्षमें तीन मौसम माने जाते थेः—ग्रीष्म, वर्षा और शिशिर। इन मौसमोंकी पूर्णिमासियाँ क्रमसे फाल्गुन, आषाढ़ और कार्तिकमें मानी जाती थीं। (एपिग्राफ़िया इण्डिका जिल्द २, पृ० २६१–२६५)।

अभिषिक्त मैंने लोगोंके हित और सुखके लिये धर्मलेख लिखवाया। उन उन बातोंको छोड़कर इस इस प्रकारकी धर्मवृद्धि करनी चाहिये। मैं लोगोंके हित और सुखका मार्ग देखता रहता हूँ। जिस प्रकार मैं देखता हूँ कि जातिवालोंमें किसको क्या सुख पहुँचाऊँ उसी प्रकार नजदीकवालों और दूरवालोंमें भी देखता हूँ और वैसा ही करता हूँ। इसी तरह सब पंथवालोंमें भी देखता हूँ। मैंने सब धर्मवालोंका अनेक तरहकी पूजासे सत्कार किया है। परन्तु आत्माका ख़याल मैं सबसे मुख्य समझता हूँ। छब्बीस वर्षसे अभिषिक्त मैंने यह धर्मलेख लिखवाया है।

सातवाँ स्तम्भलेख।

देवताओंका प्यारा राजा इस प्रकार बोला। बहुत समय बीत गया जब राजा लोग हुए और उन्होंने चाहा कि किस तरह लोगोंमें धर्मकी वृद्धि की जाय। परन्तु लोगोंमें ठीक तौरसे धर्म वृद्धि नहीं की। इस पर देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस तरह बोला कि मुझे यह ख़याल हुआ कि समय बीत गया जब कि राजाओंने चाहा कि किस प्रकार लोगोंमें ठीक ठीक धर्मवृद्धि की जाय। परन्तु लोगोंमें ठीक ठीक धर्मवृद्धि नहीं की। तो (फिर) लोग कैसे इसको मानें और किस तरह उनमें ठीक ठीक धर्मवृद्धि की जाय। किस तरह किनमें मैं धर्म-वृद्धि करूँ। इस विषयमें देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस प्रकार बोला। मेरे समझमें यह आया कि धर्मोपदेश सुनवाऊँ और धर्मकी आज्ञाएँ प्रचारित करूँ। इनको सुनकर लोग (उसे) मानेंगे, (उसकी) उन्नति करेंगे और ख़ूब धर्मवृद्धि होगी। इसी लिये धर्मोपदेश सुनवाये, धर्माज्ञाएँ प्रचारित कीं। मेरे कर्मचारी जो कि बहुतसे लोगोंमें नियत

हैं, वे चारों तरफ़ इसका वर्णन करेंगे और विस्तार करेंगे। राजपुत्र लोग भी बहुतसे सैकड़ों हज़ारों प्राणियों पर नियत हैं। उनको भी आज्ञा दे रक्खी है कि वे धर्माधिकारियोंको इस इस प्रकार कहें। देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी इस प्रकार बोला। यही देखते हुए मैंने धर्मस्तम्भ (खड़े) किये, धर्ममहामात्य (धर्मप्रचारक कर्मचारी) नियत किये, धर्मोपदेश किया। देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस तरह बोला। रास्तेमें मैंने बड़ लगवाये। वे पशुओं और मनुष्योंको छायाके लिये उपयोगी होंगे। आमकी वाटिकाएँ लगवाईं। आधे आधे कोस पर कूँए खुदवाये और रात बसेरेके लिये सरायें बनवाईं। पशुओं और आदमियोंके उपयोगके लिये जगह जगह बहुतसी पानीकी कूंडियाँ (नाँदें) बनवाईं। परन्तु जिन अनेक सुखोंसे पहलेके राजाओंने और मैंने लोगोंको सुखी किया ये भोग (सुख) तुच्छ हैं। लोग इस धर्म विषयमें प्राप्त हों इसके लिये मैंने यह किया है। देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी इस तरह बोला। मैंने धर्म महामात्योंको बहुतसे भलाईके कामोंमें नियत किया है। वे सन्यासियोंमें, गृहस्थोंमें और सब धर्मवालोंमें नियत किये गये हैं और मैंने उन्हें संघके लिये भी नियत किया है। ये ही ब्राह्मणोंमें और आजीविकोंमें भी मुकर्रर किये गये हैं। तथा दिगंबर लोगोंमें भी मेरी तरफ़से ये नियत होते हैं। इसी तरह अनेक पंथ वालोंमें भी ये नियत होते हैं। अपने अपने कार्योंमें नियत किये हुए वे धर्ममहामात्य इनमें और दूसरे सब संप्रदायवालोंमें लगे हैं। देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा ऐसा बोला। ये और दूसरे बहुतसे नियुक्त किये हुए धर्माध्यक्ष मेरे, रानियोंके, और मेरे सब महलोंमें कई तरहसे उन उन कार्योंको प्रसन्नताके लायक (अच्छी तरहसे) करते हैं।

यहाँ नगरमें और बाहरके प्रदेशोंमें मेरे द्वारा लड़कों, रानियों और कुमारोंके दानकार्योंमें, नियुक्त किये गये (धर्माध्यक्ष) धर्मकार्योंके संपादन और धर्ममें विश्वासप्राप्तिके लिये लगे रहते हैं। लोगोंमें दया दान, सत्य, शौच, प्रसन्नता और सज्जनताकी वृद्धि इस प्रकार होगी, इसका अनुसन्धान करना ही धर्मका संपादन और उसमें विश्वास करना है। देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस तरह बोला। जो कुछ कि मैंने अच्छे काम किये हैं उनको लोगोंने ग्रहण किया है और वे उसका अनुकरण करते हैं। इसीसे मा-बापकी सेवा, गुरुकी सेवा, वयोवृद्धोंकी इज्जत, तथा ब्राह्मण, साधु, दुःखी, गरीब, गुलाम और नौकरोंके साथ भलाई बढ़ी है और आगे भी बढ़ेगी। देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इस तरह बोला कि लोगोंमें जो यह धर्मवृद्धि की गई है वह दो तरहसे की गई है। (एक) धर्मके नियमोंसे और (दूसरी) उसपर ग़ौर करनेसे। धर्मका नियम करना तुच्छ है और उसपर ग़ौर करना श्रेष्ठ है। धर्मका नियम यह है; जो मैंने किया है कि ये ये जीव अवध्य हैं। और भी बहुतसे धर्मके नियम हैं; जो मैंने किये हैं। परन्तु ख़ासकर धर्म परके ग़ौरसे ही लोगोंमें जीवोंकी रक्षा और प्राणियोंके नाश न करनेके लिये धर्मकी वृद्धि की गई है। यह इसी लिये किया है कि मेरे पुत्र और पौत्र भी इसका अनुकरण करें और यह आचन्द्रार्क (जबतक सूर्य और चन्द्रमा रहे तबतक) रहे तथा लोग इसके माफ़िक बर्ताव करें। इस प्रकार (इसका) अनुकरण करनेवालोंका यह लोक और परलोक सुधर जाता है। सत्ताईस वर्षसे अभिषिक्त हुए मैंने यह धर्मलेख लिखवाया है। देवताओंका प्यारा बोला। ये धर्मलेख जहाँ हैं वहाँपर पत्थरके खँभे या पत्थरकी चट्टानें

प्रस्तुत करनी चाहिये; जिससे ये चिरस्थायी हों।

उपर्युक्त सातों स्तम्भलेखोंमेंसे पूर्वके छः निम्नलिखित स्थानोंसे मिले हैं:—

१ देहली—यह स्तम्भ फ़ीरोज़शाह बादशाहने तोपरसे यहाँपर मँगवाया था।

२ देहली—यह स्तम्भ भी उपर्युक्त बादशाहने ही मेरठसे यहाँपर मँगवाया था।

३ प्रयाग—यह स्तम्भ कौशाम्बीसे यहाँपर लाया गया था।

४ लौरिया—(चम्पारन)

५ मठिआ—(चम्पारन)

६ रामपुरवा—(चम्पारन)

सातवाँ लेख केवल तोपरवाले देहलीके स्तम्भपर ही खुदा है।

आगे अशोकके फुटकर लेखोंका अनुवाद दिया जाता है:—

सिद्धपुरका शिलालेख[1]।

सुवर्णगिरिके राजपुत्र और महामात्योंकी तरफ़से इसिलाके महा-

---

(१) इस लेखमें दो भाग हैं। पहला भाग 'दिय ढियं वढिसिति' यहाँ पर समाप्त होता है और दूसरा उसीके आगे 'इयंच'से प्रारम्भ होता है। इनमेंसे पहला भाग निम्नलिखित स्थानोंसे मिला है:—

१ सिद्धपुर (माइसोर)
२ ब्रह्मगिरि (माइसोर)
३ जटाङ्गरामेश्वर (माइसोर)
४ मस्कि (निज़ाम राज्य)
५ सहसराम (आरा—विहार)
६ रूपनाथ (जबलपुर—मध्यप्रदेश)
७ बैराट (जयपुर—राजपूताना)

और दूसरा भाग इन पाँच स्थानोंसे मिला है:—

१ सिद्धपुर
२ ब्रह्मगिरि
३ जटाङ्ग रामेश्वर
४ सहसराम
५ रूपनाथ

मात्यको कुशल कहना और यह कहना कि देवताओंका प्यारा आज्ञा देता है। ढाई वर्षसे अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ हूँ। परन्तु एक वर्ष तक पूरी उन्नति नहीं की। पर एक वर्षसे अधिक हुआ कि मैंने संघमें प्रवेश किया और अच्छी उन्नति की। इस समयमें जम्बूद्वीपके रहनेवाले देवताओंके तुल्य हैं, यह मिथ्या प्रमाणित हुआ। यह सब कोशिशका फल है। बड़ा आदमी ही केवल इसे नहीं प्राप्त कर सकता है। किन्तु कोशिश करनेवाला छोटा आदमी भी स्वर्गकी सिद्धि कर सकता है। इसी लिये यह उपदेश सुनाया है कि छोटे बड़े इसकी कोशिश करें। सीमान्तके लोग इसको जानें और यह बहुत समय तक विद्यमान रहे। यह काम बढ़ेगा और ख़ूब फैलेगा। कमसे कम ढाई गुना फैलेगा। यह उपदेश बुद्धने २५६ (वर्ष पूर्व ?) सुनाया था[1]। इस लिये देवताओंके प्यारेने इस प्रकार कहा। मातापिताकी सेवा करनी चाहिये, (जीवोंके) प्राणोंमें गुरुता (बड़ाईका ख़याल) दृढ करना चाहिये, सच बोलना चाहिये। इन धर्मके गुणोंको फैलाना चाहिये। इसी तरह शिष्यको गुरुकी सेवा करनी चाहिये और वंशके रिश्तेदारोंके साथ उचित बर्ताव रखना चाहिये। यह पुराना और दीर्घायु प्राप्तिका तरीका है। यह ऐसा है और इसे करना चाहिये।

लेखक पार्थ (पड़) ने लिखा।

सारनाथका स्तम्भलेख।

देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा बोला। पाटलिपुत्रमें और बाहरके नगरोंमें किसीको भी भिक्षुसंघके नियम नहीं तोड़ने चाहिये।

---

(१) यदि यह पाठ ठीक हो तो बुद्धका देहान्त ई० स० पूर्व ४९८ (वि० सं० पूर्व ४४१) के करीब होना सिद्ध होगा।

जो कोई भिक्षु या भिक्षुकी संघको तोड़े, उसको सुफ़ेद दूषित कपड़े पहनाकर अपने स्थानपर रखना चाहिये। इस प्रकार यह आज्ञा भिक्षुक सङ्घमें और भिक्षुकी सङ्घमें प्रकट कर देनी चाहिये। इस प्रकार देवताओंका प्यारा बोला। इस प्रकारकी एक लिखित आज्ञा तुम्हारे पास दफ्तरमें पड़ी रहनी चाहिये। ऐसी ही एक लिखित आज्ञाको उपासकों (गृहस्थों) के पास रक्खो; ताकि वे उपासक भी प्रत्येक व्रतके दिन इस आज्ञामें विश्वास उत्पन्न करानेको जावें। प्रत्येक उपवासके दिन एक महामात्य व्रतके लिये इस आज्ञाके विषयमें विश्वास दिलाने और आज्ञा देनेको घूमता है। जहाँ तक तुम्हारा अधिकार हो वहाँ तक सब जगह इसी प्रकारसे इसे फैलाओ। इसी तरहसे इसको सब सेनाके अड्डोंमें और परगनोंमें फैलाओ।

(इसमेंका पहला अंश जिसमें संघको तोड़नेवालेके लिये दण्डका उल्लेख है साँचीमें और इलाहाबादके स्तम्भपर भी खुदा है जो कि पहले कौशाम्बीमें था।)

भावरा शिलालेख।

प्रियदर्शी राजाने मगधके संघको अभिवादन कहा। वहाँपर बाधाका अभाव और स्वतन्त्रता फैले। हे भिक्षुओ! जितना हमारा बुद्धमें, उसके धर्ममें और उसके अनुयायी साधुसंघमें गौरव और कृपा है वह तुम जानते हो। हे भदन्तो! (बौद्ध भिक्षुओ!) जो कुछ कि भगवान् बुद्धने कहा है वह सब ठीक ही है। हे भदन्तो! जिस किसी तरह मैं देखता हूँ कि श्रेष्ठ धर्म चिरस्थायी होगा उसी तरह उसके फैलानेकी कोशिश करता हूँ। हे भदन्तो! विनयकी वृद्धि, आर्यवंश, अनागत (नहीं आया हुआ) भय, मुनियोंकी गाथाएँ (गीत या

किस्से), मुनियोंके सूत्र (नियम), उपतिष्यका सवाल और झूठ बोलनेको लेकर भगवान बुद्धसे कहा गया राहुलवाद, ये सब धर्मके ही पर्याय (दूसरे रूप) हैं । हे भदन्तो ! मैं चाहता हूँ कि इन धर्म-सूत्रोंको बहुतसे भिक्षुक और भिक्षुकियाँ सुनें और समझें । इसी तरह उपासक (गृहस्थ) और उपासिकाएँ भी (सुनें और समझें) । हे भदन्तो ! इसी लिये यह लिखवाता हूँ कि (वे लोग) मेरा मतलब समझें ।

लुम्बिनी-काननका स्तम्भलेख ।

देवताओंके प्यारे बीस वर्षसे अभिषिक्त प्रियदर्शी राजाने स्वयं इस स्थानपर आकर आदर किया, क्योंकि यहाँ शाक्य मुनि बुद्ध हुआ था । यहाँपर भगवान (बुद्ध) उत्पन्न हुए थे । इसीसे एक पत्थरका स्तंम्भ और एक पत्थरकी बारहदरी बनवाई । रुक्मिणी ग्रामका कर माफ़ किया और (आमदनीका) आठवाँ भाग उसके निमित्त कर दिया ।

निगलीवका स्तंभलेख ।

देवताओंके प्यारे चौदह वर्षसे अभिषिक्त प्रियदर्शी राजाने कनक मुनि बुद्धके स्तूपको दूसरी वार बढ़ाया । और बीस वर्षसे अभिषिक्त (राजाने) ख़ुद यहाँ आकर आदर प्रदान किया और स्तम्भ खड़ा किया ।

गुफाओंमेंके लेख ।

(१) बारह वर्षसे अभिषिक्त राजा प्रियदर्शीने यह न्यग्रोध गुफा आजीविकोंको दी ।

(२) बारह वर्षसे अभिषिक्त राजा प्रियदर्शीने खलतिक पर्वत परकी यह गुफा आजीविकोंको दी ।

(३) उन्नीस वर्षसे अभिषिक्त राजा प्रियदर्शीने खलतिक पर्वत परकी सुप्रिय गुफा आजीविकोंको दी ।

अशोककी रानीका लेख ।

देवताओंके प्यारेके वचनसे सब जगह महामात्योंको कहना चाहिये । यहाँ पर दूसरी रानीकी दानरूप जो आम्रवाटिका, बगीचा या दानगृह या और कोई दूसरी चीज़ गिनी जाती है वह उसी रानी—अर्थात् दूसरी रानी–तीवरकी माँ कारुवाक्या–की ही समझनी चाहिये ।

इन लेखोंकी[1] भाषा पालीस मिलती हुई है । परन्तु प्रान्तभेदसे इसमें थोड़ा बहुत भेद है । इससे प्रतीत होता है कि उस समय इस प्रकारकी भाषा बोली जाती थी और सर्व साधारणके समझनेके लिये ही भिन्न भिन्न प्रान्तोंके लेख वहाँकी प्रचलित भाषामें खोदे गये थे । इस भाषाका नमूना हम पहले दे चुके हैं ।

इन लेखोंमेंसे शाहबाज़ और मानसहराके लेख तो खरोष्ठीमें और बाकीके उस समयकी प्रचलित ब्राह्मीलिपिमें खुदे हैं । केवल सिद्धपुरका लेख ही एक ऐसा है कि उसकी लिपि ब्राह्मी होने पर भी अन्तके कुछ अक्षर खरोष्ठीमें लिखे गये हैं । हमने ऊपर अशोकके लेखोंका अनुवाद इस लिये दिया है कि भारतवर्षके अब तकके मिले उपयोगी लेखोंमें ये ही लेख सबसे पुराने हैं और इनसे उस समयकी भारतकी दशाका सच्चा सच्चा हाल, राजा व प्रजाका सम्बन्ध, शासननीति

---

(१) यद्यपि लेखोंका भाषानुवाद क्लिष्ट हो गया है तथापि हमने उस समयकी प्रचलित इबारतकी प्रथा प्रकट करनेके लिये ही उनका यथावत् अनुवाद कर देना उचित समझा है ।

१

अशोक के समय के ब्राह्मी अक्षरों का नकशा।

नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर	नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर
अ	𑀅 𑀅 𑀅 𑀅 𑀅 𑀅 𑀅 𑀅	च	𑀘 𑀘 𑀘 𑀘
आ	𑀆 𑀆	छ	𑀙 𑀙 𑀙
इ	𑀇 𑀇 𑀇	ज	𑀚 𑀚 𑀚 𑀚 𑀚 𑀚 𑀚 𑀚
उ	𑀉 𑀉 𑀉	झ	𑀛 𑀛
ए	𑀏 𑀏 𑀏 𑀏 𑀏	ञ	𑀜
ओ	𑀑 𑀑 𑀑	ट	𑀝 𑀝
अं	𑀅𑀁	ठ	𑀞
क	𑀓 𑀓	ड	𑀟 𑀟 𑀟
ख	𑀔 𑀔 𑀔 𑀔 𑀔	ढ	𑀠
ग	𑀕 𑀕 𑀕 𑀕	ण	𑀡
घ	𑀖 𑀖	त	𑀢 𑀢 𑀢 𑀢 𑀢

पृष्ठ १२८ के आगे (क)

अशोक के समय के ब्राह्मी अक्षरों का नक़शा।

नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर	नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर
थ		व	
द		श	
ध		ष	
न		स	
प		ह	
फ		कू	
ब		के	
भं		क्र	
म		खा	
य		खु	
र		खे	
ल		ख्य	

पृष्ठ १२८ के आगे (ख)

अशोक के समय के ब्राह्मी अक्षरों का नक़शा।

नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर	नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर
गे		त्या	
गो		त्र	
जा		थी	
जू		थै	
जो		धु	
टि		ध्य	
टी		नि	
टे		नु	
ढी		नो	
णे		पिं	
ता		पी	
तु		बा	

पृष्ठ १२८ के आगे (ग)

अशोक के समय के ब्राह्मी अक्षरों का नकशा ।

नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर	नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर
आ		टे	
अं		थ	
मा		थो	
मी		शा	
म्य		शि	
म्हि		सु	
रा		स्टा	
वि		स्ति	
लि		स्ता	
ली		स्व	
		ह्म	

पृष्ठ १२८ के आगे (घ)

अशोक के समय के खरोष्ठी अक्षरों का नकशा।

नागरी अक्षर	खरोष्ठी अक्षर	नागरी अक्षर	खरोष्ठी अक्षर
अ		ज	
इ		झ	
उ		ञ	
ए		ट	
ओ		ठ	
अं		ड	
क		ढ	
ख		ण	
ग		त	
घ		थ	
च		द	
छ		ध	

पृष्ठ १२८ के आगे (ङ)

अशोक के समय के खरोष्ठी अक्षरों का नक़्शा ।

नागरी अक्षर	खरोष्ठी अक्षर	नागरी अक्षर	खरोष्ठी अक्षर
ड्र		द्र	
ड्रि		धु	
ठि		ध्र	
णि		नु	
ति		ने	
तु		नो	
ते		नं	
त्म		पि	
त्र		ब्र	
थं		भ्ये	
दे		मि	

पृष्ठ १२८ के आगे (छ)

अशोकके समयके खरोष्ठी अक्षरोंका नक्शा।

नागरी अक्षर	खरोष्ठी अक्षर	नागरी अक्षर	खरोष्ठी अक्षर
मो		श्रि	
मं		श्रु	
म्म		षे	
म्य		षं	
यु		सि	
ये		सो	
यो		स्त	
यं		स्त्रि	
रं		हु	
वु		हं	
वं			

पृष्ठ १२८ के आगे (ज)

आदि प्रकट होते हैं और साथ ही यह भी प्रकट होता है कि उस समय पाश्चात्य लोग भी हमारे ही पूर्वजोंसे धर्मका उपदेश सुना करते थे।

उपर्युक्त लेखोंसे यह भी प्रकट होता है कि अशोक वास्तवमें एक राजर्षि था और शासनकार्यके साथ ही साथ धर्मप्रचारका और प्राणी मात्रकी भलाईका भी पूर्ण उद्योग किया करता था। इसके सिद्धपुरके लेखसे विदित होता है कि राज्यप्रबन्ध करके कुछ समयके लिये यह भिक्षुसंघमें भी जा रहता था। इस बातकी पुष्टिमें चीनी यात्री इत्सिंगका लेख भी उद्धृत किया जा सकता है। उसके लेखसे प्रकट होता है कि उसने यहाँ पर जो अशोककी मूर्ति देखी थी उसके कपड़े बौद्ध भिक्षुओंके कपड़ोंके सदृश थे।

इसके बनवाये हुए स्तूपोंमेंसे कुछ अभी तक साँचीके आसपास विद्यमान हैं। हिंदुस्तानमें पहले पहल अशोकके समयके ही पत्थरके स्तूपों और स्तम्भों आदिके मिलनेसे पाश्चात्योंका अनुमान है कि इसके पहले भारतमें अधिकतर लकड़ी और कच्ची ईंटें ही घर आदि बनानेके काममें लाई जाती थीं। अशोकके स्तम्भोंमेंसे कुछ स्तम्भ ४० या ५० फ़ीटके करीब लंबे और १००० मनसे भी ऊपर वजनमें हैं। इनसे उस समयकी चित्रणकलाका महत्त्व प्रकट होता है।

कथाओंमें ऐसी प्रसिद्धि है कि इसने ८४ हजार स्तूप बनवाये थे। इसके बनवाये हुए स्थान ऐसे विशाल और सुन्दर थे कि पिछले लोग उन्हें असुरोंका बनाया हुआ समझते थे। फाहियानके लेखसे भी उपर्युक्त बातकी पुष्टि होती है।

---

(१) तकाकुसूका इत्सिंगका अनुवाद, पृ० ७३।

(२) फाहियान, (देवीप्रसाद-पुस्तकमाला) पृ० ५९, ६१।

इसके समय वास्तुविद्या और चित्रण-कलाकी ख़ूब उन्नति हुई थी और ख़ास कर इसका समय पत्थर परकी पालिशके लिये तो और भी प्रसिद्ध था। ऐसी पालिश उसके बादसे आज तकके किसी अन्य पत्थर पर देखनेमें नहीं आई है। इसके समयकी बनी बराबरकी गुफा-का भीतरी भाग काचके समान चमकदार बनाया गया था और इसके तोपराके स्तम्भको, जो कि आजकल देहलीमें फ़ीरोजशाहकी लाटके नामसे प्रसिद्ध है, देखकर बहुतसे पाश्चात्योंने भी धोखा खाया था। बहुत समय तक लोग उसकी पालिशसे भ्रान्त होकर उसे धातुनि-र्मित समझते रहे थे।

ग्रीक लेखकोंने इसके दादा मौर्य चन्द्रगुप्तके महलोंको पर्शिया-वालोंके महलोंसे भी उत्तम लिखा है।

हम इसके दादा चन्द्रगुप्तके इतिहासमें सुदर्शन झील और रुद्रदा-माके लेखका वर्णन कर चुके हैं। उक्त लेखसे पता चलता है कि इसने अपने सूबेदार पर्शियन् राजा तुषास्फ द्वारा उस झीलसे नहर निकलवाई थी।

इसने अपने गुरु उपगुप्त (बनारसके गुप्तके पुत्र) के आदेशानु-सार निम्नलिखित उपदेशकोंको धर्मप्रचारार्थ भिन्न भिन्न स्थानोंमें भेजा था:—

मध्यान्तिकको काश्मीर और गान्धारमें, महादेवको महिषमण्डल (माइसोर) में, रक्षितको वनवासीमें, यवन धर्मरक्षितको अपरान्त (गुज-रात) में, महाधर्मरक्षितको महाराष्ट्रमें, महारक्षितको यूनानमें, मध्यम

(१) प्रियदर्शिप्रशस्तयः, पृ० ४।

कश्यप[1] आदिको हैमवत प्रदेश (नेपाल) में, शोण और उत्तरको सुवर्णभूमि (बर्मा) में, तथा अपने छोटे भाई महेन्द्रगुप्तको सिंहल (सीलोन) में।

इनमेंसे बहुतोंके नाम साँचीके स्तूपों पर खुदे हुए मिले हैं। सीलोनमें यह मिशन तिस्सके राज्यारोहण करने पर ई० स० पूर्व २५१ या २५० (वि० स० पूर्व १९४ या १९३) में गया था। कथाओंसे विदित होता है कि इस मण्डलीका मुखिया महेन्द्र वहीं पर (सीलोनमें) ई० स० पूर्व २०४ (वि० सं० पूर्व १४७) में मर गया था। इसकी मृत्युके स्मारक अब तक सीलोनमें प्रसिद्ध हैं। इस यात्रामें इसकी बहन संघमित्रा भी इसके साथ थी।

यह (अशोक) अपने अभिषेकके वार्षिकोत्सव पर एक एक कैदी छोड़ा करता था। इससे प्रकट होता है कि उस समय अपराध बहुत कम होते थे और आज कलकी तरह जेलखानोंमें कैदियोंका जमघट न रहता था।

इसकी धर्मयात्राके[2] विषयमें जैन-लेखकोंने[3] इस प्रकार लिखा है:—

(१) कनिंगहाम साहबको भिलसाके एक स्तूपमेंसे भस्म रखनेका एक पात्र मिला था। उस पर 'कासपगोत' लिखा हुआ था। शायद उसमें इसी मध्यम कश्यपका भस्मावशेष रक्खा गया होगा।—भिलसा टोप्स, पृ० २८७, ३१७।

(२) यह यात्रा शायद ई० स० पूर्व २४९ (वि० सं० पूर्व १९२) में की गई थी। इसका प्रारम्भ लुम्बिनीकानन (रुमण्डेई, नेपालकी तराईमें) से हुआ था। वहाँपर अब तक उस समयका लेखस्तम्भ विद्यमान है। इस यात्रामें अशोकका गुरु मथुराका उपगुप्त भी इसके साथ था। यह बनारसके गुप्त नामक गाँधीका पुत्र था। इसीके आदेशानुसार यह यात्रा की गई होगी।

(३) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० १६२।

"इसकी एक धर्मयात्रामें इसकी कन्या चारुमती भी इसके साथ थी। नेपालमें पहुँचनेपर उस (चारुमति) ने वहीं पर अपने पति देवपाल क्षत्रियकी यादगारमें देवपाटन नामक नगर बसाया। तथा पशुपति-नाथके उत्तरमें एक मठ बनवा कर उसीमें वह धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगी।"

परन्तु यह कथा कल्पित प्रतीत होती है।

सीलोनके बौद्ध लेखकोंके लेखोंसे प्रकट होता है कि अशोकने अपने राज्यके १६ वें या १८ वें वर्ष धर्ममहासभा की थी। परन्तु इसके सातवें स्तम्भलेखमें इस विषयका उल्लेख न होनेसे यह बात भी कल्पित ही प्रतीत होती है; क्योंकि यह लेख इसके राज्याभिषेकके सत्ताईस वर्ष बाद लिखवाया गया था और इसमें उस समय तकके इसके सम्पूर्ण धार्मिक कामोंका सिंहावलोकन है। अत: यदि यह सभा इसने की होगी तो उक्त समयके बाद की होगी।

इसी प्रकार सीलोनकी वंशावलियोंमें और दिव्यावदान आदि ग्रन्थोंमें अशोक, उसकी रानी असन्धिमित्रा और तिष्यरक्षिता, उसके पुत्र कुनाल आदिके विषयमें नाना प्रकारकी कथाएँ लिखी हैं। परन्तु उनमेंसे सत्यको छानना बहुत ही कठिन है। श्रीयुत पं० रामावतार शर्माने अपनी 'प्रियदर्शिप्रशस्तय:' नामक पुस्तकके उपोद्घातमें लिखा है कि बाँकीपुर (पटना) में भीकन पहाड़ीकी तरफ़ नीच जातिके लोग अब तक प्रतिवर्ष अशोकके छोटे भ्राता महेन्द्रकुमारकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर पूजते हैं।

राजर्षि अशोकने इस प्रकार करीब ४० वर्ष तक अपने भारतीय साम्राज्यकी पालना की और अन्तमें विक्रम संवत्से १७५ (ई० स०

से० २३२) वर्ष पूर्व इस असार संसारको छोड़ दिया। तिब्बतकी कथाओंमें इसका तक्षशिलामें मरना लिखा है।

(यद्यपि कात्यायनके 'देवानां प्रिय इति च मूर्खे' (वा०–३९००) इस वार्तिकके अनुसार संस्कृतमें केवल मूर्खके अर्थमें ही षष्ठि विभक्तिके लोपका निषेध होता है, तथापि अशोकके लेखोंके संस्कृत रूपान्तरमें जो 'देवानां प्रिय' लिखा गया है वह उसके पाली भाषाके लेखोंकी केवल ठीक ठीक नकल करनेके लिये ही है)

कुनाल।

बौद्ध लेखकोंने लिखा है कि जब अशोककी पहली रानी असन्धि-मित्रा मर गई तब वृद्धावस्थामें उसने तिष्यरक्षितासे विवाह कर लिया। यह रानी अपने सौतेले पुत्र कुनाल (धर्मविवर्धन) की आँखोंकी सुन्दरता पर मोहित हो गई। परन्तु जब धर्मात्मा कुनाल (धर्मविवर्धन) ने उसके अनुचित प्रस्तावोंका तिरस्कार किया तब वह उससे नाराज़ हो गई। एक दिन मौका देख तिष्यरक्षिताने उसकी आँखें निकलवानेकी आज्ञा लिखवा कर गुप्त रीतिसे उस पर राजाकी मुहर लगा दी। जब यह आज्ञा कुनालके पास पहुँची—जो कि उस समय तक्षशिलामें शासन कार्य करता था—तब उसने राजाज्ञा-को शिरोधार्य कर स्वयं अपनी आँखें निकलवा डालीं। अन्तमें घोष नामक एक बौद्ध साधुकी कृपासे उसके नेत्र फिर पूर्ववत् हो गये। परन्तु यह कथा कल्पित ही प्रतीत होती है। काश्मीरकी कथाओंमें अशो-

---

(१) इसका समय ईसवी सन्से पूर्वकी चौथी शताब्दीके करीब माना जाता है। (अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ४५१।)

(२) राजतरङ्गिणी।

कके पुत्रका नाम ' जललुक ' (जलौक) मिलता है। उनसे यह भी प्रकट होता है कि यह काश्मीरका राजा था और इसने बाहरसे आनेवाले वैदेशिक म्लेच्छोंको परास्त कर निकाल दिया था। इसका राज्य कन्नौज तक फैला हुआ था। यह शिव और शक्तिका उपासक था। इसने और इसकी रानी ईशानदेवीने काश्मीरमें बहुतसे मन्दिर बनवाये थे।

अशोककी दूसरी रानी कारुवाक्याके लेखमें अशोकके एक पुत्रका नाम तीवर लिखा है।

अशोकके पुत्रोंका विशेष वृत्तान्त न मिलनेके कारण इनके विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

जलौक शायद पहले अशोककी तरफ़से काश्मीरका हाकिम रहा होगा और पिताकी मृत्युके बाद वहाँका स्वाधीन शासक बन गया होगा।

दशरथ।

यह अशोकका पौत्र था।

नागार्जुनी पहाड़ी (गयाके पास) की गुफासे इसके समयका एक लेख मिला है। इसमें उक्त गुफाका आजीविकोंको देनेका उल्लेख है।

उपर्युक्त लेखकी लिपिके आधारपर विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि अशोकके मरनेपर कमसे कम उसके पूर्वीय राज्य (मगध) का तो यही उत्तराधिकारी हुआ था। उनके मतानुसार इसका राज्यारोहणकाल ईसवी सन्से २३२ (वि० सं० से १७५) वर्ष पूर्व आता है[1]। अशोकके पुत्रका प्रामाणिक वृत्तान्त न मिलनेसे उक्त महाशयका अनुमान करीब करीब ठीक ही प्रतीत होता है। इसने भी थोड़े समयतक ही राज्य किया होगा।

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १९२।

पश्चिमी भारतके जैन लेखकोंने अशोकके पौत्रका नाम संप्रति लिखा है[1]। जिस प्रकार अशोक बौद्धमतका संरक्षक था उसी प्रकार यह (सम्प्रति) जैनधर्मका प्रवर्तक था। इसके बनवाये हुए अनेक जैन-मन्दिर आदि बतलाये जाते हैं। इसकी राजधानी उज्जैन थी। सम्भव है कि अशोकके दो पौत्र हों जिनमेंसे दशरथ उसके पूर्वीय राज्यका और सम्प्रति पश्चिमी राज्यका स्वामी हुआ हो। दन्तकथाओंके अनुसार इसने शत्रुंजय (काठियावाड़) आदिमें अनेक जैनमन्दिर बनवाये थे। इन्हींमें जोधपुर राज्यके नाडलाई गाँवका एक मन्दिर भी था। इसी प्रकार जहाजपुरका किला भी इसीका बनाया हुआ बतलाया जाता है। परन्तु अभीतक संप्रतिके विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

समाप्ति।

पुराणोंमें मौर्य-वंशका १३७ वर्ष राज्य करना लिखा है। इस वंशके संस्थापक राजा चन्द्रगुप्तका राज्यारोहणकाल पूर्वलेखानुसार ईसवी सन्‌से ३२२ (वि० सं० से २६५) वर्ष पूर्व मानें तो ईसवी सन्‌से १८५ (वि० सं० से १२८) वर्ष पूर्व मौर्यराज्यकी समाप्तिका समय आता है। यह करीब करीब ठीक ही प्रतीत होता है। सम्भवतः इन पुराणोक्त पिछले राजाओंका राज्य मगध और उसके आसपास ही रहा होगा।

कलिंगके जैन राजा खारवेलके लेखसे भी प्रकट होता है कि ई० स० से १७० (वि० सं० से ११३) वर्ष पूर्वके कुछ ही समय

(१) परिशिष्ट पर्व। (२) जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसायटी, जिल्द ६, पृ० १०७४।

बाद उक्त राजाने मगधके राजाको हराया था। यह राजा शायद पुष्यमित्र था। अतः इस समयके पूर्व ही मौर्य राज्यकी समाप्ति हुई होगी। इसी समय कृष्णा और गोदावरीके बीच रहनेवाले आन्ध्रवंशियोंने भी अपने राज्यका विस्तार करना आरम्भ कर दिया था। पुराणोंके अनुसार इनके अन्तिम राजा (बृहद्रथ) को उसके सेनापति शुङ्गवंशी पुष्यमित्रने छलसे मार डाला और इस प्रकार इस वंशकी समाप्ति हो गई।

ईसाकी सातवीं शताब्दीमें एक मौर्यवंशी राजा पुराणवर्माका उल्लेख मिलता है। यह शायद चीनी यात्री हुएन्त्संगका समकालीन था। इससे प्रतीत होता है कि मौर्यवंशकी प्रधान शाखाके अस्त हो जानेपर भी उक्त शाखाके वंशज सामन्तोंकी तरह मगध और उसके आसपासके प्रदेशोंमें सातवीं शताब्दी तक भी विद्यमान थे।

इसी प्रकार अन्य लेखोंसे ईसाकी छठी, सातवीं और आठवीं शताब्दी तक भी कोंकन और पश्चिमी भारतमें मौर्यवंशियोंके राज्यका होना प्रकट होता है।

वि० सं० ७९५ (ई० स० ७३८) का एक शिलालेख कोटा (राजपूतानामें) से तीन मील परके कंसवाके शिवमन्दिरमें लगा है। इसमें मौर्यवंशी राजा धवलका नाम लिखा है। इससे ईसाकी आठवीं शताब्दीमें राजपूतानेमें भी इस वंशके सामन्त राजाओंका राज्य होना पाया जाता है।

---

(१) इस घटनाका समय ई० स० से १८५ (वि० सं० से १२८) वर्ष पूर्व माना जाता है। (२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० १९५।
(३) बंबई गज़टियर, जिल्द १, भाग २, पृ० २८२—८४।

भिन्न भिन्न पुस्तकोंसे मौर्यवंशी राजाओंकी वंशावली और उनके राज्यवर्ष ।

	विष्णुपुराण (राज्यवर्ष १३७)	वायुपुराण (राज्यवर्ष १३७)	राज्य वर्ष	ब्रह्माण्डपुराण (१३७ राज्यवर्ष)	राज्य वर्ष	भागवतपुराण	मत्स्यपुराण	राज्य वर्ष	महावंश	राज्य वर्ष	दीपवंश	राज्य वर्ष	परिशिष्ट पर्व
१	चन्द्रगुप्त	चन्द्रगुप्त	२४	चन्द्रगुप्त	२४		चन्द्रगुप्त		चन्द्रगुप्त	३४	चन्द्रगुप्त	२४	चन्द्रगुप्त
							शतधन्वा						
							बृहद्रथ						
२	बिन्दुसार	भद्रसार	२५	नन्दसार	२५	वारिसार			बिन्दुसार	२८	बिन्दुसार		बिन्दुसार
३	अशोकवर्धन	अशोक	३६	अशोक	३६	अशोकवर्धन	अशोक	३६	अशोक	३७	अशोक	३७	अशोक
४	सुयशा (सुपार्श्व)	कुशाल (कुनाल्य)	८	कुलाल	८	सुयशा							
५	दशरथ	बन्धुपालित	८	बन्धुपालित	८	दशरथ	दशरथ						
				हर्ष	८								
६	संगत	इन्द्रपालित	१०	सम्मति	९	संगत							संप्रति
७	शालिशूक			शालिशूक	१३	शालिशूक							
८	सोमशर्मा	दशवर्मा (देववर्मा)	७	देवधर्मा	७	सोमशर्मा							
९	शतधन्वा	शतधर	८	शतधनुः	८	शतधन्वा							
१०	बृहद्रथ	बृहदश्व	७	बृहद्रथ	८								

मौर्यवंशी राजाओंका समय और उनके लेखों आदिका विवरण।

ईसवी सन्‌से पूर्व	विक्रम संवत्‌से पूर्व	राज्यवर्ष	कार्य	विशेष वक्तव्य
३२२	२६५		मौर्य चन्द्रगुप्तका मगधकी राजगद्दी पर बैठना	
३०५	२४८		सिल्यूकसका हारना और मैगेस्थनीज़का भारतमें आना	
२९८	२४१		बिन्दुसारका राज्याभिषेक	
२९८	२४१		डाइमेचसका दूत भेजना	
२७३	२१६		अशोककी राज्यप्राप्ति	
२६९	२१२	१	अशोकका राज्याभिषेक	
२६१	२०४	९	कलिङ्गविजय	शिलालेख १३, उपशिलालेख १
२५९	२०२	११	अशोकका बुद्धधर्म ग्रहण करना	शिलालेख २, ८, १३ उपशिलालेख १, स्तम्भलेख ७
			विहारयात्राकी एवज़में धर्मयात्राका प्रवर्तित करना और उपदेशकोंको इधर उधर भेजना	
२५७	२००	१३	शिलालेख ३, ४, और उपशिलालेख १, का लिखवाना, गयाके पासकी बराबरकी दो गुफाओंका आजीविकोंको देना और उनमेंके लेखोंका खुदवाना	
२५६	१९९	१४	चौदह लेखोंका पूरा करना। कलिङ्गकी सीमापरके प्रादेशिक लेखोंका लगवाना (भाबराके लेखका खुदवाना)	

ईसवी सन्से पूर्व	विक्रम संवत्से पूर्व	राज्यवर्ष	कार्य	विशेष वक्तव्य
२५५	१९८	१५	कलिङ्ग प्रदेशके लेखोंका खुदवाना, कनक मुनिके स्तूपकी दुबारा मरम्मत और वृद्धि करवाना	निगलीव स्तम्भलेख
२५०	१९३	२०	गयाके पासकी बराबरकी तीसरी गुफाका आजीविकोंको देना और उसमेंके लेखका खुदवाना	
२४९	१९२	२१	लुम्बिनीकानन आदिकी तीर्थयात्रा	रुम्मिण्डेई और निगलीवके स्तम्भलेख
२४३	१८६	२७	चौथे स्तम्भलेखका खुदवाना	
२४२	१८५	२८	सात स्तम्भलेखोंका पूरा करना	
२४०	१८३	३०	पाटलिपुत्रमें बौद्धधर्मकी सभा करना (?)	मि० विन्सैण्ट स्मिथके मतानुसार
२४०–२३२	१८३–१७५	३०–३७	उपस्तम्भ-लेख खुदवाना	
२३२	१७५	३७	अशोककी मृत्यु तथा दशरथ और सम्प्रतिकी राज्यप्राप्ति ।	
			दशरथका नागार्जुनी गुफाका आजीविकोंको देना ।	नागार्जुनी गुफाका लेख
१८५	१२८		शुङ्गवंशी पुष्यमित्र द्वारा मौर्य बृहद्रथका मारा जाना और मौर्यराज्यकी समाप्ति	

शुङ्ग-वंश* ।

ई० स० पूर्व १८५ (वि० सं० पूर्व १२८) से ई० पूर्व ७२
(वि० सं० पूर्व १६) तक ।

विष्णुपुराणमें लिखा है:—

तेषामन्ते पृथिवीं दश शुंगा भोक्ष्यन्ति ॥ ३३ ॥
पुष्यमित्रस्सेनापतिस्स्वामिनं हत्वा राज्यं करिष्यति ।

अर्थात्—उन (मौर्यों) के बाद दस शुंग राजा होंगे । पुष्यमित्र नामका (उनका) सेनापति अपने स्वामी (मौर्यवंशके अन्तिम राजा बृहद्रथ) को मारकर राज्य करेगा ।

मत्स्यपुराणमें लिखा है:—

...तेभ्यः शुङ्गान्गमिष्यति ॥ २५ ॥
पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य स बृहद्रथान् ।
कारयिष्यति वै राज्यं षट्त्रिंशतिसमा नृपः॥ २६ ॥

अर्थात्—राज्याधिकार उन (मौर्यों) से शुङ्गोंमें जायगा । सेनापति पुष्यमित्र बृहद्रथोंको हटाकर ३६ वर्ष राज्य करावेगा ।

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि मौर्यवंशके अन्तिम राजा बृहद्रथको मारकर उसके सेनापति पुष्यमित्रने अपना राज्य कायम किया ।

बाणने अपने हर्षचरितमें लिखा है:—

---

* लाटायन श्रौतसूत्रमें शुङ्गाचार्यको भारद्वाज गोत्रकी स्त्रीमें विश्वामित्र गोत्रके पुरुषका नियोगपुत्र लिखा है ।

(१) विष्णुपुराण, अध्याय २४, पृ० १९९ ।(२) मत्स्यपुराण, अध्याय २७२, पृ० २४९ । (३) हर्षचरितका बुलरका अनुवाद, पृ० १९३ । हर्षचरित कलकत्ता–षष्ठ उच्छ्वास पृ० ४७७ ।

" प्रतिज्ञादुर्बलं च बलदर्शनव्यपदेशदर्शिताशेषसैन्यः सेनानीरनार्यो मौर्यं बृहद्रथं पिपेष पुष्यमित्रः स्वामिनं। "

अर्थात्—सेनाके दिखानेके बहानेसे दिखाई है तमाम फ़ौज जिसने ऐसे नीच सेनापति पुष्यमित्रने प्रतिज्ञामें दुर्बल अपने स्वामी बृहद्रथको मार डाला।

पुष्यमित्रद्वारा इस इतने बड़े मौर्य-राज्यके नाशका एक कारण यह भी प्रतीत होता है कि यद्यपि अशोक सब धर्मावलम्बियोंका समान आदर करता था तथापि उसी समयसे राज्यधर्मके पदसे गिरनेके कारण ब्राह्मण धर्मको बहुत हानि पहुँचने लगी थी और इसीसे ब्राह्मण लोग इस वंशके राजाओंसे बहुत कुछ उदासीन रहने लगे थे। इस बातकी पुष्टि इसीसे होती है कि शुङ्गवंशी बृहद्रथने राज्यपर बैठते ही ब्राह्मणोंको प्रसन्न करने और उनके धर्मको फिर राजधर्मके पदपर प्रतिष्ठित करनेके लिये चिरविस्मृत अश्वमेध यज्ञ किया था।

इस वंशकी राजधानी भी पाटलिपुत्र ही थी और इसका अधिकार दक्षिणमें नर्मदा तक था। बहुतसे विद्वानोंका[1] अनुमान है कि बिहार, तिरहुत और संयुक्त प्रान्त तक भी शायद इस वंशका प्रभाव फैल गया था। परन्तु विलसन साहबने जो सिन्धु तक इनका अधिकार होना अनुमान किया है वह ठीक प्रतीत नहीं होता।

१ पुष्यमित्र।

यह शुङ्गवंशका संस्थापक था और पहले लिखे अनुसार अपने स्वामीको मारकर मगधके राज्यका अधिकारी हुआ।

इसकी उपाधि सेनापति ही मिलती है।

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ० १९८—९९।

जैन राजा खारवेलके लेखसे पता चलता है कि ई० स० पूर्व १७० (वि० सं० पूर्व ११३) के कुछ ही समय बाद उस (खारवेल) ने इसे (पुष्यमित्रको) हराकर मथुराकी तरफ़ भगा दिया था।

ईसवी सन्से १५५ (वि० सं० से ९८) वर्ष पूर्व इसके राज्य-समय मिनैण्डरने—जो कि बैक्ट्रिया (बलख़) के राजा यूक्रेटिडसका वंशज और काबुलका राजा था—पंजाबसे आगे बढ़ भारतपर आक्रमण किया। इससे सिन्धुके मुहानेका देश, सुराष्ट्र (काठियावाड़), मथुरा, मध्यमिका (चित्तौरके निकट), साकेत (दक्षिणी अवध) और इसी प्रकार पश्चिमी किनारेके पासके कुछ प्रदेश इसके अधिकारमें आगये, तथा शुङ्ग राजाकी राजधानी (पाटलिपुत्र) भी हिल गई। परन्तु अन्तमें मिनैण्डरको हारकर लौटना पड़ा। स्ट्रैबोने लिखा है कि मिनैण्डरने उस व्यास नदीको भी पार कर लिया था जहाँपर स्वयं ऐलैक्ज़ैण्डरको रुक जाना पड़ा था। इसने सिन्धुके मुहानेके देशपर, सुराष्ट्रपर और पश्चिमी किनारेके एक प्रदेशपर अधिकार कर लिया था।

पैरिप्लस (Periplus) के लेखकने ईसवी सन्की पहली शताब्दीके अन्तिम भागमें भी भड़ोचमें अपोलोडोटस और मिनैण्डरके सिक्कोंका प्रचार होना लिखा है। इससे अनुमान होता है कि यद्यपि मिनैण्डरको गंगाके आसपासके प्रदेशोंसे हट जाना पड़ा था तथापि पश्चिमी किनारेके आसपास शायद उसका अधिकार अधिक समय तक रहा होगा।

पतञ्जलिके महाभाष्यमें भी यवनों द्वारा साकेत और मध्यमिकाके घेरेका

---

(१) मि० स्मिथ इस घटनाका समय ई० स० से० १७५ (वि० सं० से ११८) वर्ष पूर्व मानते हैं।

उल्लेख है[1]। इससे अनुमान होता है कि सम्भवतः उसका तात्पर्य मिनैण्डरकी चढाईसे ही होगा जो कि पतञ्जलिके समयमें ही हुई थी। क्योंकि उसी ग्रन्थमें लिखे हुए 'इह पुष्यमित्रं याजयामः' इस वाक्यसे पतञ्जलिका पुष्यमित्रके समय (ईसवी सन्से पूर्व १५५–१४० (वि० सं० से ९८–८३ वर्ष पूर्व) विद्यमान होना प्रकट होता है और यह भी अनुमान होता है कि शायद यह (पतञ्जलि) स्वयं उक्त यज्ञमें विद्यमान रहा होगा।

मेक्समूलर साहब गार्गीसंहिताका रचनाकाल ईसवी सन्की दूसरी या तीसरी शताब्दी अनुमान करते हैं। उसमें अशोककी चौथी पीढ़ीमें शालिशूकका राजा होना लिखा है और आगे चलकर उसीमें लिखा है कि जब दुष्ट विक्रान्त (बली) यवन साकेत, पांचाल (गंगा और यमुनाके बीचका प्रदेश), और मथुरा पर कब्ज़ा करके कुसुमध्वज (कुसुमपुर–पाटलिपुत्र) पर पहुँचेंगे तब सब प्रदेशोंमें गड़बड़ मच जायगी।

इससे भी मिनैण्डरके हमलेका ही बोध होता है।

मिनैण्डरके सिक्के पंजाब और उसके जीते हुए अन्य प्रदेशोंसे मिलते हैं। उनके आधार पर विद्वानोंने इसके भारतपरके आक्रमणका समय ईसवी सन्से १५६–१५३ (वि० सं० से ९९–९६) वर्ष पूर्व अनुमान किया है।

स्थलमार्गसे भारतके मध्यतक आक्रमण करनेवाले पाश्चात्य देशवालों (यूरोपवालों) का यह दूसरा और अन्तिम हमला था। उस समयसे ई० स० १५०२ (वि० सं० १५५९) तक भारत यूरोप

(१) 'अरुणद्यवनः साकेतं' 'अरुणद्यवनो मध्यामिकां'। (२) गोल्ड स्टकरका पाणिनी, हिज़ प्लेस इन संस्कृत लिटरेचर, पृ० २२८–३८।

देशवालोंके इस प्रकारके हमलोंसे बचा रहा था और इसी वर्ष पहले पहल जलमार्गसे वास्कोडीगामा कालीकट पहुँचा था।

जिस समय मिनैण्डरने भारतपर आक्रमण किया था उस समय बृहद्रथका पुत्र अग्निमित्र नर्मदाके पासके दक्षिणी प्रदेशोंका सूबेदार था और उसकी राजधानी विदिशा (भिलसा) थी।

कालिदासरचित मालविकाग्निमित्रसे पता चलता है कि अग्नि-मित्रकी रानीके भाईका नाम वीरसेन था। यह शायद दासीपुत्र होगा। इसको अग्निमित्रने नर्मदाके तीरपरके सरहदके किले पर नियुक्त कर दिया था[1]। इसने अग्निमित्रकी आज्ञासे विदर्भ (बरार) के राजा यज्ञसेनको हराकर उसका आधा राज्य उसके चचेरेभाई माधवसेनको दिलवा दिया था और इनके राज्यके बीचकी सीमा वरदा (वर्धा) नदी नियत कर दी थी[2]।

इसके बाद पुष्यमित्रने—जो कि इस समय तक वृद्धावस्थाको पहुँच गया था—उत्तरी भारतके सर्वश्रेष्ठ राजपदकी प्राप्तिकी इच्छासे अश्व-मेध यज्ञ करनेका विचार किया और छोड़े हुए अश्वकी रक्षाके लिये अपने पौत्र (अग्निमित्रके पुत्र) नवयुवक वसुमित्रको नियुक्त किया।

अश्वमेधका श्यामकर्ण घोड़ा जब सिन्धु (बुंदेलखण्ड और राज-पूतानेके बीचकी) नदीके दक्षिण किनारे पर पहुँचा तब यवनोंकी सेनाने उसे पकड़ लिया। इससे यवनोंकी और वसुमित्रकी सेनाओंके बीच तुमुल संग्राम हुआ।

अन्तमें इस युद्धमें यवनोंको हारना पड़ा[3]।

---

(१) मालविकाग्निमित्र, अङ्क प्रथम, पृ० ९।
(२) मालविकाग्निमित्र, अङ्क पञ्चम, पृ० १०१। (३) मालविकाग्निमित्र, अङ्क पञ्चम, पृ० १०३।

सम्भवतः यह युद्ध मिनैण्डरके उन यवन सैनिकोंके साथ हुआ होगा जो कि मध्यमिकाको घेरनेके लिये भेजे गये थे। यह नगरी राजपूतानेमें चित्तौड़से करीब ६ मील उत्तरमें है। इसको तांबावती नगरी भी कहते थे। यह नगरी भारतकी प्राचीनतम नगरियोंमेंसे एक है। वहाँ परसे कुछ सिक्के मिले हैं। इन पर '**मझिमिकाय शिबि-जानपदस**' लिखा होता है। इसी प्रकार बडलीसे एक लेख-खण्ड मिला है; उस पर '**वीराय भगवते...चतुरशीति...मिझमिका...**' लिखा है[1]।

इस प्रकार शत्रुओंसे छुट्टी पाकर घूमता घामता उक्त घोड़ा सालभर तक चक्कर काटकर जब सकुशल वापिस लौट आया तब पुष्यमित्रने विदिशाके सूबेदार अपने पुत्र अग्निमित्रको यज्ञकार्यमें सहायता देनेके लिये बुलवाया[2]।

तारानाथने पुष्यमित्रको राजपुरोहित लिखा है और यह भी लिखा है कि पुष्यमित्र बौद्धोंका कट्टर शत्रु था। उसने विहारोंको जलवाकर भिक्षुओंको कत्ल करवाया था।

दिव्यावदानसे भी उपर्युक्त बातकी पुष्टि होती है।

मिनैण्डरको हराकर लौटानेके बाद पुष्यमित्र करीब ५ वर्ष तक जीवित रहा था और पुराणोंके लेखानुसार इसका राज्यकाल ३६ वर्षका था।

हम पहले लिख चुके हैं कि मिनैण्डर ई० स० से १५३ (वि० स० से ९६) वर्ष पूर्व लौटा था। अतः पुष्यमित्रकी मृत्यु ई० स० से १४९ (वि० सं० से ९२) वर्ष पूर्व हुई होगी।

---

(१) इसका उल्लेख हम पहले महावीरके इतिहासमें कर चुके हैं।

(२) मालविकाग्निमित्र, अङ्क पञ्चम, पृ० १०३।

२ अग्निमित्र ।

यह पुष्यमित्रका पुत्र था और उसके मरनेपर राज्यका स्वामी हुआ। यह अपने पिताके समय ही उसके राज्यके दक्षिणी प्रदेशका शासक था। इसका बहुत कुछ इतिहास इसके पिताके वर्णनमें लिखा जा चुका है।

कालिदासरचित मालविकाग्निमित्र नामक नाटकका नायक यही राजा है।

ब्रह्माण्डपुराणमें इसका ८ वर्ष राज्य करना लिखा है।

३ वसुज्येष्ठ ।

सम्भवतः यह अग्निमित्रका छोटा भाई और उत्तराधिकारी होगा। पुराणोंमें इसका ७ वर्ष राज्य करना लिखा है।

४ वसुमित्र ।

यह अग्निमित्रका पुत्र था।

हम पुष्यमित्रके इतिहासमें लिख चुके हैं कि उसने अपने अश्व-मेधके घोड़ेकी रक्षाका भार इसीको सौंपा था। यद्यपि यह उस समय नवयुवक ही था तथापि इसने पितामहके कार्यको बड़ी ख़ूबीके साथ पूरा किया। इसीने राजपूतानेके पास सिन्धु नदीके दक्षिणी तीर पर मिनैण्डरकी सेनाको हराया था।

मत्स्य और ब्रह्माण्ड पुराणोंमें इसका १० वर्ष तथा वायुमें ८ वर्ष राज्य करना लिखा है।

बाणरचित हर्षचरितमें लिखा है:[1]—

'अतिदयितलास्यस्य च शैलूषमध्यमध्यास्य मूर्द्धानम् असिलतया मृणालमिव अलुनात् अग्निमित्रात्मजस्य सुमित्रस्य मित्रदेवः।'

---

(१) हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ४७६।

अर्थात्—मित्रदेवने नटोंके बीच छिपकर नृत्यप्रिय अग्निमित्रके पुत्र सुमित्रका सिर काट लिया।

इससे अनुमान होता है कि शायद यह सुमित्र इसी वसुमित्रका दूसरा भाई होगा।

५ आर्द्रक।

वायुपुराणमें इसका नाम अन्द्रक, मत्स्यमें अन्तक, ब्रह्माण्डमें भद्र और भागवतमें भद्रक लिखा है। इसने दो वर्ष तक राज्य किया।

६ पुलिन्दक।

इसने भी केवल तीन वर्ष ही राज्य किया।

७ घोषवसु।

पुराणोंके अनुसार इसका राज्यकाल भी तीन ही वर्षका है।

८ वज्रमित्र।

ब्रह्माण्ड और वायुपुराणोंके अनुसार इसने १४ वर्ष राज्य किया।

९ भागवत।

पुराणोंमें इसका राज्यकाल ३२ वर्षका लिखा मिलता है।

१० देवभूति।

यह इस वंशका अन्तिम राजा था। इसका राज्य काल १० वर्षका लिखा है। विष्णुपुराणमें लिखा[1] है:—

"देवभूतिं तु शुंगराजानं व्यसनिनं तस्यैवामात्यः कण्वो वसुदेवनामा तं निहत्य स्वयमवनीं भोक्ष्यति॥ ३९॥"

अर्थात्—शुङ्गवंशी लम्पट राजा देवभूतिको उसका मन्त्री कण्ववंशी वसुदेव मार डालेगा और उसके राज्यपर अधिकार कर लेगा।

हर्षचरितमें लिखा[2] है:—

---

(१) विष्णुपुराण, अध्याय २४ पृ० १९१। (२) हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ४७७।

"अतिस्त्रीसङ्गरतम् अनङ्गपरवशं शुङ्गम् अमात्यो वसुदेवोदेवभूतिदासीदुहित्रा देवीव्यञ्जनया वीतजीवितम् अकारयत् ।"

अर्थात्—कामी शुङ्गवंशी (देवभूति) को उसके मन्त्री वसुदेवने रानीका वेष की हुई देवभूतिकी दासीकी कन्या द्वारा मरवा डाला ।

इस प्रकार पुराणोंके अनुसार ११२ वर्ष तक शुङ्गवंशका राज्य रहा और जिस प्रकार पुष्यमित्रने अपने स्वामीको मार कर मौर्य-राज्य पर अधिकार कर लिया था उसी प्रकार उसके वंशज देवभूतिको कण्ववंशी मंत्री वसुदेवने समाप्त कर उसके राज्य पर अपना अधिकार कर लिया ।

शुङ्गोंके समयके दो लेख मिले हैं जिनसे इनके समय अश्वमेध और वाजपेय यज्ञका होना सिद्ध होता है ।

भिन्न भिन्न पुराणोंसे शुङ्गवंशके राजाओंकी वंशावली और राज्यवर्ष ।

विष्णुपुराण	वायुपुराण ११२ वर्ष	राज्य वर्ष	मत्स्यपुराण ११२	राज्य वर्ष	ब्रह्माण्डपुराण ११२	राज्य वर्ष	भागवतपुराण १०० वर्षसे अधिक
पुष्यमित्र	पुष्यमित्र	६०	पुष्पमित्र	३६	पुष्पमित्र	३६	
अग्निमित्र	पुष्यमित्रका पुत्र	८			अग्निमित्र	८	
सुज्येष्ठ	सुज्येष्ठ	७	सुज्येष्ठ	७	सुज्येष्ठ	७	
वसुमित्र	वसुमित्र	८	वसुमित्र	१०	वसुमित्र	१०	
आर्द्रक	{ अन्द्रक { उद्रक	२ १०	अन्तक	२	भद्र	२	भद्रक
पुलिन्दक	पुलिन्दक	३	पुलिन्दक	३	पुलिन्दक	३	पुलिन्द
घोषवसु	घोषवसु	३	मेघ (?)	३	घोषवसु	३	घोष
वज्रमित्र	{ वज्रमित्र { विक्रमित्र	१४ ९	वज्रमित्र	९	वज्रमित्र	१४	
भागवत	भागवत	३२	भाग	३२	भागवत	३२	
देवभूती	क्षेमभूमी	१०	देवभूमी	१०	देवभूमी	१०	

कण्व-वंश।

ई० स० पूर्व ७३ (वि० सं० पूर्व १६) से ई० स० पूर्व २८ (वि० सं० २९) तक।

विष्णुपुराणमें लिखा है:—

'ततः कण्वानेषा भूमिर्यास्यति'[1]

अर्थात्—शुङ्गोंके बाद पृथ्वी कण्ववंशियोंके अधिकारमें जायगी।

पहले शुङ्गवंशी देवभूतिके वर्णनमें लिखा जा चुका है कि उसे मार कर उसका मन्त्री वसुदेव राज्यका स्वामी बन बैठा। यह वसुदेव जातिका कण्ववंशी ब्राह्मण था और सम्भवत: देवभूतिके कामासक्त रहनेके कारण राज्यके सब सूत्र इसीके हाथमें थे। इनके वंशका दूसरा नाम कण्वायन[2] भी मिलता है।

मि० विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि राजा सुमित्रको मारनेवाला मित्रदेव भी शायद इसी कण्ववंशका होगा। इस घटनाका उल्लेख शुङ्गवंशके चौथे राजा वसुमित्रके इतिहासमें किया जा चुका है। पुराणोंमें कण्ववंशियोंका ४५ वर्ष राज्य करना लिखा है। सम्भवत: इनके राज्यका प्रारम्भ ईसवी सन्से ७३ (वि० सं० से १६) वर्ष पूर्व हुआ होगा।

१ वसुदेव।

यह अपने स्वामी शुङ्गवंशके दसवें राजा देवभूतिको मार कर उसके राज्यका स्वामी बन बैठा। इसने ९ वर्ष राज्य किया।

---

(१) विष्णुपुराण, अध्याय २४, पृ० १९९। (२) इत्येते शुङ्गभृत्यास्तु स्मृताः कण्वायना नृपाः (३४)—मत्स्यपुराण अ० २७२, पृ० २५०।

२ भूमित्र ।

यह वसुदेवका पुत्र और उत्तराधिकारी था ।

पुराणोंमें इसका राज्यकाल १४ वर्ष लिखा है ।

३ नारायण ।

यह भूमित्रका पुत्र था और उसके पीछे राज्यका स्वामी हुआ । पुराणोंके अनुसार इसने १२ वर्ष राज्य किया था ।

४ सुशर्मा ।

यह नारायणका पुत्र था और उसके पीछे उसका उत्तराधिकारी हुआ । इसका राज्यकाल १० वर्षका लिखा है ।

पुराणोंसे पता चलता है कि आन्ध्रवंशी सिमुक (शिशुक) ने इस सुशर्माको मार कर इनके राज्यकी समाप्ति कर दी ।

ई० स० ७३ में से ४५ घटानेसे इस घटनाका समय ई० स० से २८ वर्ष पूर्व (विक्रम संवत् २९) के आसपास होना अनुमान किया जा सकता है ।

मि० विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि आन्ध्रवंशके ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें राजाओंमेंसे किसी एकने कण्ववंशकी समाप्ति की होगी ।

पुराणोंके आधारपर कण्ववंशी राजाओंकी वंशावली और उनके राज्य-वर्ष ।

विष्णुपुराण ४५ वर्ष	वायुपुराण ४५ वर्ष	राज्यवर्ष	मत्स्यपुराण ४५ वर्ष	राज्यवर्ष	ब्रह्माण्डपुराण ४५ वर्ष	भागवत ३४५ वर्ष
वासुदेव	वासुदेव	९	वासुदेव	९	वासुदेव	वासुदेव
भूमिमित्र	भूमिमित्र	१४	भूमिमित्र	१४	भूमिमित्र	भूमिमित्र
नारायण	नारायण	१२	नारायण	१२	नारायण	नारायण
सुशर्मा	सुशर्मा	१०	सुशर्मा	१०	सुधर्मा	सुशर्मा

(३) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २०६ ।

आन्ध्र[1]-वंश।

ई० स० पूर्व २३२ (वि० सं० पूर्व १७५) के निकटसे ई० स० २२५ (वि० सं० २८२) तक।

इस वंशका उल्लेख पहले पहल ऐतरेय ब्राह्मणमें मिलता है। उसमें लिखा है:—

"**तस्यह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः पञ्चाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत् कनीयांस स्तद्ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे ताननुव्याजहारान् तान्वः प्रजाभक्षीष्टेति त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दामूतिबा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति वैश्वामित्रां दस्यूनां भूयिष्ठाः**" (सप्तपञ्चमिका, अध्याय ३, खण्ड ६, मंत्र १८)

अर्थात्—विश्वामित्रके १०१ पुत्र थे। उनमेंसे ५० तो मधुच्छन्दसे बड़े और ५० छोटे। बड़े ५० पुत्रोंने (शुनःशेफको अपना भाई) मानना ठीक नहीं समझा। इस पर विश्वामित्रने उनको शाप दिया कि तुम्हारी सन्तान शूद्र हो जायगी। वे ही आन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, आदि अनेक नीच कौमके दस्यु (चोर या आर्योंके शत्रु) हैं।

ऊपरके दस्यु शब्दके प्रयोगसे विदित होता है कि ये लोग दक्षिण-

---

(१) रघुवंशमें शातकर्णिको—जो कि आन्ध्रवंशियोंकी खास उपाधि या नाम था—ब्राह्मण लिखा है। देखो रघुवंश, सर्ग १३, श्लोक ३८—"एतन्मुनेर्मानिनि शातकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि।"

मनुस्मृतिके १० वें अध्यायमें आन्ध्रोंकी आजीविकाका ज़रिया शिकार लिखा हैं:—

मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम्॥ ४८॥

की जातियोंमेंसे थे और इनका निवासस्थान कृष्णा और गोदावरीके बीचका (तेलगू) देश था।

(मैकडानल[1] साहब ऐतरेय ब्राह्मणका रचनाकाल ईसवी सन्‌से ५०० वर्ष पूर्व मानते हैं।)

ईसवी सन् पूर्व २६९ से २३२ तक भारतमें प्रसिद्ध मौर्य सम्राट् अशोकका राज्य था। उसकी खुदवाई हुई १४ आज्ञाओंमेंसे १३ वीं आज्ञामें लिखा है:—

" विशवाजे योनकंबोजेषु नाभके नाभपंतिषु भोजपतिनिक्येषु अंधपलदेषु षवता देवानां पियषा धंमानुषथि अनुवतंति "

अर्थात्—विषवज्र, यवन, कम्बोज, नाभक, नाभप्रान्त, भोजपति-निक्य, अन्ध्र और पुलिन्दके सब लोग देवानां प्रिय (अशोक) की धर्माज्ञाओंका पालन करते हैं।

उपर्युक्त लेखमें भी आन्ध्रोंका नाम आया है। ये लोग उस समय नाम मात्रके लिये अशोकके अधीन थे।

विन्सैण्ट स्मिथने मैगेस्थनीजके आधार पर लिखा है[2] कि मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्तके समय आन्ध्रवंशी लोग कृष्णा और गोदावरीके मध्यके देशमें रहते थे और उस समय इनकी सेना प्रासी (पाटलिपुत्र) के राजा चन्द्रगुप्तके सिवाय सबसे बड़ी गिनी जाती थी। उसमें १ लाख पैदल, २ हज़ार सवार और १ हज़ार हाथी थे। इनके राज्यमें अनेक गाँवोंके अलावा शहरपनाहसे रक्षित ३० नगर भी थे। इनकी राज-धानीका नाम 'श्रीकाकुलं' था।

श्रीयुत हरप्रसाद शास्त्रीका अनुमान है[3] कि इन्हींके राज्य (पूर्वी-

---

(१) मैकडानलकी हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर, पृ० २०५।

(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २०६। (३) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २६।

महाराष्ट्र) में ईसासे पूर्वकी पाँचवीं शताब्दीमें सूत्रकार महर्षि आपस्तम्बका जन्म हुआ था।

ये लोग वैदिक धर्मको भी मानते थे। परन्तु इनका अनुराग विशेषतर बौद्ध धर्म पर ही था। इसीसे पुराणोंमें इनको शूद्र लिखा है:—

हत्वा कण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली।
गां भोक्ष्यत्यंध्रजातीयः कञ्चित्कालमसत्तमः॥ २०॥

(भागवत, स्कन्ध १२, अध्याय १।)

अर्थात्—कण्ववंशी सुशर्माको मार कर उसका आन्ध्र जातिका नीच शूद्र सेवक बली कुछ काल तक पृथ्वीको भोगेगा।

ये आन्ध्र लोग पूर्णतया मौर्योंके अधीन हुए थे या नहीं और हुए थे तो किस समय, इसका पूरा पता नहीं लगता। परन्तु अनुमानसे सिद्ध होता है कि जिस समय कलिंग-विजयसे उत्पन्न हुई घृणासे अशोकने विजययात्रा करनी छोड़ दी थी उस समयसे ही औरोंके साथ साथ शायद आन्ध्रोंने भी अपने राज्यका विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया होगा और अशोककी मृत्यु (ई० स० से पूर्व २३२) के बाद ही अपना प्रभाव पूर्णतया कायम कर लिया होगा।

कटक (उड़ीसा) के पास उदयगिरि पर्वतमें हाथीगुम्फा नामकी एक गुफा है। उसमें मौर्य संवत् १६५ का एक लेख[1] लगा है। यह कलिंग देशके जैन राजा खारवेलके समयका है। मौर्य संवत् १६५ में खारवेल महामेघवाहनके राज्यका १३ वाँ वर्ष था। उक्त लेखमें खारवेलके पिताका नाम वृद्धराज और दादाका नाम क्षेमराज लिखा है।

(१) जर्नल बिहार एण्ड ओड़िसा रीसर्च सोसाइटी, जिल्द ३, पृ० ४२५–५०७।

खारवेलने अपने राज्यके दूसरे वर्ष शातकर्णिके राज्यकी तरफ़ अपनी सेना भेजी थी। वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु और भागवतमें शातकर्णिको आन्ध्रवंशका तीसरा राजा लिखा है। अतः सम्भव है कि अशोकके मरनेपर ये दोनों वंश साथ ही साथ बढ़े होंगे।

मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त (प्रथम) का राज्याभिषेक ईसवी सन्‌से ३२१ वर्षपूर्व माना जाता है। इस हिसाबसे उपर्युक्त लेख ईसासे १५७ वर्ष पूर्वका होगा। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि अशोककी मृत्युके कुछ ही काल बाद कलिंग देशके राजा (महामेघवाहनके दादा) क्षेमराज और आन्ध्रवंशी शातकर्णीके दादा (सिमुक) ने अपनी पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर दी होगी।

आन्ध्र लोग अपनेको दक्षिणके प्रसिद्ध राजा शातवाहन (शालिवाहन) के वंशज मानते थे।

१ सिमुक।

पुराणोंमें इस वंशका सबसे पहला नाम यही मिलता है। इसीने करीब ईसवी सन्‌से २३२ वर्ष पूर्व फिर आन्ध्रराज्यको उन्नतिपर पहुँचाया था।

नानाघाट (सह्याद्रि—पूना और नासिकके बीच) की गुफामें एक लेख[१] लगा है। बुलर साहबके मतानुसार उसका सारांश नीचे उद्धृत किया जाता है:—

"शातवाहनवंशी सिमुकके पुत्र शातकर्णिकी स्त्रीका नाम नायनिका (नागनिका) था। यह महारथी त्रनकयिरोकी पुत्री थी। नागनिकाके दो पुत्र थे। शक्तिश्री (सति श्रीमत्) और वेदश्री। जिस

(१) जर्नल बाम्बे ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, जिल्द १३, पृ० ३११।

समय यह लेख लिखा गया था उस समय पति शातकर्णिके मर जाने और पुत्र वेदश्रीके बालक होनेके कारण राज्यका प्रबन्ध स्वयं नागनिकाके हाथमें था। यह लेख एक यज्ञके अवसर पर खुदवाया गया था।"

इस लेखमें भी सिमुक और शातकर्णिके नाम होनेसे पुराणोक्त क्रमकी ही पुष्टि होती है।

नानाघाटकी गुफामें इस राजाकी एक मूर्ति खुदी है। उस पर 'राया सिमुक सातवाहनो' खुदा है।

२ कृष्ण (कन्ह)।

यह सीमुकका छोटा भाई और उत्तराधिकारी था। नासिकसे इसके समयका एक लेख[1] मिला है। इसमें शातवाहनवंशी राजा कन्ह (कृष्ण) के समयमें एक गुफाके बनाये जानेका उल्लेख है। इससे प्रकट होता है कि उस समय नासिक पर भी इसीका अधिकार था।

इसके पुत्रका नाम शातकर्णि था।

यद्यपि नानाघाटसे मिले शातकर्णिकी स्त्रीके लेखमें शातकर्णिके पिताका नाम सिमुक ही लिखा है और कन्हका नाम नहीं है, तथापि नासिकसे मिले इसके उपर्युक्त लेखसे और पुराणोंसे कन्हका राज्य करना सिद्ध होता है।

विष्णुपुराणके चतुर्थ अंशके अध्याय २४ में लिखा है:—

सुशर्माणं तु काण्वं तद्भृत्यो बलिपुच्छक नामा।
हत्वान्ध्रजातीयो वसुधां भोक्ष्यति॥ ४३॥
ततश्च कृष्णनामा तद्भ्राता पृथिवीपतिर्भविष्यति॥ ४४॥
तस्यापि पुत्रः शातकर्णि.........॥ ४५॥

---

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ८, पृ० ९३।

अर्थात्—कण्ववंशी सुशर्माको मारकर उसका आन्ध्रवंशी सेवक बलिपुच्छक राजा होगा। उसके पीछे उसका भाई कृष्ण और तदनन्तर उस (कृष्ण) का पुत्र शातकर्णि राजा होगा।

भागवत, स्कन्ध १२ के अध्याय १ में लिखा है:—

हत्वा कण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली।
गां भोक्ष्यत्यंध्रजातीयः कश्चित्कालमसत्तमः॥ २०॥
कृष्ण नामाथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः।
श्रीशातकर्णिस्तत्पुत्रः............ ॥ २१ ॥

इससे भी उपर्युक्त बातकी ही पुष्टि होती है। अतः नानाघाटके लेखमें सीमुकका छोटा भाई होनेके कारण ही कृष्णका नाम छोड़ दिया गया है और सिमुकके बाद ही शातकर्णिका नाम लिख दिया है। अक्सर देखनेमें आता है कि राजा लोग इसी प्रकार छोटे भाइयोंका नाम छोड़कर शाखाके प्रधान पुरुषके बाद ही अपना नाम लिख देते हैं।

३ शातकर्णि।

यह कृष्णका पुत्र था और उसके पीछे राज्यका स्वामी हुआ। सिमुकके इतिहासमें इसकी रानी नागनिकाके लेखका उल्लेख किया जा चुका है। उसमें लिखा है कि इसके मर जाने और इसके पुत्रोंके छोटे होनेके कारण राज्यका कार्य इसकी स्त्री नागनिका (नायनिका) किया करती थी। उसीमें इसके पुत्रोंका नाम शक्तिश्री और वेदश्री लिखा है।

इसी शातकर्णिके समय ईसवी सन्से १६८ वर्ष पूर्व (विक्रम संवत् से १११ वर्ष पूर्व) कलिंगदेशके राजा खारवेलने इसपर सेना भेजी थी।

भिलसासे एक लेख शातकर्णिका मिला है। बूलरसाहब इस लेखको इसी शातकर्णिका अनुमान करते हैं । यदि यह अनुमान ठीक हो तो ईसवी सन्से १६८ वर्ष पूर्व आकर (पूर्वी मालवे) पर[1] आन्ध्रोंका अधिकार होना सिद्ध होगा। परन्तु उस समय वहाँपर शुंगवंशियोंका अधिकार था। अतः उक्त लेख बादके किसी वासिष्ठिपुत्र श्रीशातकर्णिका होगा।

सिक्के[2]।

दक्षिणी भारतसे इसके समयके सीसेके सिक्के मिले हैं। उनपर एक तरफ़ खड़ा हुआ हाथी बना होता है और नीचेकी तरफ़ नदीमें तैरती हुई तीन मछलियाँ बनी होती हैं। तथा ब्राह्मी अक्षरोंमें 'रञो सिरि-सातस' लिखा रहता है। दूसरी तरफ़ कुछ अस्पष्ट निशानसे दिखाई देते हैं। इसके मिश्र धातुके सिक्के भी मिलते हैं। इस प्रकारके सिक्कों-पर एक तरफ़ खड़ा हुआ हाथी, कटहरेमें खड़ा वृक्ष, तीन चश्मोंका चैत्य और नीचेकी तरफ़ नदीमें तैरती हुई मछली बनी होती है।

दूसरी तरफ़ खड़ा हुआ आदमी, उज्जैनका चिह्न और ब्राह्मीमें 'रञो सिरि सातस' लेख खुदा रहता है।

इसके मिश्रधातुके चौकोर सिक्के भी मिले हैं।

इनपर एक तरफ़ उछलता हुआ सिंह बना होता है और उसके ऊपर स्वस्तिक, चारों तरफ़ बिन्दुओंका घेरा और ब्राह्मी अक्षरोंमें

---

(१) रापसनका आन्ध्र और क्षत्रप आदि राजाओंके सिक्कोंका कैटलॉग (इण्ट्रोडकशन) पृ० २३।

(२) *अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया*, पृ० १७७–१९३।

(३) रापसनका आन्ध्र और क्षत्रप आदि राजाओंके सिक्कोंका कैटलॉग, पृ० १–४

'रञो सातकंणिस' खुदा होता है। परन्तु लेखके अक्षर उलटे और गड़बड़ होते हैं। दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न, ऊपरको नन्दिपद, कट-हरेमें खड़ा वृक्ष और चारों तरफ़ बिन्दुओंकी चौकोर रेखा बनी होती है।

और भी दो तीन तरहके सिक्के मिले हैं। इनमेंसे किसी पर 'अज' किसीपर 'रञो...वरस' और किसीपर 'र....णिस' पढ़ा जाता है।

इनको भी रापसन साहबने इसीके सिक्कोंके समान होनेसे इसीके अनुमान किये हैं। परन्तु उनके लेख स्पष्ट न होनेसे हमने यहाँपर उनका उल्लेख नहीं किया है।

४ शक्तिश्री।

हम पहले लिख चुके हैं कि यह शातकर्णिका पुत्र था। नासिकसे विना संवत्का एक लेख[1] मिला है। यह 'महाहकुसिरि' के समयका है। ऐतिहासिकोंका अनुमान है कि उक्त लेखका 'महाहकुसिरि' वास्तवमें 'महाशक्तिश्री' का ही प्राकृत रूप है। एम० सेनार्टके मतानुसार यह लेख 'महाहकुसिरी' की नवासी भटपालिकाका है। यह मन्त्री अरहलयकी पुत्री और मन्त्री अगियटणककी स्त्री थी।

बूलर साहबका अनुमान है[2] कि यही शक्तिश्री जैन कथाओंमेंका शक्तिकुमार है।

आन्ध्रोंके इतिहासमें इसके बादका कुछ समय ऐसा है कि न तो अबतक उस समयके किसी आन्ध्रवंशी राजाका कोई लेख ही मिला

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ८, पृ० ९१।

(२) आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑफ़ वैस्टर्न इण्डिया, जिल्द ५, पृ० ६२, नोट १।

है और न सिक्का ही। अतः इस बीचके समयके राजाओंके नामों आदिका अनुमान केवल पुराणोंके आधारपर ही किया जा सकता है। मि० विन्सैण्ट स्मिथने मत्स्यपुराणकी वंशावलीको विशेष महत्त्वका माना है। उसमें इस वंशके २९ राजाओंके नाम दिये हैं और उनका राज्य काल ४६० वर्ष लिखा है। परन्तु विष्णु, वायु, और भागवतमें ३० राजाओंके नाम हैं और उनका राज्य समय ४५६ वर्ष दिया है। यह समय अनुमानसे भी ठीक ही मिलता है। क्योंकि अशोककी मृत्यु (ई० स० पूर्व २३२) के कुछ समय बादसे इनका स्वाधीन राज्य कायम हुआ था और शायद तीसरी शताब्दीमें इसकी समाप्ति हुई थी।

पाठकोंके अवलोकनार्थ यहाँपर हम भिन्न भिन्न पुराणोंसे आन्ध्र राजाओंकी वंशावली और उनका राज्यकाल उद्धृत करते हैं:—

भिन्न भिन्न पुराणोंमें दी हुई आन्ध्रवंशकी वंशावली और उनके राज्यवर्ष ।

नंबर	मत्स्यपुराणसे	राज्य वर्ष	ब्रह्माण्डपुराणसे	राज्य वर्ष	वायुपुराणसे	राज्य वर्ष	विष्णुपुराणसे	भागवतसे
१	शिशुक	२३	चिश्मक	२३	सिन्धुक	२३	शिप्रक (बलिपुच्छक)	बली
२	(कृष्ण)	१८	कृष्ण	१८	कृष्ण	१८	कृष्ण	कृष्ण
३	श्रीमल्लकर्णि	१०	श्रीशातकर्णि	१८	श्रीशातकर्णि		श्रीशातकर्णि	श्रीशान्तकर्ण
४	पूर्णोत्संग	१८	पूर्णोत्संग	१८			पूर्णोत्संग	पौर्णमास
५	स्कन्धस्तम्भि	१८						
६	शातकर्णि	५६	शातकर्णि	५६	शातकर्णि	५६	शातकर्णि	
७	लम्बोदर	१८	लम्बोदर	१८			लम्बोदर	लम्बोदर
८	अपीलक	१२	आपीलक	१२	अपीलव	१२	दिवीलक	चिविलक
९	मेघस्वाति (संघ)	१८	सौडास	१८			मेघस्वाति	मेघस्वाति
१०	स्वाति (स्वामि)	१८	आवि (?)	१२				
११	स्कन्द स्वाति	७	स्कन्दस्वाति	७				
१२	मृगेन्द्र स्वातिकर्ण	३	महेन्द्र शातकर्णि	३				
१३	कुन्तल स्वातिकर्ण	८	कुन्तल शातकर्णि	८				
१४	स्वातिकर्ण	१	स्वातिषेण	१				
१५	पुलोमावि	३६			पटुमावि	२४	पटुमान	अटमान

१६	रिक्तवर्ण (विकृष्ण)	२५			नेमिकृष्ण	२५.	अरिष्टकर्मा	अनिष्टकर्मा
१७	हाल	५			हाल	(५)	हाल	हालेय
१८	मण्डलक	५	भावक	५	(पुत्तलक)	५	पुत्तलक	तलक
१९	पुरीन्द्रसेन	५	प्रविल्लसेन	१२	पुरिकषेण	२१	प्रविल्लसेन	पुरीषभीरु
२०	सुन्दर शान्तिकर्ण	१	सुन्दर शातकर्णि	१	शातकर्णि	१	सुन्दर शातकर्णि	सुनन्दन
२१	चकोर स्वातिकर्ण	१/२	चकोर शातकर्णि	१/२	चकोर शातकर्णि	१/२	चकोर शातकर्णि	चकोर
२२	शिवस्वाति	२८			शिवस्वामि	२८	शिवस्वाति	शिवस्वाति
२३	गौतमीपुत्र	२१	यन्त्रमति (?)	३४	गौतमीपुत्र	२१	गोमतीपुत्र	गोमतीपुत्र
२४	पुलोमा	२८	शातकर्णि	२९			पुलिमान	पुरीमान्
२५	शिवश्री	७	आवि (?)	४			शातकर्णि शिवश्री	मेदशिरा
२६	शिवस्कन्द शातकर्णि	७	शिवस्कंद शातकर्णि	८			शिवस्कन्ध	शिवस्कन्द
२७	यज्ञश्रीशातकर्णिक	२९	यज्ञश्रीशातकर्णि	१९	यज्ञश्रीशातकर्णि	२९	यज्ञश्री	यज्ञश्री
२८	विजय	६			विजय	६	विजय	विजय
२९	चण्ड श्रीशान्तिकर्ण	१०	दण्डश्रीशातकर्णि	३	दण्ड श्रीशातकर्णि	३	चन्द्रश्री	चन्द्र
३०	पुलोमा	७	पुलोमा	७	पुलोवापि	७	पुलोमावि	पुलोमधि

दन्तकथाओंके अनुसार लोग आन्ध्रवंशके १७ वें राजा हालको प्राचीन मराठीमें लिखी 'गाथासप्तशती' नामक पुस्तकका लेखक अनुमान करते हैं। इसी आधारपर डा० भाण्डारकरका अनुमान है कि यों तो इसीने स्वयं यह पुस्तक बनाई होगी अथवा किसीने इसके नामपर समर्पण कर दी होगी।

इसी प्रकार और भी कई प्राकृतके ग्रन्थ आन्ध्रवंशियोंके बनाये हुए माने जाते हैं। इनके राज्यसमय संस्कृतका प्रचार होना प्रकट नहीं होता[3]।

वासिष्ठीपुत्रवि-लिवायकुर।

कोल्हापुरसे कुछ सीसेके सिक्के मिले हैं। इनपर एक ओर चार खनका चैत्य (जिनके बीचमें बिन्दु लगे रहते हैं), कटहरेमें खड़ा वृक्ष, स्वस्तिकका चिह्न और चन्द्रमा बना होता है। दूसरी ओर ऊपरकी तरफ़ मुँहवाले बाणसे सज्जित धनुष और चारों तरफ़ ब्राह्मी अक्षरोंमें 'रञो वासिठीपुतस विलिवायकुरस' खुदा होता है।

इसी राजाके मिश्रित धातुके सिक्के भी मिले हैं[5]। ये भी पूर्वोक्त सिक्कोंके समान ही होते हैं। केवल चैत्यकी तरफ़ नन्दिपद और धनुषकी तरफ़ एक छोटासा वृत्त विशेष बना होता है।

रापसन साहबका अनुमान है कि शायद यह विलिवायकुर और भिलसाके लेखका वासिष्ठीपुत्र श्रीशातकर्णी एक ही होगा[6]।

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २०८।

(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ दक्षिण, बाम्बे गजटियर, जिल्द १, पृ० १७१।

(३) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २०९।

(४-५-६) कैटलॉग ऑफ़ क्षत्रप एण्ड आन्ध्र कौइन्स, पृ० ५, ६, इण्ट्रोडकशन् २७, नोट २।

माढरिपुत्र—सिवलकुर।

कोल्हापुरसे कुछ सीसे और मिश्र धातुके ऐसे भी सिक्के मिले[1] हैं जो विलिवायकुरके सिक्कोंके समान ही होते हैं। परन्तु उन पर ब्राह्मी अक्षरोंमें 'रञो माढरिपुतस सिवलकुरस' लिखा होता है।

वहींसे कुछ सीसेके सिक्के ऐसे भी मिले हैं[2] जिनसे बोध होता है कि उपर्युक्त विलिवायकुरके सिक्कोंपर ही सिवलकुरने अपनी मुहरें लगवा दी थीं। ऐसे सिक्कोंपर दोनों राजाओंके लेखांश पढ़े जाते हैं। भगवानलाल इन्द्रजी इसको कन्हेरीसे मिले दो लेखोंमेंका माढरिपुत्र स्वामी सकसेन अनुमान करते हैं। इन उपर्युक्त लेखोंमेंसे एक लेख[3] सकसेनके ८ वें राज्य वर्षका है। अतः यह अनुमान ठीक हो तो माढरिपुत्रका कमसे कम ८ वर्ष राज्य करना सिद्ध होता है। डा० भाण्डारकरका अनुमान[4] है कि आन्ध्रदेशसे मिले 'सकसद' या 'सकसेन' नामवाले सिक्के भी इसी राजाके हैं। इस अनुमानसे इसका आन्ध्रदेश, दक्षिणी महाराष्ट्र और कन्हेरी (कोंकन) का स्वामी होना सिद्ध होता है।

गौतमीपुत्र-विलिवायकुर।

कोल्हापुरसे पूर्ववर्णित सीसेके सिक्कोंके समान ही कुछ सीसेके

(१-२) कैटलॉग ऑफ़ क्षत्रप एण्ड आन्ध्र कोइन्स पृ० ७ और ९।

(३) जर्नल बाम्बे ब्रांच ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, जि० १२, पृ० ४०८। (४) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स, ऑफ़ क्षत्रप एण्ड आन्ध्र डाइनेस्टी, इन्ट्रोडक्शन पृ० २८।

सिक्के ऐसे मिले हैं[1], जिन पर ब्राह्मी लिपिमें 'रञो गोतमिपुतस वि-ळिवायकुरस' लिखा होता है। वे शायद इसीके होंगे।

इसने वासिष्ठीपुत्र विळिवायकुर और माढरीपुत्र सिवळकुरके सीसेके सिक्कोंपर अपनी मुहर लगवाई थी। ऐसे सिक्कोंपर दोनोंके लेखांश पढ़े जाते हैं[2]। इससे अनुमान होता है कि वासिष्ठीपुत्र विळिवायकुरके बाद माढरीपुत्र सिवळकुर और उसके बाद गौतमीपुत्र विळिवायकुर राजा हुआ था। इसके भी पहलेके राजाओंकी तरह मिश्रधातुके सिक्के मिले हैं। इन पर इसका नाम होता है[3]।

रापसन साहबका अनुमान[4] है कि यदि पूर्वोक्त प्रकारसे ही इस गौतमीपुत्र विळिवायकुरको और गौतमीपुत्र शातकर्णीको एक ही समझ लिया जाय तो इसके सिक्कोंसे इस (शातकर्णी) का माढरीपुत्र सिविळकुरका उत्तराधिकारी होना सिद्ध होगा; क्योंकि इसने उसके सिक्कों पर अपनी मुहर लगवाई थी। परन्तु जब तक विशेष प्रमाण न मिलें तब तक वासिष्ठीपुत्र विळिवायकुर और वासिष्ठीपुत्र शातकर्णीके, माढरीपुत्र सिवळकुर, माढरीपुत्र सकसेन और सकसद या सकसेनके तथा गौतमीपुत्र विळिवायकुर और गौतमीपुत्र शातकर्णीके एक ही होनेके विषयमें निश्चित मत नहीं दिया जा सकता।

२३ गौतमीपुत्र शातकर्णि।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि रापसन साहब इसे और गौतमीपुत्र

(१-२-३-४) कैटलॉग ऑफ् दि कौइन्स ऑफ् क्षत्रप एण्ड आन्ध्र डाइ-नेस्टी, इन्ट्रोडक्शन पृ० १३-१४, १४, १५-१६, इन्ट्रोडक्शन पृ० २८।

विलिवायकुरको एक ही अनुमान करते हैं। परन्तु अभी तक इस विषयका विशेष प्रमाण न मिलनेके कारण हम गौतमीपुत्र शातकर्णिके नामवाले लेख और सिक्कोंका अलग ही उल्लेख करते हैं।

नासिकसे इसके राज्यके १८ वें वर्षका एक लेख मिला है[१]। यह वर्षाऋतुके द्वितीय पक्षकी प्रतिपदाका है। इसमें एक खेतके दानका वर्णन है। यह खेत पहले क्षत्रपवंशी नहपानके जामाता उषभदत्तके अधिकारमें था। यह आज्ञा वैजयन्ती (बानवासी) से गोवर्धन (ज़ि० नासिक) के सूबेदारके नाम दी गई थी और यह लेख शातकर्णिकी आज्ञासे उसके मन्त्री शिवगुप्तने लिखवाया था।

कार्लेसे भी इसके राज्य-समयका एक लेख मिला है[२]। यह भी इसके राज्यके १८ वें वर्षका ही है। इसकी तिथि वर्षाऋतुकी चौथे पक्षकी प्रतिपदा है। इसमें मामालके भिक्षुओंको दिये हुए करजक गाँवके दानका वर्णन है। इस आज्ञाकी तामील शिवस्कन्दगुप्तने की थी। इस लेखमेंका करजक गाँव और ऋषभदत्तके इसी स्थानसे मिले लेख[३]का करजिक गाँव एक ही होगा। यह गाँव पहले ही ऋषभदत्तने उक्त स्थानके साधुओंको दे रक्खा था।

उपर्युक्त दोनों लेखोंको देखनेसे प्रकट होता है कि नहपानके समय उसके जामाता ऋषभदत्त द्वारा दिये गये उन दोनों गाँवोंको नहपानके विजेता आन्ध्र गौतमीपुत्र शातकर्णिने भी अपनी तरफ़से अनुमति देकर कायम रख दिया था।

(१-२-३) एपिग्राफ़िआ इण्डिका, जिल्द ८, पृ० ७१, जिल्द ७, पृ० ६४ और ५७।

यद्यपि इस पिछले लेखमेंसे राजाका नाम गायब है और १८ का '८' भी स्पष्ट नहीं है, तथापि ऋषभदत्तके दिये हुए दानके ही दोहरानेसे स्पष्ट प्रकट होता है कि ये दोनों लेख, नहपानको जीतकर लौटते समय, जब कि वर्षाके कारण ससैन्य शातकर्णि बानवासीमें ठहरा होगा, लिखवाये होंगे।

पिछला लेख पहले लेखसे पूरे एक महीने बादका है और पहले लेखके शिवगुप्त और दूसरे लेखके शिवस्कन्द गुप्तका भी एक ही होना सम्भव है।

इस इतिहासके प्रथम भागमें लिखा जा चुका है[1] कि "नहपानके समयके लेख शक-संवत् ४१ से ४६ (ई० स० ११९ से १२४= वि० सं० १७६ से १८१) तकके ही मिले हैं। अनुमानसे पता चलता है कि संवत् ४६ के बाद उसका राज्य थोड़े समय तक ही रहा होगा; क्योंकि उस समयके करीब ही आन्ध्र-वंशी राजा गौतमी-पुत्र शातकर्णिने उसको हराकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया था और उसके सिक्कों पर अपनी मुहरें लगवा दी थीं।"

यदि उपर्युक्त अनुमान ठीक हो तो कहना पड़ेगा कि इसने ई० स० १२४ (वि० सं० १८१) के करीब नहपानको जीत लौटते समय मार्गमें उक्त लेख लिखवाये थे; जिनसे उस समय शातकर्णिके राज्यका १८ वाँ वर्ष होना सिद्ध होता है। अतः इसका राज्यारोहण-काल ई० स० १०६ (वि० सं० १६३) के निकट होना चाहिये।

इस गौतमीपुत्र शातकर्णिके (नासिकसे मिले) पहले लेखके नीचे

(१) भारतके प्राचीन राजवंश, प्रथम भाग, पृ० १२।

ही एक लेख[1] और भी खुदा हुआ है। उसमें इस शातकर्णिकी माता गौतमी बालश्री द्वारा दिये गये दानका वर्णन है। यह दान शातकर्णिके राज्यके २४ वें वर्षमें दिया गया था। इस दानकी तिथि ग्रीष्म ऋतुके द्वितीय पक्षकी दशमी है और उसी वर्षकी वर्षाऋतुके चौथे पक्षकी पँचमीको इसकी तामील की गई थी।

यद्यपि मत्स्य और वायुपुराणमें इस गौतमीपुत्र शातकर्णिका केवल २१ वर्ष राज्य करना ही लिखा है, तथापि इसकी माता गौतमी बालश्रीके उपर्युक्त लेखसे इसका खण्डन हो जाता है। इस शातकर्णिकी स्त्रीका नाम वासिष्ठी और पुत्रका नाम पुलुमावी था।

पुलुमाविके राज्यके १९ वें वर्षका उसकी दादी गौतमी बालश्रीका एक लेख[2] और मिला है। उसमें शातकर्णिके नामके साथ निम्नलिखित विशेषण लगे हैं:—"**राज रञो गोतमीपुतस हिमवत-मेरुमदरपवतसमसारस असिक असक मुळक सुरठ कुकुर आपरंत अनुप विदभ आकरावति राजस विझछवत पारिचात सह्य कन्हगिरि मचसिरिटन मलय महिद सेटगिरि चकोर पवत पतिस ....खतिय दपमान मदनस सकयवन-पल्हवनिसूदनस......खखरातवसनिरवससेकरस सातवाहनकुलयसपतिथापनकरस।**"

इससे प्रकट होता है कि गौतमीपुत्र शातकर्णिके राज्यमें गुजरात, मालवेका कुछ भाग, मध्यभारत, बरार, उत्तरी कोंकन और नासिकसे उत्तरका देश (बंबई हातेका कुछ भाग) था।

पहले करीब करीब ये देश नहपानके अधिकारमें थे और अन्तमें रुद्रदामा प्रथमने शक संवत् ७२ (ई० स० १५०=वि० सं० २०७)

(१-२) एपिग्राफ़िया इण्डिका जिल्द ८, पृ० ७३ और ६०।

के करीब एक बार फिर इन पर अधिकार कर लिया था। परन्तु नासिक और पूनाके आसपासका देश उस समय भी आन्ध्रोंके ही अधिकारमें रहा था।

उपर्युक्त लेखमेंके पर्वतोंके नामोंसे इसका दक्षिणापथका स्वामी होना पाया जाता है। इसके समयमें आन्ध्रराज्य पूर्ण उन्नति पर था।

इसने क्षत्रियों (राजपूताना, गुजरात और मध्यभारतके नरपतियों) का मानमर्दन किया था, शक (सीदियन), यवन (ग्रीक) और पल्हव (पर्शियन) लोगोंको मारा था, खखरात (क्षहरात) वंशका नाश किया था (नहपान भी इसी वंशका था) और सातवाहन—(शालिवाहन) वंशकी यशःपताका फहराई थी। इससे शायद यही तात्पर्य होगा कि इसने गये हुए आन्ध्र (शातवाहन) वंशके राज्यको क्षत्रपोंसे पीछा छीन लिया।

इसने अपनी नहपान परकी विजयके उपलक्षमें उसके सिक्कों पर ही अपनी मुहरें लगवा दी थीं।

ऐसे सिक्कों पर एक तरफ़ राजाके मस्तक और ग्रीक अक्षरोंके लेखके तथा दूसरी तरफ़ अधोमुख बाण, वज्र और ब्राह्मी व खरोष्ठीके लेखोंके[1] सिवाय एक तरफ़ उज्जैनका चिह्न और दूसरी तरफ़ ब्राह्मीमें "राञो गोतमीपुतस सिरिसातकणिस" लेख और चैत्य बना होता है[2]। ये सिक्के नासिकके आसपाससे मिले हैं; जो चाँदीके हैं। इन पर तीर और वज्रके चिह्न स्पष्ट तौरसे दिखाई नहीं देते।

---

(१) भारतके प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ० ९।

(२) कैटलॉग ऑफ़ आन्ध्र एण्ड क्षत्रप कौइन्स, पृ० ६८–७०।

इसके कुछ मिश्रधातुके सिक्के भी पश्चिमी भारतसे मिले[1] हैं। ये शायद नहपान परकी विजयके पूर्वके हैं। इन पर एक तरफ़ सूँड़ उठाये हुए हाथी, उज्जैनका चिह्न और ब्राह्मी लिपिमें लेखांश खुदा होता है और दूसरी तरफ़ कटहरेमें खड़ा वृक्ष बना होता है जिसके पत्ते दूरदूर और कलियोंकेसे होते हैं। किसी किसीमें बीचमें बिन्दु भी लगे रहते हैं। इनमें अबतक केवल '**रञ सरस**' ही पढ़ा गया है।

२४ वासिष्ठीपुत्र श्रीपुलुमावी।

यह गौतमीपुत्र शातकर्णिका लड़का था और उसके बाद ई० स० १३० (वि० सं० १८७) के करीब उसका उत्तराधिकारी हुआ।

महाक्षत्रप रुद्रदामा प्रथमके इतिहासमें जूनागढ़से मिले उसके लेखके आधार पर लिखा जा चुका है कि, "रुद्रदामाने दक्षिणके राजा शातकर्णिको दो बार परास्त किया। परन्तु उसे निकटका सम्बन्धी समझकर जानसे नहीं मारा। शायद यह राजा (वासिष्ठीपुत्र) पुलुमावी द्वितीय होगा, जिसका विवाह इसी रुद्रदामाकी कन्यासे हुआ था[3]।"

कन्हेरीसे एक लेख[2] मिला है। यह कदम्बवंशी राजा वासिष्ठीपुत्र श्रीशातकर्णिकी रानीका है। यह महाक्षत्रप रुद्रकी कन्या थी। इससे भी उपर्युक्त बातकी ही पुष्टि होती है; क्यों कि सम्भवत: इसमेंका महाक्षत्रप रुद्र, रुद्रदामा प्रथम ही होगा और (वासिष्ठीपुत्र) पुलुमावीकी ही दूसरी उपाधि (वासिष्ठिपुत्र) शातकर्णि हो तो आश्चर्य नहीं।

लेखोंमें इसके नाम 'वासिठीपुत्र स्वामी पुलुमावी' 'पुलुमायी' और 'पुलुमाइ' मिलते हैं।

---

(१) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स ऑफ़ क्षत्रप एण्ड आन्ध्र डाइनैस्टी, पृ० १७।

(२) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ८, पृ० ३६।

(३) भारतके प्राचीन राजवंश, प्रथम भाग, पृ० १७।

(४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द १२, पृ० २७३।

इसके समयके ८ लेख मिले हैं। इनमेंसे एक अमरावतीसे मिला है[1]। चार नासिकसे मिले हैं। ये क्रमशः इसके राज्यके दूसेरे, छैठे, उन्नीसवें[4] और बाईसवें[5] वर्षके हैं। १८ वें वर्षवाला लेख इसकी दादी गौतमी बालश्रीका है। इसका वर्णन गौतमीपुत्र शातकर्णिके इतिहासमें आ चुका है। इसमें इसके नामके आगे शातकर्णिके समान उपाधियाँ न लगी होकर केवल राजाका ही विशेषण लगा होनेसे अनुमान होता है कि इस समय (ई० स० १४९=वि० सं० २०६) के पूर्व ही रुद्रदामाने इसे हराकर फिरसे क्षत्रपवंशका प्रताप फैला दिया था। करीब करीब यही समय रुद्रदामाके श० स० ७२ (ई० स० १५०=वि० सं० २०७) के लेख[6]से भी मिलता है।

२२ वें वर्षका लेख बालश्रीके उपरिलिखित लेखके सम्बन्धमें ही खुदवाया गया था। इसमें उपर्युक्त लेख द्वारा दिये गये 'पिसाजिपदक' नामक गाँवके बदले 'सामलिपद' नामक गाँवके देनेकी आज्ञा है। इसमें 'पिसाजिपदक' नामके एवजमें 'सुदसण' नाम लिखा है। इससे प्रतीत होता है कि ये दोनों नाम उसी गाँवके थे जिसको गौतमी बालश्रीने बौद्ध भिक्षुओंको एक गुफाका दान करते समय उसके खर्चके निर्वाहके लिये दिया था। इसी लेखमें पुलुमावीको 'नवनरस्वामी' नवगरका मालिक लिखा है।

दो लेख कार्लेसे मिले हैं। ये क्रमशः इसके सातवें[7] और चौबीसवें वर्षके हैं। ७ वें वर्षके लेखमें ओखलकीय महारथी कोशिकीपुत्र

---

(१) आर्कियालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑफ़ सदर्न इण्डिया, जिल्द १, पृ० १००।

(२-३-४-५) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ८, पृ० ९४, ५९, ६०, ६५। (-६-७-८) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ८, पृ० ३६, जिल्द ७, पृष्ठ ६१ और ७१।

मित्रदेवके लड़के महारथी वासिष्ठीपुत्र सोमदेवके दानका वर्णन है और इसके २४ वें वर्षवाले लेखमें इसके राज्यवर्ष २१ का भी उल्लेख है।

एक लेख[1] कन्हेरीसे मिला है। यह वासिष्ठीपुत्र श्रीशातकर्णिकी रानीका है। इसका वर्णन पहले ही इसके इतिहासमें कर चुके हैं।

मत्स्यपुराणमें इसका राज्यकाल २८ वर्ष लिखा है।

टालेमी[2] (Ptolemy) ने इसकी राजधानीका नाम पैठन (प्रतिष्ठानपुर—गोदावरीके पास, निज़ाम राज्यमें) लिखा है। जैन लोग इसीको राजा शालिवाहन (शातवाहन) और उसके पुत्र शक्तिकुमारकी राजधानी मानते हैं। बहुत सम्भव है कि तबसे ही आन्ध्र राज्यमें उक्त नगरका महत्त्व बराबर चला आता हो।

ई० स० १३९ (वि० सं० १९६) में टालेमी ऐलैक्ज़ैण्ड्रियामें विद्यमान था और एन्टोनिनस (Antoninus Pius) की मृत्यु (ई० स० १६१) के बादतक भी जीवित था। अतः पुलुमावीके समकालीन होनेसे उसका लेख कम महत्त्वका नहीं हो सकता।

उसने रुद्रदामाके दादा चष्टनको भी पुलुमावीका समकालीन लिखा है। आगे चलकर उसीने लिखा है कि विलिवायकुरकी राजधानीका नाम 'हिप्पोकुर' था।

हम पहले वासिष्ठिपुत्र विलिवायकुर और गौतमीपुत्र विलिवायकुरका वर्णन कर चुके हैं। रापसन साहबका अनुमान है कि शायद 'विलिवायकुर' कोई उपाधि हो और पुलुमावीने भी उसे धारण किया हो। परन्तु अभी तक इसका कोई ख़ास प्रमाण नहीं मिला है।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द १२, पृ० २७३।

(२) कैटलॉग ऑफ़ दि क्षत्रप एण्ड आन्ध्र कौइन्स (इन्ट्रोडकशन) पृ० ३९-४०।

आन्ध्रदेश, मध्यभारत और कोरोमण्डलसे इसके सिक्के और अमरावती, नासिक, कार्ले व कन्हेरीसे इसके लेख मिले हैं। अतः यह स्पष्ट है कि इन्हीं प्रदेशोंपर इसका अधिकार था।

यद्यपि कन्हेरी (अपरान्त) देश भी बादमें आन्ध्रोंके अधिकारमें आगया था। तथापि पुळुमावीके समय उस पर रुद्रदामाका ही अधिकार था, यह बात रुद्रदामाके पूर्वोक्त लेखसे सिद्ध होती है। अतः सम्भव है कि कन्हेरीसे मिला हुआ इसकी रानीका लेख रुद्रदामाकी चढ़ाईके पूर्वका हो।

सिक्के।

इसके सीसेके सिक्कोंपर[1] एक तरफ़ तीन चश्मोंका चैत्य होता है; जिसके नीचे नदीका आकार बना रहता है और ब्राह्मी अक्षरोंमें 'रञो वासिठिपुतस सिरिपुळुमाविस' लिखा होता है। दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न बना होता है। इसका प्रत्येक वृत्त इकहरेके बजाय तिहरा होता है। दूसरी प्रकारके सिक्कोंपर[2] एक तरफ़ दो मस्तूलों सहित नाव और 'सिरिपुळुमाविस' लेख तथा दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न बना होता है।

इसके मिश्रित धातुके सिक्के[3] भी मिले हैं। इनपर एक तरफ़ ऊपरको सूँड़ उठाये हाथी और ब्राह्मी अक्षरोंमें 'सिरिपुळुमाविस' लेख होता है। दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न रहता है; जिसके प्रत्येक वृत्तमें बिन्दु लगा होता है और चैत्यके ऊपरकी तरफ़ चन्द्रमाका चिह्न बना रहता है।

एक प्रकारके सीसेके[4] सिक्के और भी मिले हैं। इन पर एक तरफ़ खड़े सिंहकी मूर्ति बनी होती है और दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न रहता है।

(१-२-३-४) कैटलॉग ऑफ आन्ध्र एण्ड क्षत्रप कौइन्स, पृ० २०,२२-२३,२१ और २४।

रापसन साहब इनको भी इसी राजाके मानते हैं। परन्तु इनपरके लेखके स्पष्ट न मिलनेसे इस बातका निश्चय नहीं किया जा सकता।

२५ शिवश्री शातकर्णि।

यद्यपि इसके समयका अब तक कोई लेख नहीं मिला है। तथापि इसके सिक्कोंकी बनावट और उन परके लेखोंको देखकर रापसन साहबका अनुमान है कि सम्भवतः यह वासिष्ठीपुत्र पुळुमाविका भाई होगा। मत्स्यपुराणमें इसे पुलोमाका उत्तराधिकारी लिखा है।

अमरावतीसे एक लेख[२] मिला है। इसमें 'श्रीशिवमकशात' नाम पढ़ा जाता है। रापसन साहबका अनुमान है कि शायद यह इसी राजाका हो[३]।

इसके सीसेके सिक्के[४] आन्ध्र देशसे मिले हैं। इन पर एक तरफ़ तीन चश्मोंका चैत्य, नदीका चिह्न और ब्राह्मी अक्षरोंमें '**रञो वासिठिपुतस सिवसिरि सातकंणिस**' लिखा रहता है। दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न होता है; जिसके वृत्त दुहरे होते हैं और उनमें एक एक बिन्दु लगा रहता है। इन सिक्कोंके उक्त स्थानपर मिलनेसे वहाँपर इसका अधिकार होना पाया जाता है।

२६ श्री चन्द्रशाति।

मत्स्यपुराणमें शिवश्रीके उत्तराधिकारीका नाम शिवस्कन्दशातकर्णि

(१-२) कैटलॉग ऑफ दि आन्ध्र एण्ड क्षत्रप कौइन्स, इन्ट्रो० पृ० ४०।
(२) आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑफ सदर्न इण्डिया, जिल्द १, पृ० ६१।
(३) कैटलॉग ऑफ दि आन्ध्र एण्ड क्षत्रप कौइन्स, (इन्ट्रोडकशन) पृ० ५२।
(४) कैटलॉग ऑफ दि आन्ध्र एण्ड क्षत्रप कौइन्स पृ० २९।

लिखा है। शायद यह इसीका उपनाम हो। रापसन साहब इसे भी पुलुमाविका भाई अनुमान करते हैं[1]। आन्ध्र देशसे इसके दो प्रकारके सीसेके सिक्के मिले हैं। पहले प्रकारके सिक्कोंपर[2] एक तरफ़ तीन चश्मोंका चैत्य, नदीका चिह्न और ब्राह्मी अक्षरोंमें 'रञो वासिठिपुतस सिरिचदसातिस' लिखा होता है और दूसरी तरफ़ शिव श्रीशातकर्णिके सिक्कोंकी तरहका उज्जैनका चिह्न बना रहता है। दूसरी प्रकारके सिक्कोंपर[3] एक तरफ़ वेदीके सामने खड़ा हुआ घोड़ा और 'रञो सिरिचदसातिस' लिखा होता है। दूसरी तरफ़ पूर्ववर्णित उज्जैनका चिह्न बना रहता है।

इसका राज्य भी आन्ध्र देशपर ही था।

वासिष्ठीपुत्र चतरप (फ) न शातकर्णि।

इसके राज्यके १३ वें वर्षका एक लेख[4] नानाघाटसे मिला है। भगवानलाल इन्द्रजी इसे पुलुमाविका उत्तराधिकारी और श्रीयज्ञ शातकर्णिका पिता अनुमान करते हैं। परन्तु इस विषयका पूरा प्रमाण न होनेसे इस पर विश्वास नहीं हो सकता[5]।

रापसन साहब इसे पुलुमाविका ही दूसरा नाम अनुमान करते हैं[6]। परन्तु जब तक विशेष प्रमाण न मिलें तब तक उक्त अनुमानोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

---

(१) कैटलॉग ऑफ दि आन्ध्र एण्ड क्षत्रप कौइन्स (इन्ट्रोडकशन) पृ० ४०, (२-३) कैटलॉग, ऑफ दि आन्ध्र एण्ड क्षत्रप कौइन्स, पृ० ३०-३१, ३२-३३।

(४) जर्नल बॉम्बे ब्रांच रौयल एशियाटिक सोसाइटी, जिल्द १५, पृ० ३१३।

(५) जर्नल रौयल एशियाटिक सोसाइटी, (१९०५) पृ० ७९८।

(६) कैटलॉग ऑफ दि आन्ध्र एण्ड क्षत्रप कोइन्स (इन्ट्रोडकशन) पृ० ४१।

२७ गौतमीपुत्र श्रीयज्ञशातकर्णि।

इसके समयके ४ लेख मिले हैं। इनमेंसे पहला[1] इसके ७ वें राज्य-वर्षका नासिकसे, दूसरा[2] १६ वें राज्यवर्षका कन्हेरीसे, तीसरा[3] २७ वें राज्यवर्षका चिनसे और चौथा[4] विना संवत्का पूर्वोक्त कन्हेरीसे मिला है। इनसे आन्ध्रदेश, नासिक और कन्हेरी (उत्तरी कोंकन) पर इसका अधिकार होना पाया जाता है।

मत्स्यपुराणमें इसका २९ वर्ष राज्य करना लिखा है।

इसके आन्ध्रदेशसे मिले सीसेके सिक्के कई प्रकारके हैं। पहली प्रकारके सिक्कोंपर[5] एक तरफ़ चैत्य, चन्द्रमा, कमल, शंख और नदीका चिह्न तथा 'रञो गोतमिपुतस सिरियज्ञसातकणिस' लेख रहता है और दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न (जिसके दुहरेवृत्तोंमें बिन्दु लगे होते हैं) और चन्द्रमा बना होता है।

दूसरी प्रकारके सिक्कोंपर[6] एक तरफ़ तीन चश्मोंका चैत्य, नदीका चिह्न और पूर्वोक्त लेख तथा दूसरी तरफ़ ऊपर लिखे समान उज्जैनका चिह्न होता है। किसी किसीमें तीन चश्मोंके स्थानमें छः चश्मोंका चैत्य और चन्द्रमा बना होता है। फिर किसी किसीमें स्वस्तिकका चिह्न भी रहता है।

तीसरी प्रकारके सिक्कोंपर[7] एक तरफ़ खड़ा घोड़ा, चन्द्रमा और

---

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ८, पृ० ९४।

(२) जर्नल बॉम्बे ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, जिल्द ६, प्लेट नंबर ४४। (३) एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द १, पृ० ९६।

(४) आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑफ़ वैस्टर्न इण्डिया, जिल्द ५, पृ० ७५।

(५-६-७) कैटलॉग ऑफ़ आन्ध्र एण्ड क्षत्रप कोइन्स, पृ० ३४, ३५-३७, ३८-४१।

'रञो गोतमिपुतस सिरियञसातकंणिस' लिखा रहता है। दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न बना होता है; जिसके प्रत्येक वृत्तमें एक एक बिन्दु लगा रहता है। चौथी प्रकारके सिक्कोंपर एक तरफ खड़ा हुआ हाथी और पूर्वोल्लिखित लेख होता है। दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न होता है; जिसके दुहरे वृत्तोंमें एक एक बिन्दु लगा रहता है।

मध्यभारतसे इसके कई तरहके मिश्रित धातुके सिक्के[2] भी मिले हैं। इन सिक्कोंपर एक तरफ़ सूँड़ उठाये हुए हाथी और 'सिरि यञसातकंणिस' लेख होता है। दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न (जिसके प्रत्येक वृत्तमें एक एक बिन्दु लगा होता है) और चन्द्रमा बना होता है। परन्तु किसी किसीपर केवल 'सिरिसातकणिस' और किसी किसीपर केवल 'सातकणिस' ही लिखा मिलता है।

सुराष्ट्रसे इस राजाके चाँदीके सिक्के[3] भी मिले हैं। इनपर एक तरफ़ राजाका मस्तक और ब्राह्मीमें 'रञो गोतमिपुतस सिरिसातकणिस' लिखा होता है। दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न, और छः चश्मोंका चैत्य (जिसके नीचे नदीका चिह्न बना होता है) रहता है। इस उज्जैनके चिह्न और चैत्य पर एक एक चन्द्रमा होता है और उनके बीचमें सूर्य रहता है। तथा दक्षिणके प्रचलित ब्राह्मी अक्षरोंमें '[...णष] गोतमिपुतष हिरु यञहाटकणिष' लिखा रहता है।

किसी दूसरे आन्ध्रवंशी राजाके ऐसे सिक्के अब तक नहीं मिले हैं।

इसके लेखों और सिक्कोंपर विचार करनेसे माद्धम होता है कि यह प्रतापी राजा था और इसने फिर एक बार दक्षिणके पूर्वी और पश्चिमी प्रदेशोंपर अपना अधिकार कर लिया था; जिनपर कि पहले इसके पूर्वज राज्य कर चुके थे।

(१-२-३) कैटलॉग ऑफ आन्ध्र एण्ड क्षत्रप कौइन्स, पृ० ४१, ४२-४४, ४५।

मि० स्मिथ इस यज्ञश्रीशातकर्णिका समय ई० स० १७३ (वि० सं० २३०) से ई० स० २०२ (वि० सं० २५९) तक (अथवा इससे ७ या ८ वर्ष पूर्व) अनुमान करते हैं।

श्रीरुद्रशातकर्णि।

मिश्रित धातुके कुछ सिक्के[2] ऐसे मिले हैं; जिनपर एकफ़ तर सूँड़ ऊपरको उठाये खड़ा हाथी और ब्राह्मीमें 'सिरि रुडसातकणिस' लिखा होता है। और दूसरी तरफ़ उज्जैनका चिह्न बना होता है; जिसके प्रत्येक वृत्तमें एक एक बिन्दु होता है।

इसी राजाके सीसेके सिक्के[3] भी मिले हैं। इनमेंसे एक प्रकारके सिक्कोंपर उपर्युक्त चिह्न ही बने होते हैं। परन्तु लेख 'सिरिरुदस' होता है।

श्रीकृष्णशातकर्णि।

दक्षिणी भारतसे मिश्रित धातुके कुछ सिक्के ऐसे भी मिले हैं; जो रुद्रशातकर्णिके मिश्रित धातुके सिक्कोंके समान ही हैं। परन्तु उनपर पूर्वोक्त लेखके स्थानमें 'सिरि कण्हसातकणिस' लिखा होता है।

२९ श्रीचन्द्र।

यह नाम पुराणोंमें अन्तिम राजा पुलुमाविके पहले लिखा है। इसके समयके कुछ सीसेके सिक्के[4] मिलनेसे इसका होना निर्विवाद सिद्ध होता है।

कन्हेरी, बानवासी और मालवल्लीसे मिले चुटुवंशके लेखोंको देखनेसे अनुमान होता है कि श्रीयज्ञशातकर्णिके बाद आन्ध्र राज्यके टुकड़े

---

(१) ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १२१।

(२-३) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स ऑफ़ आन्ध्र एण्ड क्षत्रप डाइनेस्टी, पृ० ४६, ४६-४७।

(४) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स, इण्डियन म्यूज़ियम, जिल्द १, पृ० २०९।

हो गये थे। दक्षिणके पूर्वी हिस्सेपर तो प्रधान शाखाका ही राज्य रहा परन्तु पश्चिमी भागपर चुटुवंशका अधिकार हो गया था। इनके लेखादिकोंपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि चुटुलोग इन्हींके सामन्त थे और ई० स० की तीसरी शताब्दीके प्रारम्भके आसपास जब यज्ञश्रीके देहान्तके बाद आन्ध्रोंका राज्य कमज़ोर पड़ गया तब उनके आधिपत्यको हटाकर स्वतंत्र हो गये।

हारितीपुत्र विष्णुकुड चुटु शातकर्णि।

कन्हेरीसे एक लेख[1] मिला है। यह नागमुलनिकाका है। यह महारथीकी स्त्री और महाभोजी और प्रतापी राजाकी कन्या थी। इसके पुत्रका नाम 'खांदनाग सातक' (स्कन्दनाग शातक) लिखा है।

यद्यपि इस लेखमें राजाका नाम नहीं है, तथापि बानवासीसे मिले लेखको देखनेसे प्रतीत होता है कि यह लेख उपर्युक्त राजाका ही है और नागमुलनिका भी इसी हारितीपुत्र विष्णुकुड चुटु शातकर्णिकी ही कन्या थी।

बानवासीका लेख[2] इसके १२ वें राज्य-वर्षका है। इसमें राजाका नाम 'विण्हु कुड चुटुकुलानंद' लिखा है। उक्त लेखमें (उपर्युक्त) प्रतापी राजाकी कन्याके दानका वर्णन है और साथ ही 'सिवखंद नागसिरि' (शिवस्कन्दनागश्री) का भी उल्लेख है। तथा इसमें 'महाभविअ' (महाभोजीय) आदि विशेषणोंके आनेसे अनुमान होता है कि कन्हेरीका लेख और यह लेख दोनों एकहीके हैं।

इसके राज्यवर्ष १ का एक लेख[3] मलवल्लि (माइसोर) से मिला है। इसमें राजाकी उपाधि 'वैजयन्तीपुरराजा' (बानवासीका राजा) लिखी है।

---

(१) आर्कियोलॉजिकल सर्वे वेस्टर्न इण्डिया, जिल्द ५, पृ० ८६।

(२-३) इण्डियन एण्टिक्वेरी, (१८८५), पृ० ३३१ और जिल्द २५, पृ० २८।

हारितीपुत्र शिवस्कन्दवर्मन्।

मलवल्लि (माइसोर) से एक लेख[1] किसी कदम्बवंशी राजाका मिला है। यह लेख विष्णु कुड चुटुकुलानन्द शातकर्णिके पहले वर्ष-वाले लेखके नीचे ही खुदा है। 'इसमें सिव [खन्द] वम्मणा हारिति-पुत्तेण वैजयन्तीपतिना' अर्थात् बानवासीके स्वामी हारितीपुत्र शिवस्क-न्दवर्मा द्वारा दिये गये एक गाँवके—'वैजयन्तीपुरधम्ममहाराजाधि-राजे—कदम्बानां राजा' अर्थात् बानवासीके कदम्बवंशी राजा द्वारा पुनर्दानका उल्लेख है।

इससे प्रकट होता है कि यह शिवस्कन्दगुप्त हारीतिपुत्र विष्णु कुड चुटुका नवासा था और इसके समय बानवासीपर कदम्बवंशियोंने अधिकार कर लिया था।

करवार (उत्तरी कनाड़ा) से कुछ सीसेके सिक्के[2] मिले हैं। इनपर एक तरफ़ भद्दासा चैत्य जिसका ऊपरका एक ही चश्मा नीचेके ३ या ४ चश्मोंके बराबर होता है और ब्राह्मी अक्षरोंमें 'रञो धुट (चुट) कलानंदस' लिखा होता है। दूसरी तरफ़ कटहरेमें खड़ा वृक्ष बना होता है।

उपर्युक्त बातोंपर विचार करनेसे प्रकट होता है कि ईसाकी तीसरी शताब्दीके पूर्वार्धमें चुटुओंका राज्य कदम्बोंने छीन लिया।

नासिकसे ईश्वरसेनके राज्यवर्ष ९ का एक लेख[3] मिला है। इसमें इसके पिताका नाम आभीर शिवदत्त और माताका नाम माढरी लिखा

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द २५, पृ० २८।

(२) कैटलॉग ऑफ़ दि आन्ध्र एण्ड क्षत्रप कौइन्स, पृ० ५९।

(३) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ८, पृ० ८८।

है। इससे विदित होता है कि उस समय आभीरोंने आन्ध्रोंका (महाराष्ट्रका) राज्य छीन लिया था।

जग्गय्यपेटसे एक लेख[1] इक्ष्वाकुवंशी श्रीवीर पुरुषदत्तका मिला है। यह उसके २० वें राज्य-वर्षका है। इससे प्रकट होता है कि पह्लवोंके वेंगीपर अधिकार करनेके पूर्व आन्ध्रदेशपर इन इक्ष्वाकुवंशी राजपूतोंका अधिकार हो गया था।

पुराणोंकी भिन्न भिन्न प्रतियोंसे ४५६ या ४६० वर्षतक आन्ध्रवंशियोंका राज्य होना पाया जाता है; जो सूचीमें दिये हुए ३० राजाओंके लिये ठीक ही प्रतीत होता है।

विन्सैण्ट स्मिथके मतानुसार इनका समय अशोककी मृत्यु (ई० सं० से २३२=वि० सं० से १७५ वर्ष पूर्व) से ई० स० २२५ (वि० सं० २८२) के करीब तक था[2]। इसी अनुमानके आधारपर वे लिखते हैं कि सुशर्माको इस वंशके ११ वें, १२ वें और १३ वें राजाओंमेंसे किसीने मारा था। यह बात सुशर्माके इतिहासमें लिखी जा चुकी है।

इस इतिहासको समाप्त करनेके पहले यह बात लिखनी आवश्यक है कि यद्यपि पुराणोंके अनुसार मगधके कण्ववंशी राजाको मारकर आन्ध्रोंने अपने राज्यकी प्रधानता कायम की थी, तथापि पाटलिपुत्रके इनके अधिकारमें होनेके प्रमाण अब तक नहीं मिले हैं[3]।

---

(१) आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ सदर्न इण्डिया, जि० १, पृ० ११०।
(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ् इण्डिया, पृ० २०५ और २१२।
(३) अर्ली हिस्ट्री ऑफ् इण्डिया, पृ० २०५।

यद्यपि पुराणोंमें आन्ध्रोंके बाद अनेक वंशोंके नाम दिये हैं तथापि अब तक उनका कुछ भी इतिहास प्राप्त नहीं हुआ है।

विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि शायद कुशान राजा वासुदेवकी मृत्यु और ईरानके (Persian) ससेनियन वंशके उदयके साथ ही आन्ध्रवंशका पतन हुआ होगा। परन्तु इस विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

भारतवर्षके ग्रीक राजा।

ई० स० से २०६ (वि० सं० से १४९) वर्ष पूर्वसे ई० स० ४८ (वि० सं० १०५) के निकट तक।

ऐलैक्ज़ैण्डरकी मृत्युके बाद अन्तमें उसके राज्यके तीन भाग किये गये—मकदूनिया, मिस्र और सीरिया। इनमेंका अन्तिम प्रदेश सिल्यूकसके हिस्सेमें आया। इसीमें एशियाका राज्य भी शामिल था।

ऐलैक्ज़ैण्डरकी मृत्युके बाद, ई० स० से ३०५ (वि० सं० से २४८) वर्ष पूर्व सिल्यूकसने उस (ऐलैक्ज़ैण्डर) के जीते हुए भारतीय प्रदेश (पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त) को एक बार फिर जीत लेनेकी इच्छासे उस पर चढ़ाई की। परन्तु प्रसिद्ध मौर्य-वंशी राजा चन्द्रगुप्तके सामने इसे हार माननी पड़ी। और उससे पीछा छुड़वानेके लिये सिन्धुके पश्चिमका बहुत बड़ा प्रदेश (काबुल, कन्दहार और हिरात) उसे दे इसने अपनी कन्याका विवाह भी उसीके साथ कर दिया।

ई० स० से २६१ (वि० सं० से २०४) वर्ष पूर्व सिल्यूकसकी मृत्युके बाद उसका पुत्र एण्टिओकस उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसकी अयोग्यताके कारण बलख़ (बैक्ट्रिया) और पार्थियावालोंने मौका पाकर ई० स० से २५० (वि० सं० से १९३) वर्ष पूर्वके निकट स्वाधीनताके लिये बग़ावत कर दी। बलख़वालोंका अगुआ वहाँका शासक डायोडोटस और पार्थियावालोंका उनका राजा अर्सकेस बना। इसीने पार्थियामें पर्शियन राज्यकी स्थापना की थी। यह राज्य इसके वंशमें करीब ५०० वर्ष तक रहा था।

बलख़वालोंके अगुआ ग्रीकवंशी डायोडोटस प्रथमकी मृत्युके बाद ई० स० से २४५ (वि० सं० से १८८) वर्ष पूर्व उसका पुत्र डायोडोटस द्वितीय वहाँका उत्तराधिकारी हुआ। इसके बाद ई० स० से २३० (वि० सं० से १७३) वर्ष पूर्व यूथेडिमस बलख़के सिंहासन पर बैठा। इसीके समय ई० स० से २०८ (वि० सं० से १५१) वर्ष पूर्व सीरियाके राजा एण्टिओकस महान्‌ने इसे बलख़का स्वाधीन शासक मानकर इस गृह-कलहकी शान्ति की और इस प्रकार इस झगड़ेसे छुट्टी पाकर दो वर्ष बाद अफ़गानिस्तानके मार्गसे काबुल पर आक्रमण किया, तथा वहाँके राजा सुभगसेनसे बहुतसा द्रव्य और हाथी ले वह कन्दहार और सीस्तान होता हुआ लौट आया। इस प्रकार सिल्यूकसके आक्रमणके करीब १०० वर्ष बाद ग्रीक लोगोंको फिर भारतकी तरफ़ बढ़नेका मौका मिला, क्योंकि उस समय मौर्य-शासनका सूर्य अस्ताचलगामी हो चुका था और यहाँपर इनका सामना करनेवाला कोई नहीं था।

उपर्युक्त घटनाके १५–१६ वर्ष बाद, ई० स० से १९० (वि०

सं० से १३३) वर्ष पूर्व बलख़के शासक यूथेडिमसके पुत्र डिमिट्रि-यसने भारत पर आक्रमण किया। यह काबुल-विजेता सीरियाके राजा एण्टिओकस महान्‌का दामाद था। इसने अपने श्वसुरसे भी आगे बढ़कर काबुल, पंजाब और सिन्ध पर अधिकार कर लिया।

परन्तु इसे उधर उत्तरी भारतमें उलझा हुआ देख इधर ई० स० से १७५ (वि० सं० से ११८) वर्ष पूर्व मौका पाकर यूक्रेटिडसने बलख़ पर अपना दख़ल जमा लिया और इसके १५—२० वर्ष बाद ही इसने डिमेट्रियसके भारतीय राज्य पर भी चढ़ाई कर दी। इससे वहाँका भी बहुतसा भाग इसके अधिकारमें आ गया। इस आक्रमण-में उस (यूक्रेटिडस) का पुत्र एपोलोडाटस भी इसके साथ था और विजय प्राप्त कर लौटते हुए उस (एपोलोडोटस) ने अपने विजयी पिताको मार्गमें ही मार डाला[1]।

इसके बाद हेलिओक्लेस बलख़का शासक हुआ, जो अन्तमें शकोंके बलख़ परके आक्रमणमें ई० स० पूर्व १४० और ई० स० पूर्व १३० के बीच मारा गया। यही भारतके उत्तरी प्रदेशोंपर राज्य करनेवाले बलख़के ग्रीक शासकोंमें अन्तिम था। यद्यपि बलख़में ग्रीक शासनका अन्त हो गया था, तथापि भारतसे मिले हुए भिन्न भिन्न ग्रीक राजाओंके सिक्कोंसे सिद्ध होता है कि उसके बाद भी यहाँ पर ग्रीक (यवन) लोग बहुत समय तक शासक रहे थे। ये लोग अधिक-तर शायद भारत पर आक्रमण करनेवाले ग्रीक राजा यूक्रेटिडस और यूथेडिमसके वंशज थे और इन दोनों घरानोंमें शत्रुता होनेके कारण ये लोग भी एक दूसरेसे लड़ते रहते थे। परन्तु इनका शृंखलाबद्ध

(१) मि० रौलिनसनने हेलिओक्लेस द्वारा यूक्रेटिडसका मारा जाना लिखा है।

इतिहास नहीं मिलता है। भारतसे मिले इनके सिक्कोंसे ४० के करीब ग्रीक राजाओंके नाम मिलते हैं। इनमेंसे यूथेडिमसके वंशज ई० स० से १०० (वि० स० से ४३) वर्ष पूर्व तक और यूक्रेटिडसके वंशज ई० स० ४८ (वि० स० १०५) के करीब तक राज्य करते रहे और इस समयके करीब उनके अन्तिम राजा हर्मियसको कुजुलकर कडफिसस (प्रथम) ने हराकर काबुल पर अधिकार कर लिया। इन दोनों वंशोंके अलावा कुछ इधर उधरके ग्रीक लोग भी अवसर पाकर छोटे छोटे प्रदेशोंके शासक बन बैठे थे।

इनके सिक्कोंको देखनेसे एपोलोडोटस (द्वितीय), स्ट्रेटो प्रथम और स्ट्रेटो द्वितीय यूथीडेमसके वंशके प्रतीत होते हैं।

कुछ सिक्के ऐसे भी मिले हैं जो एपोलोडोटसने बनवाये थे, परन्तु उनपर यूक्रेटिडसने अपनी मुहरें लगवा दी थीं। इससे पता चलता है कि यद्यपि काबुल और कंदहार पहले यूथेडिमसके वंशजोंके अधिकारमें था, तथापि बादमें यूक्रेटिडसवाली शाखाके अधिकारमें चला गया[1]। परन्तु इस विषयमें भी मतभेद है[2]। मि० विन्सैण्ट स्मिथ मिनैण्डरको यूक्रेटिडसकी शाखाका अनुमान करते हैं[3]। परन्तु इस विषयमें अभी निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इनके समय और क्रममें भी अभी बहुत कुछ अनुसन्धानकी आवश्यकता है।

---

(१) रापसनकी एनशियैण्ट इण्डिया, पृ० १३३।

(२) मि० रौलिनसनका अनुमान इससे बिलकुल उलटा है (इण्डिया एण्ड दि वैस्टर्न वर्ल्ड, पृ० ७७)। (३) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २२५।

आगे अकारादि क्रमसे ग्रीक राजाओंके नाम और उनके सिक्कों परके खरोष्ठीके लेखोंका अक्षरान्तर दिया जाता है:—

ग्रीक राजा और उनके सिक्कों परके लेख।

राजाओंके नाम	सिक्कोंपरके खरोष्ठी लेखोंका अक्षरान्तर	विशेष वक्तव्य
आर्केबिअस	'माहारजस ध्रमिकस जयधरस अर्खेबियस'	
आर्टेमिडोरस	'माहारजस अपदिहतस अर्तेमिदोरस'	
इपैण्डर	'माहरजस जयधरस एपद्रास' (किसी किसीमें 'महरजस' और 'एपद्रस' पाठ भी होते हैं)	
ऐग्थोक्लिअस	'राजिने अकथुक्रेयस' या एक तरफ़ 'अकथुक्रेयस' और दूसरी तरफ़ 'हिदुजसमे' लिखा रहता है।	
ऐग्थोक्लिया		यह स्ट्रेटोकी माता और उसके बाल्यकालमें उसकी अभिभाविका थी।
ऐण्टिअल्किडस	'माहारजस जयधरस अंति अलिकिदस' किसीमें 'महरजस' पाठ भी होता है।	यह तक्षशिलाका शासक और यूक्रेटिडसका समकालीन था।
ऐण्टिमेकस १		यह काबुलके डायोडोटस द्वितीयका उत्तराधिकारी था।
ऐण्टिमेकस २	'माहारजस जयधरस अंतिमाखस' किसीमें 'माहरजस पाठ भी रहता है।	
ऐपोलोडोटस१	'माहारजस अपलदतस त्रदतस'	
ऐपोलोडोटस२	'महरजस त्रदतस अपलदतस'	
ऐपोलोफनस	'महरजस त्रदतस अपुलफनस'	
ऐमिण्टस	'माहारजस जयधरस अमितस'	

राजाओंके नाम	सिक्कों परके खरोष्ठी लेखोंका अक्षरान्तर	विशेष वक्तव्य
कैलिओपी	'महरजस त्रदतस हेरमयस कलियपय'	हर्मिअसकी रानी
ज़ोइलोस	'माहारजस ध्रमिकस झोईलस' या महरजस त्रदतस झोईलस' (किसीमें पहले लेखमें 'महरजस' पाठ भी होता है।)	
टेलिफस	'महरजस पलनक्रमस तेलिफस'	
डायोडोटस १		इसके सिक्के नहीं मिले हैं।
डायोडोटस २		
डायोनीसीयस	'महरजस त्रदतस दिअनिसियस'	
डायोमीडस	'महरजस त्रदतस दियमेदस' (किसीमें 'माहारजस' पाठ भी मिलता है।)	
डिमेट्रियस	'माहरजस अपरजितस डेमे...'	यूथेडिमस प्रथमका पुत्र था।
थिओफिलस	'महरजस ध्रमिकस थेउफिलस' (किसीमें 'माहारजस' पाठ भी होता है।)	
नीकियस	महरजस त्रदतस निकिअस' (किसीमें 'माहारजस' या 'महरयस' पाठ भी रहता है।)	
पियुकेलाओस		
पैण्टलिओन	'राजिने पंतलेवस'	
पौलिक्सेनस		एण्टिमेकस द्वितीयका उत्तराधिकारी।
लैटो		यह यूक्रेटिडसका समकालीन और सीस्तानका शासक था।
फिलौक्सिनस	'माहारजस अपदिहतस फिलसिनस' (किसीमें 'फिलुसिनस' पाठ भी मिलता है।)	

राजाओंके नाम	सिक्कों परके खरोष्ठी लेखोंका अक्षरान्तर	विशेष वक्तव्य
मिनैण्डर	माहारजस त्रादतस मेनद्रास ' '(किसीमें ' माहरजस ' और ' त्रदतस ' पाठ भी मिलते हैं) 'माहारजस ध्रमिकस मेनद्रास'	
यूकेटिडस	'माहारजस इवुकातिदस' (किसीकिसीमें 'इउकातिदस' और ' माहरजस' पाठ भी होते हैं ।) 'महरजस महतकस इवुकातिदस' 'माहारजस रजदिरजस इवुकतिदस'	यह पार्थियाके राजा मिथ्रडेटस प्रथमका समकालीन रहा था।
यूथीडिमस १		
यूथीडिमस २		
लीसियस	'माहारजस अपदिहातस लिसिकस' (किसीमें 'लिसिअस' पाठ भी रहता है।)	
लेओडिकी		यह यूकेटिडसकी माता थी।
स्ट्रैटो १	'माहारजस प्रतिछस त्रदतस स्रतस, ' 'माहारजस त्रदतम स्रतस ' या ' माहारजस त्रदतस ध्रमिकस स्रतस'	यह हेलियोक्लेसका समकालीन और काबुल और पंजाबका अधिकारी था।
स्ट्रैटो २	'महरजस त्रदतस ध्रमिकस स्रतस' 'महरजस रजरजस स्रतस पुत्रस चसंप्रियपितस्रतस'	यह स्ट्रैटो प्रथमका पौत्र था और सत्रपोंने इससे तक्षशिलाका राज्य छीन लिया था।
हर्मियस	'माहारजस त्रदतस हेरमयस' (किसीमें 'महरजस' पाठ भी होता है।) 'महरजस महतस हेरमयस' 'महरजस रजरजस महतस हेरमयस'	यह काबुलका अन्तिम ग्रीक राजा था और इसका राज्य कुजुलकडफिससने छीन लिया था।

राजाओंके नाम	सिक्कों परके खरोष्ठी लेखोंका अक्षरान्तर	विशेष वक्तव्य
हिप्पोस्ट्रेटस	'महरजस त्रदतस हिपस्त्रतस,' 'महरजस त्रदतस महातस जयंतस हिपस्त्रतस,' 'महरजस त्रदतस जयंतस हिपस्त्रतस,'	
हेलिओक्लेस	'माहारजस ध्रमिकस हेलियक्रेयस'	यह बलखका अन्तिम ग्रीक राजा था और शकोंके हमलेमें मारा गया।
हेलिओक्लेस	'करिशिये नगरदेवत'	

उपर्युक्त राजाओंमें मिनेण्डर बड़ा प्रसिद्ध राजा हुआ है। ई० स० पूर्व १६० (वि० सं० पूर्व १०३) से ई० स० पूर्व १४० (वि० सं० पूर्व ८३) तक यह काबुलका शासक था और ई० स० से १५५ (वि० सं० से ९८) वर्ष पूर्वके निकट इसने भारतपर चढ़ाई की थी[1]। मि० स्मिथने इस घटनाका समय ई० स० से १७५ (वि० सं० से ११८) वर्ष पूर्व माना है।

स्ट्रेबोने लिखा है कि इसने पटल (सिन्धमें), सुराष्ट्र और सगरडिस (सागरद्वीप[2]) तक अधिकार कर लिया था।

इसके सिक्कोंके भड़ोच तक चलनेका[3] और इसकी सेनाका राजपूताने तक पहुंचनेका पता चलता है।

'मलिन्दपन्हो' (मलिन्द-प्रश्न) नामक पालीभाषाकी एक पुस्तक है। उसमें मलिन्द (मिनेण्डर) और श्रमण नागसेनका निर्वाण स-

(१) गार्डनर साहब इसका समय ई० स० से ११० (वि० स० से ५३) वर्ष पूर्व मानते हैं।

(२) कच्छसे तात्पर्य होगा।

(३) इसके सिक्के जमनाके दक्षिणी प्रदेशसे भी मिले हैं।

म्बन्धी संवाद है। इससे ज्ञात होता है कि उक्त श्रमणके उपदेशसे यह (मिनैण्डर) बौद्ध मतानुयायी हो गया था। यह राजा वीर होनेके साथ ही शास्त्रज्ञ भी था। इस यवनका जन्मस्थान अळसंद (ऐलैक्-ज़ैण्ड्रिया) था। पंजाबमें इसने साकलनगरको अपनी राजधानी बनाया था। उस समय यह नगर समृद्धि पर था।

प्लुटार्कने इसे बड़ा न्यायी राजा लिखा है। यह इतना लोकप्रिय था कि इसकी मृत्युके बाद लोगोंने इसका भस्मावशेष आपसमें बाँट कर उस पर स्तूप बनवाये थे।

पतंजलिके महाभाष्यमें यवनों द्वारा साकेत (अयोध्या) और मध्यमिका (चितौड़से ६ मील—नगरी) के घेरे जानेका वर्णन है।

गार्गीसंहितामें साकेत (अयोध्या), मथुरा, पांचाल और पुष्पपुर (पाटलिपुत्र—पटना) पर यवनोंके आक्रमणकी सूचना है।

मालविकाग्निमित्र नामक कालिदासरचित नाटकमें शुङ्गवंशी पुष्यमित्रके अश्वमेध यज्ञके घोड़ेका सिन्धु[1]के दक्षिणी तट पर यवनों द्वारा रोका जाना और पुष्यमित्रके पौत्र वसुमित्रका उस (घोड़े) को यवनोंसे छुड़वाना सूचित किया गया है।

उपर्युक्त तीनों लेख सम्भवत: मिनैण्डरके आक्रमणके ही द्योतक होंगे। दो वर्ष भारतमें रह कर मिनैण्डरको वापिस काबुलको लौटना पड़ा; क्योंकि उधर उसे आक्रमणकारी लोगोंसे काबुलकी रक्षा करना आवश्यक हो गया था।

भिलसाके निकटके बेसनगर नामक स्थानसे एक स्तम्भ मिला है उसपर ब्राह्मी अक्षरोंमें निम्नलिखित लेख खुदा है:—

---

(१) राजपूतानेकी सिन्धु नदी।

देवदेवस वासुदेवस गरुडध्वजे अयं
कारिते इअ हेलिओदोरेण भाग-
वतेन दियसपुत्रेण तखसिलाकेन
योनदूतेन आगतेन महाराजस
अंतलिकितस उपंता सकासं रञो
कासिपुत्रस भागभद्रस त्रातारस
वसेन चतुदसेंन राजेन वधमानस

अर्थात्—तक्षशिलानिवासी दियके पुत्र वैष्णव हेलिओदोरने जो कि महाराज ऐण्टिआल्किडसका राजदूत बनकर काशिपुत्र भागभद्रके पास आया था, यह विष्णुका गरुड़ध्वज स्तम्भ बनवाया। इस समय ऐण्टिआल्किडसके राज्यका चौदहवाँ वर्ष था।

इससे पता चलता है कि उस समय तक्षशिला पर ऐण्टिआल्किडसका राज्य था। मि० स्मिथ इस लेखको इ० स० पूर्व १४० (वि० सं० पूर्व ८३) और ई० स० पूर्व १३० (वि० सं० पूर्व ७३) के बीचका अनुमान करते हैं। सम्भव है मिनैण्डरके पीछे ऐण्टिआल्किडस तक्षशिलाका राजा हुआ हो और उसीने बेसनगरके शासकके पास उक्त दूतको भेजा हो।

इसके पीछे ई० स० ४८ (वि० सं० १०५) के करीब ही कुशानवंशी कुजुलकर कड्फिससने काबुलके ग्रीक-राज्यकी समाप्ति कर दी। उस समय वहाँका राजा हर्मियस था। मि० स्मिथ इसको यूक्रेटिडसका वंशज अनुमान करते हैं।

उपर्युक्त घटनाओं पर विचार करनेसे अनुमान होता है कि शकों और पह्लवोंके आक्रमण प्रारम्भ हो जाने पर भी भारतके उत्तरी प्रदेशका

काबुल, सुवात, पेशावरके उत्तर और उत्तरपश्चिमका कुछ भाग तथा पूर्वीय पंजाब बहुत समय तक वहाँके स्थानीय ग्रीक राजाओंके अधिकारमें रहा था। उक्त स्थानोंसे इनके चाँदी, काँसे और निकल धातुके सिक्के मिलते हैं। काबुल पर तो इनके अधिकारका ईसवी सन् ४८ (वि० सं० १०५) के बाद तक होना सिद्ध होता है। कुजुलकर कड्फ़िससने जब हर्मिअसको हराकर उस (काबुल) पर अधिकार किया तब पहले पहल जो सिक्के उसने ढलवाये उन पर एक तरफ़ हार्मियसका मस्तक और ग्रीक अक्षरोंमें उसका नाम तथा दूसरी तरफ़ खरोष्ठीमें '**कुजुलकसस कुशनयवुगस ध्रमथिदस**' लिखवाया था। तक्षशिलाकी खुदाईमें मिले हुए सिक्कोंसे पता चलता है कि कड़फ़िसस प्रथमके काबुल पर अधिकार करनेके बहुत समय बाद तक भी हर्मियस उसके सामन्तकी हैसियतसे वहाँका शासन करता रहा था।[1]

कालका भी क्या ही माहात्म्य है कि जो यूनानी (ग्रीक) लोग अधिकारीके रूपमें हम पर शासन करनेको आये थे वे ही समयके प्रभावसे हमारे अनुयायी हो कर हमहीमें मिल गये।

नासिक, जुन्नर, कार्ले आदिकी गुफाओंमें खुदे लेखोंसे प्रकट होता है कि इन यवनोंमेंसे बहुतोंने बौद्धमत ग्रहण कर लिया था। इसी सम्बन्धकी अनेक मूर्तियाँ भी मिली हैं। इनमें भारतीय लोगोंके साथ यूनानी लोग भी बुद्धकी पूजा करते हुए खोदे गये हैं।

हम पहले बेसनगरसे मिले हुए लेखका उल्लेख कर चुके हैं। इससे दो

---

(१) आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑफ़ इण्डिया, (१९१४–१५), पृ० २६।

बातें प्रकट होती हैं। एक तो ई० स० से १४० (वि० सं० से ८३) वर्ष पूर्व अर्थात् आजसे करीब २००० वर्षसे भी पहले वैष्णवमतका ख़ूब प्रचार था और दूसरा ग्रीक (यूनानी—यवन) लोग तक इसे ग्रहण करने लग गये थे।

अशोकके एक लेखमें यवन धर्मरक्षितका अपरान्त (कोंकण) में धर्मप्रचारार्थ भेजा जाना लिखा है। इसी तरह नासिककी गुफाके लेखमें यवन धर्मदेवके पुत्रका नाम इन्द्राग्निदत्त लिखा है।

इनसे प्रकट होता है कि यवन लोग भारतीय धर्मके साथ साथ ही भारतीय नाम भी धारण करने लगे थे।

मि० विन्सैण्ट स्मिथने लिखा[1] है:—

"The tendency certainly was for Indo-Greek princes and people to become Hinduized rather than for the Indian Rajas and their subjects to become Hellenized."

"बजाय इसके कि भारतके राजा और प्रजा हैलेनिक (ग्रीक—यवन) लोगोंका अनुकरण करें उस समय भारतमें आनेवाले ग्रीकों (यवनों) का, चाहे वे राजा हों या जनसाधारण, अवश्य ही हिन्दूपन ग्रहण करनेकी तरफ़ झुकाव रहता था।"

---

(१) ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १४२।

यवन और पह्लव राजाओं के सिक्कों परके खरोष्ठी अक्षरों का नक्शा।

नागरी अक्षर	खरोष्ठी अक्षर	नागरी अक्षर	खरोष्ठी अक्षर
अ		ञ	
इ		ट	
उ		ठ	
ए		ड	
ओ		ढ	
अं		त	
ई		थ	
ं		द	
क		ध	
ख		न	
ग		प	
घ		फ	
च		ब	
छ		भ	
ज		म	
झ		य	

पृष्ठ १९२ के आगे (क:

शक,
यवन, कुशान और पह्लव राजाओं के सिक्कों पर के खरोष्ठी अक्षरों का नक्शा।

नागरी अक्षर	खरोष्ठी अक्षर	नागरी अक्षर	खरोष्ठी अक्षर
र	𐨪	खु	𐨑𐨂
ल	𐨫	गु	𐨒𐨂 𐨒𐨂
व	𐨬	गो	𐨒𐨆
श	𐨭	गं	𐨒𐨎
ष	𐨮	जि	𐨗𐨁 𐨗𐨁
स	𐨯 𐨯 𐨯	जु	𐨗𐨂
ह	𐨱 𐨱	ज्ञ	𐨗𐨿𐨙
कि	𐨐𐨁	ओ	𐨀𐨆
कु	𐨐𐨂	अं	𐨀𐨎
के	𐨐𐨅	ठि	𐨛𐨁
क्र	𐨐𐨿𐨪	डु	𐨜𐨂
क्रि	𐨐𐨿𐨪𐨁	ढे	𐨝𐨅
क्रे	𐨐𐨿𐨪𐨅 𐨐𐨿𐨪𐨅	ति	𐨟𐨁 𐨟𐨁
क्ष	𐨐𐨿𐨮	ते	𐨟𐨅

पृष्ठ १९२ के आगे (ख)

भारतके शक और पह्लव राजा।

ई० स० से० १३८ (वि० सं० से ८१) वर्ष पूर्व से ई० स०
८० (वि० स० १३७) तक।

ग्रीक (यवन) वंशके इतिहासमें लिखा जा चुका है कि—सीरियाके राजा ऐण्टिओकसके समय मौक़ा पाकर बलख़ और पार्थिया वालोंने स्वाधीनता प्राप्तिके लिये बग़ावत कर दी थी। इनमें पार्थियावालोंका अगुआ वहाँका राजा अर्सकेस बना था। अन्तमें इसने स्वाधीनता प्राप्तकर वहाँपर पर्शियन राज्यकी स्थापना की। यह राज्य ई० स० २४८ (वि० सं० १९१) वर्ष पूर्वसे ई० स० २२६ (वि० सं० २८३) तक अर्थात् करीब ५०० वर्ष इसके वंशमें रहा था।

बलख़के राजा यूक्रेटिडसके समय पार्थियापर मिथ्रडटस प्रथम (ई० स० पूर्व १७१ से ई० स० पूर्व १३६ तक) का अधिकार था, तथा जिस समय यूक्रेटिडस अपने पुत्रके हाथसे मारा गया उस समय बलख़के शासनमें गड़बड़ पड़ गई थी। इसी अवसरपर उक्त मिथ्रडटस प्रथमने हमलाकर सिन्धुसे झेलम तकके प्रदेशको हथिया लिया था। यह घटना ई० स० से १३८ (वि० सं० से ८१) वर्ष पूर्वके निकट हुई थी।

इसके बाद मिथ्रडटस प्रथमके उत्तराधिकारी फ़राटस द्वितीयके समय पार्थियापर शक जातिके लोगोंका आक्रमण हुआ। इतिहासज्ञ लोग इस जातिका आदि निवासस्थान तिब्बतका उत्तरी प्रदेश मानते

हैं। जिस समय ई० स० से १६५ (वि० सं० से १०८) वर्ष पूर्वके करीब यूएहची नामक जंगली कौम मध्यएशियासे निकाली गई उस समय आगे बढ़ते हुए उसने मार्गमें पड़नेवाली इस शक जातिको आगेकी तरफ़ खदेड़ दियाँ। इन्हीं शकोंकी एक शाखा तो सीस्तानमें जा बसी और दूसरी शाखाने ई० स० पूर्व १४० और १२० के मध्य पश्चिमकी तरफ़ बढ़कर पार्थिया और बलख़के राज्योंपर आक्रमण किया। बलख़वालोंकी शक्ति तो भारतकी तरफ़के प्रदेशोंके झगड़ोंमें लगे रहनेके कारण क्षीण हो गई थी। इस लिये उनको शकोंकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। परन्तु पार्थियावालोंने लड़ भिड़कर अन्तमें उन्हें वहाँसे खदेड़ दिया। इस युद्धमें पार्थियाका राजा फ़राटस द्वितीय और उसका उत्तराधिकारी आर्टाबेनस मारा गया।

उपर्युक्त घटनाके कुछ समय बाद सीस्तानकी तरफ़से शकों और पार्थियावालोंने साथ ही भारतकी तरफ़ चढाई की और छोटे छोटे ग्रीक राजाओंके अधिकृत प्रदेशोंको हथियाना शुरू किया। इनके सिक्कोंके मिलनेके स्थानोंसे पता चलता है कि पह्लवों (पार्थिया वालों) की एक शाखाका राज्य सीस्तान और बलुचिस्तानमें तथा दूसरीका पश्चिमी पंजाबमें रहा था। इसी प्रकार शकोंके सिक्के मथुरासे मिलनेके कारण इनका वहाँपर अधिकार होना सिद्ध होता है। सम्भवतः ये लोग पार्थियावालोंके अधीन थे; क्यों कि उक्त समयके निकट ही वहाँके राजा मिथ्रडटस द्वितीयने अपनी बिखरी हुई शक्तिको एकत्र कर बलुचिस्तानसे पंजाब तकके प्रदेशपर अधिकार कर लिया था।

काबुलमें उस समय भी वहाँके स्थानीय ग्रीक राजाओंका राज्य था। ये शायद यूक्रेटिडसके वंशज होंगे। अन्तमें इनके अन्तिम राजाको

कुशानवंशी कुजुलकरकडफ़िससने हराकर वहाँपर इनके राज्यका अन्त कर दिया। इससे अनुमान होता है कि शक और पह्लव लोग सीस्तानसे कंदहार और बलुचिस्तान होते हुए सिन्ध तक आये थे और वहाँसे पंजाबकी तरफ़ फैल गये होंगे, जिससे काबुलपर ग्रीक लोगोंका शासन यथावत् बना रह गया था।

पंजाबमेंकी शाखाके सबसे पहले राजाका नाम मोअस मिलता है। इसके सिक्कोंपर एक तरफ़ तो ग्रीक राजाओंकी तरह ही ग्रीक अक्षरोंके लेख होते हैं और दूसरी तरफ़ खरोष्ठीके निम्नलिखित लेख मिलते हैं:—

१—'रजदिरजस महतस मोअस'

(किसीमें 'महतस' के स्थानमें 'महातस' पाठ रहता है।)

२—'महरजस मोअस'

इसके सिक्कोंपर 'रजदिरजस' (राजाधिराजस्य) लिखा होनेसे सम्भव है इसने थोड़ी बहुत स्वाधीनता प्राप्त कर ली हो।

स्मिथने इसका समय ई० स० से ९५ (वि० सं० से ३८) वर्ष पूर्व अनुमान किया है। तक्षशिलाके सत्रप (क्षत्रप—शासक) पाटिकका एक ताम्रपत्र मिला है। इससे प्रकट होता है कि महाराज मोगके समय तक्षशिलाके सत्रप पाटिकने, जो कि वहाँके क्षत्रप लिअककुसूलकका पुत्र था, संवत् ७८ में, बुद्धकी अस्थियोंकी स्थापना की थी और दान दिया था।

विद्वान् लोग मोगसे उपर्युक्त मोअसका ही तात्पर्य लेते हैं। परन्तु इसमेंके संवत्के विषयमें अभी कुछ निश्चित नहीं हुआ है।

उक्त लेखमें मोगका नाम आनेसे यह भी सिद्ध होता है कि उस

समय तक्षशिलाके सत्रप भी इसीके अधीन थे।

इस मोअसका उत्तराधिकारी एज़ेस हुआ। इसके सिक्कोंपर खरोष्ठीके निम्नलिखित लेख मिलते हैं:—

१—'महरजस रजरजस महातस अयस'

(किसीमें 'महातस' के स्थानमें 'महतस' पाठ भी मिलता है।)

२—'महरजस रजदिरजस महतस अयस'

३—'महरजस महतस ध्रमिकस रजदिरजस अयस'

ऐज़ासके पीछे उसका पुत्र ऐज़िलिस उत्तराधिकारी हुआ। इसके सिक्कोंपर निम्नलिखित खरोष्ठी लेख होते हैं:—

१—'महरजस रजदिरजस महतस अयलिशस'

२—'महरजस रजरजस महतस अयलिशस'

३—'महरजस महतस अयलिशस'

ऐज़िलिसके पीछे उसका उत्तराधिकारी ऐज़ेस द्वितीय हुआ। यह ऐज़िलिसका पुत्र था। सत्रप अस्पवर्मा और सत्रप ज़ेइओनिसेस पंजाबके शासनमें इसकी सहायता करते थे।

इस अस्पवर्माके सिक्कोंपर खरोष्ठीमें निम्नलिखित लेख मिलता है:—

'इन्द्रवर्मपुत्रस अस्पवर्मस स्त्रतेगस जयतस'

ऐज़ेस द्वितीयका उत्तराधिकारी गोण्डोफ़रस हुआ। इसने कंदहार, काबुल और तक्षशिला तक अपना अधिकार फैला कर इनको एक राज्यमें मिला दिया था।

इसका समय ई० स० २० से ४८ के बीच माना जाता है। इसके सिक्कोंपर निम्नलिखित लेख खरोष्ठी लिपिमें लिखे मिलते हैं:—

१—'महरजस रजदिरजस त्रदत देवव्रत गुदफरस'

२—' महरजस महतस गुदफरस '

३—' महरजस रजरजस त्रदतस देवव्रतस गुदफरस '

४—' महरजस रजरज महत देवव्रत गुदफरस '

५—' महरजस गुदफरस त्रदतस '

६—' .... धमिकस अप्रतिहतस देवव्रतस गुदफरस '

७—' महरजस महतस देवव्रतस गुदफरस '

तख़्तेबाहीसे एक लेख मिला है । डौसन साहबने इसका तात्पर्य इस प्रकार निकाला[1] है:—

' महाराज गोण्डोफ़रसके २६ वें राज्य-वर्ष संवत् १००[2] वैशाख मासकी तृतीया ' परन्तु अभी इसमेंके नाम और समयके विषयमें मत-भेद है । कहते हैं सेण्ट थॉमसने भारतमें आकर गोण्डोफ़रसको मय उसके अनुयायियोंके ईसाई मतमें दीक्षित किया था । ई० ४८ (वि० सं० १०५) के करीब गोण्डोफ़रसकी मृत्यु होनेपर इसके राज्यके दो टुकड़े हो गये । अर्थात् इसके मिलाये हुए पश्चिमी पंजाब और कंदहारके राज्य एक वार फिर अलग अलग हो गये । पश्चिमी पंजाब तो इसके भतीजे अब्दगससके अधिकारमें गया और कंदहार और सिन्ध औथैग्रस-को मिला, जिसका उत्तराधिकारी पकोरेस हुआ ।

आगे इन तीनोंके सिक्कोंपरके खरोष्ठी लेख क्रमशः दिये जाते हैं:—

अब्दगसस—

१—' त्रदतस महरजस अवदगशस '

२—' गदफर भ्रादपुत्रस महरजस त्रदतस अवदगशस '

(१) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१८७५) पृ० ३७९ ।

(२) मि० स्मिथ संवत् १०० के स्थानमें १०३ अनुमान करते हैं ।

औथेंग्नस-

'महरजस रजदिरजस महतस गुदफरसगब...'

पैकोरस-

'महरजस रजदिरजस महतस पकुरस'

पश्चिमी पंजाबके शासक अब्दगससके उत्तराधिकारीका कुछ पता नहीं लगा है। ईसवी सन्की पहली शताब्दीके मध्य (विक्रम संवत्की पहली शताब्दीके अन्त) में कुशन राजा विमकड्फ़िसस द्वितीयने पंजाब, सिन्ध और कंदहारपर कब्ज़ा कर लिया था। परन्तु फिर भी सिन्धुके मुहानेके आसपास इस वंशके छोटे छोटे राजा और भी कुछ समय तक बच रहे थे।

दूसरी शाखा।

जिस समय पह्लव (पार्थियन) लोगोंकी एक शाखाने पंजाब पर अपना अधिकार क़ायम किया था उसी समय इनकी दूसरी शाखाने कंदहार और सीस्तानमें अपना राज्य स्थापन कर लिया था। इस शाखाके राजाका सबसे पहला नाम वोनोनस मिलता है। यहाँका राज्य करीब २५ वर्ष तक इस वंशके अधिकारमें रहा था। इस वंशका अन्तिम राजा ऐज़ास वोनोनसके भाई स्पलिरिससका पुत्र था। यह शासन-कार्यमें पिताकी सहायता किया करता था।

जिस समय पार्थियाके राजा मिथ्रडटस द्वितीयने एक बार अपनी बिखरी हुई शक्तिको सम्हाल कर भारतीय प्रदेशोंपर फिर अधिकार कर लिया था उस समय उसने सीस्तान और कंदहारको अपने राज्यमें मिला लिया और वहाँके सत्रप ऐजैसको बदल कर तक्षशिलाकी तरफ़ भेज दिया था; जो ई० स० से ५८ (वि० सं० से १) वर्ष पूर्वके

करीब मोअसका उत्तराधिकारी हुआ। इसका इतिहास पहले लिखा जा चुका है।

एक लेखमें केवल कपिशाके सत्रपका उल्लेख है। यह गांधारकी राजधानी थी।

वोनोनसके अन्य राजाओंके साथके सिक्कोंका उल्लेख आगे किया जायगा।

शक-राजा।

जिस समय पंजाब और कंदहारपर पह्लव वंशियोंकी शाखाओंने अधिकार जमाया था उसी समय उन्हींके साथ शकोंकी एक शाखाने मथुरा पर कब्ज़ा कर लिया था। इनका भी तक्षशिलाके क्षत्रपोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध था। इनमेंके दो नाम मिलते हैं—राजबुल और षोडाष।

राजबुलके सिक्कों पर निम्नलिखित खरोष्ठी लेख होते हैं:—

१–'अप्रतिहतचक्रस छत्रपस रजबुलस'

२–'छत्रपस अप्रतिहतचक्रस रजबुलस'

(किसी किसीमें 'छत्रपस' के स्थानमें 'महाछत्रपस' और 'रजबुल' के स्थानमें 'रंजुबुल' पाठ भी मिलते हैं।)

मथुरासे एक स्तम्भका ऊपरका भाग मिला है। इसके दोनों तरफ़ सिंहोंकी आकृतियाँ बनी हुई हैं। इस पर जो खरोष्ठी लिपिके लेख खुदे हैं उनसे निम्नलिखित बातें मालूम होती हैं:—

महाक्षत्रप राजुलकी पटरानी 'नन्दसिअकसा' ने बुद्धकी अस्थियों पर एक स्तूप बनवाया था। इस रानीके पिताका नाम 'आयसिको-

(१) इसके सिक्के तक्षशिलाकी खुदाईमें भी मिले हैं।

मूसा ' और माताका ' अबूला ' तथा दादीका ' पिसपसि ' था। उक्त रानी (नन्दसिअकसा) ' हयुंअरा '[1] की बहन थी। इसी लेखमें राजुलके बड़े पुत्रका नाम ' खरओस्ट ' और कन्याका नाम ' हन ' लिखा है।

इस लेखके साथ दूसरे भी कई लेख खुदे हैं जिनमें कई नाम और भी मिलते हैं। उनमें एक नाम महाक्षत्रप राजुलके पुत्र षोडासका भी है। नीचे उपर्युक्त लेखका कुछ नमूना दिया जाता है:—

' महछत्रवस रजुलस
अग्रमहिषी अयसिअ—
कोमुसाधित्र
खरओस्तस युवरञ
मत्र नदसि अकस......'[2]

इसके आगे इन शक शासकोंका कुछ भी पता नहीं चलता[3]। शायद ई० स० से ५८ वर्ष पूर्वके करीब शकारि विक्रमादित्यने इनके राज्यकी समाप्ति कर इसी विजयकी यादगारमें अपना संवत् चलाया हो। परन्तु अभी निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

ईसवी सन्की पहली शताब्दीके मध्यभाग (विक्रम संवत्की पहली शताब्दीके अन्त) में शकोंकी एक दूसरी शाखाने आकर काठियावाड़की तरफ अपना राज्य स्थापन किया था। इनका खुलासा इतिहास ' भारतके प्राचीन राजवंश ' के प्रथम भागके आदिमें दिया जा चुका है। ई० स० ३९० (वि० सं० ४४७) के करीब गुप्त-वंशी चन्द्रगुप्त द्वितीयने इस शाखाके राज्यकी समाप्ति की थी।

इन शकोंकी पहली मथुरावाली शाखाकी समाप्ति विक्रमदित्य-

---

(१) यह हयुअरा अयसिकोमूसाका पुत्र था।

(२) ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ९, पृ० १४१।

(३) रौलिनसन आदि विद्वान् मथुराके क्षत्रपोंका भी तक्षशिलाके क्षत्रपोंके अधीन होना मानते हैं।
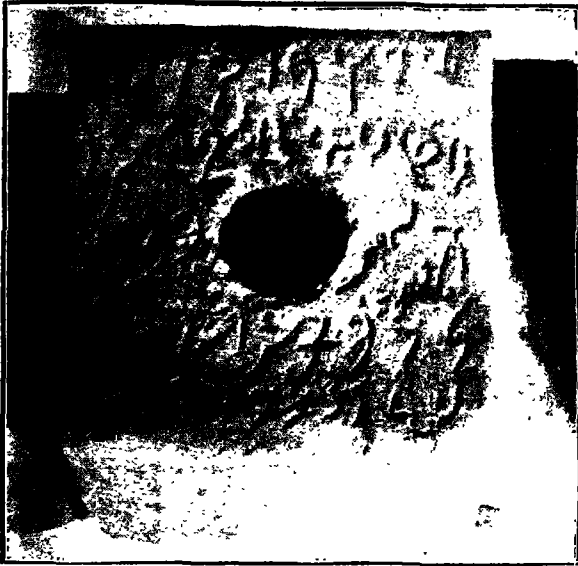
मथुरामें मिले हुए सिंहलद्वार स्तम्भके तल पर खुदा हुआ खरोष्ठी लिपिका लेख। [पृष्ठ २००.

नेकी थी। अतः इस दूसरी शाखाकी समाप्ति करनेके कारण ही चन्द्रगुप्त द्वितीयने शायद विक्रमादित्यकी उपाधि ग्रहण की होगी।

मोअसके सिक्के डिमट्रियसके सिक्कोंसे, लिअककुसूलकके यूक्रेटिडसके सिक्कोंसे, राजबुलके स्ट्रेटो प्रथम और द्वितीयके सिक्कोंसे मिलते हुए हैं। अतः सम्भव है कि इन्होंने उक्त ग्रीक राजाओंको हरा कर उनके प्रदेशों पर अधिकार किया होगा और उनके प्रचलित सिक्कोंसे मिलते हुए ही अपने भी सिक्के चलाये होंगे।

पह्लव और शक वंशियोंके सिक्के भी चाँदी, काँसी और ताँबेके ही मिलते हैं।

आगे और भी कुछ राजाओंके सिक्कों परके खरोष्ठीके लेख दिये जाते हैं। ये राजा भी ग्रीक (यवन), शक और पह्लवोंके वंशके थे।

राजाओंके नाम	सिक्कोंपरके खरोष्ठीके लेख
ऐजैस और ऐज़िलिस	' महरजस रजरजस महतस अयस ' ' महरजस रजरजस महतस अयिलिशस '
स्पलहोरस और वोनोनस	' माहारजस भ्रतध्रमिकस स्पलहोरस '
वोनोनस और स्पलहोरस	' स्पहोर भ्रत ध्रमिकस स्पलहोरस '
स्पलगेडेमस और वोनोनस	' स्पलहोरपुत्रास ध्रमिअस स्पलगदमस '
स्पलगेडेमस और स्पलिरिस	' स्पलहोरपुत्रास ध्रमिअस स्पलगदमस '
स्पलिरिसस (राजाका भाई)	' माहाराजभ्रहा ध्रमिअस स्पलिरिशस '
स्पलिरिसस (राजा)	' महरजस माहातकस स्पलिरिशस '
स्पलिरिसस और ऐज़ेस	' महरजस महातकस अयस '
ज़ीओनिसस	' (मनि) गुलस छत्रपस पुत्रस छत्रपस जिहुनिअस' (किसीमें ' जिहनिअस' पाठ भी मिलता है) ' (मनि) गुलपुत्रस छत्रपस जिहुनिसस '
आर्सेकस डिकाइयोस	' माहारजस रजरजस महतस अशशकस त्रदतस '
बेसिलिउस	' महरजस रजदिरजस महतस त्रदतस '

परन्तु अभी तक भारतीय शक और पह्लवोंका उपर्युक्त क्रम और इतिहास पूरे तौरसे निश्चित नहीं हुआ है।

सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर इनका क्रम इस प्रकार मानते हैं[1]:—

शकोंकी मुख्य शाखा।

१ वोनोनस, २ स्पलिरिसस, ३ एज़ेस, (प्रथम), ४ एज़िलिसस, ५ एज़ेस (द्वितीय), ६ मोअस।

(इनके सिवाय स्पलहोरस और उसके पुत्र स्पलगडेमसके नाम भी उनके सिक्कोंसे प्रकट होते हैं।

सर भाण्डारकरका यह भी अनुमान है कि उपर्युक्त ६ राजाओंमेंसे ही किसी एक प्रतापी राजाने शक संवत् प्रचलित किया था।

उत्तरी क्षत्रप।

ज़ीओनिसस, खरमोस्तिस, लिअक और पतिक। इनको कुसूलक भी कहते थे और इनका राज्य तक्षशिला (उत्तर–पश्चिमी पंजाब) में था।

राजुबुल और उसका पुत्र षोडास मथुराके अधिकारी थे। इसी प्रकार लेखों और सिक्कोंमें मियिक, हगान और हगामश नाम भी मिलते हैं।

भाण्डारकरके मतानुसार षोडासका समय श० सं० ७२ अर्थात् ईसवी सन् १५० (वि० स० २०७) में आता है। इससे अनुमान होता है कि मथुराके क्षत्रप इस समयके पूर्व ही स्वाधीन हो गये थे। परन्तु तक्षशिलावाले श० सं० ७८ अर्थात् ई० स० १५६ (वि० सं० २१३) तक भी शकोंकी मुख्य शाखाके ही अधीन थे।

(१) ए पीप इन्टु दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २४–२७ और ३७–३८।

(यह बात तक्षशिलाके पोटिकके ताम्रपत्रसे प्रकट होती है। इसमेंके संवत्को भाण्डारकर शक संवत् मानते हैं ।)

भारतके पह्लव राजा ।

उत्तरी भारतमें शकोंके बाद पह्लवोंने अपना अधिकार जमाया। सिक्कोंसे इनके नाम इस प्रकार जाने जाते हैं:—

१ गोण्डोफ़रस, २ अब्दगसस, ३ औथग्रेस, ४ अर्सकेस, ५ पकोरस, ६ सनबरस ।

गोण्डोफ़रसका जो संवत् १०३ का एक लेख तख़्तेबाहीसे मिला है उसको (भाण्डारकरके मतानुसार) शक संवत्का मान लेनेसे उसका समय ई० स० १८१ (वि० सं० २३८) में आता है। अत: उसके राज्यका प्रारम्भ ई० स० १५५ (वि० सं० २१२) में आवेगा। इसके सिक्कोंके सीस्तान, कंदहार और पश्चिमी पंजाबमें मिलनेसे अनुमान होता है कि इसने राज्यपर बैठते समय शकोंसे उनके पश्चिमी राज्यको छीन लिया था। परन्तु मोगसके लेखसे प्रकट होता है कि ई० स० १५६ (वि० सं० २१३) तक भी पूर्वके प्रदेश उन्हीं (शकों) के अधीन थे।

आगे शास्त्रोंसे यवनों और शकोंकी जातिके बारेमें कुछ प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं:—

मनुस्मृति (अध्याय १०)में लिखा है:—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणाऽदर्शनेन च ॥ ४३ ॥
पौण्ड्रका श्चौड्रा द्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः ।
पारदा पाह्लवाश्चीना किराताः दरदाः खशाः ॥ ४४ ॥

अर्थात्— यवन, शक, आदि क्षत्रिय जातिके लोग धर्मको छोड़ देनेके कारण शूद्र हो गये।

पतञ्जलिके महाभाष्यमें भी इनका उल्लेख '**शूद्राणामनिर्वसितानाम्**' इस सूत्रके (अष्टा० २।४।१०) भाष्यमें किया गया है:—

"**कुतोऽनिर्वसितानां। आर्यावर्तादनिर्वसितानाम्। यद्येवं, शकयवनमिति न सिद्ध्यति। एवं तर्हि पात्रादनिर्वसितानाम्।**"

इससे सिद्ध होता है कि उस समय भी शक और यवन[1] लोग विदेशी गिने जाते थे और यद्यपि इनकी गणना शूद्रोंमें होती थी, तथापि इनका भोजनका पात्र संस्कारसे शुद्ध मान लिया जाता था।

इसी पर टीका करते हुए कैयटने उपर्युक्त पंक्तियोंका यह भाव निकाला है:—

'**शूद्राणां पञ्चयज्ञानुष्ठानेऽधिकारोऽस्तीति भावः।**'

इससे विदित होता है कि उस समय शूद्रोंको भी पञ्चयज्ञ करनेका अधिकार था।

वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डके ५४ वें सर्गमें वसिष्ठके आश्रममें नन्दिनी गौद्वारा इन लोगोंकी उत्पत्तिका होना लिखा है:—

तस्या हुंभारवोत्सृष्टाः पह्लवाः शतशो नृप! ॥ १८ ॥
भूय एवासृजद्घोराञ्छकान्यवनमिश्रितान् ॥ २१ ॥

यवन शब्द पहले पहल ईसवी सन्से करीब २५० वर्ष पूर्वके

---

(१) बहुतसे लोग यवनोंसे ग्रीकोंका तात्पर्य न लेकर केवल ईरानियोंका ही अर्थ लेते हैं। परन्तु अशोकके लेखों आदिसे पता चलता है कि उस समय ग्रीक लोग भी यवन ही कहलाते थे।

अशोकके लेखोंमें और शक शब्द ईसासे करीब २०० वर्ष पूर्वके कात्यायनरचित 'शकन्ध्वादिषु च' वार्तिकमें आया है।

कुशान वंश।

ई० स० ४० (वि० सं० ९७) से ई० स० २२६
(वि० सं० २८३) तक।

राजतरङ्गिणी (प्रथमस्तरङ्ग)में इस वंशको तुरुष्क वंश लिखा है:—

ते तुरुष्कान्वयोद्भूता अपि पुण्याश्रया नृपाः।
शुष्कलेत्रादिदेशेषु मठचैत्यादि चक्रिरे॥ १७०॥

अर्थात्—(हुष्क, जुष्क और कनिष्क) ये तुरक वंशके होनेपर भी बड़े धर्मात्मा थे और इन्होंने शुष्कलेत्र (हुखलेत्रों) आदि स्थानोंमें अनेक मठ और चैत्य बनवाये थे।

परन्तु आधुनिक विद्वान् कुशान राजाओंको मध्यएशियाकी यूएहची नामक जातिके मानते हैं।

हम पहले शक और पह्लव वंशके इतिहासमें लिख चुके हैं कि ई० स० से १६५ (वि० सं० से १०८) वर्ष पूर्वके निकट यूएहची नामक जाति मध्यएशियासे निकाली गई थी। यह जाति बहुत समय

---

(१) इनको निकालनेवाले तुर्कोंके जंगली लोग थे। इनको चीनके लेखकोंने 'हिउंगनू' लिखा है।

तक इधर उधर घूमती और लड़ती झगड़ती रही। परन्तु अन्तमें पाँच शाखाओंमें विभक्त होकर बल्ख़के आसपास जा बसी। इनकी पाँच शाखाओंमें एक शाखा कुशान नामकी भी थी। इसी शाखाका एक सरदार कुज़ुलकरकड्फ़िसस (प्रथम) ई० स० ४० (वि० सं० ९७) के करीब समस्त यूएहची जातिका मुखिया बन बैठा तथा धीरे धीरे इसने काबुल और कन्दहार[1] पर भी अधिकार कर लिया। इसी प्रकार होते होते पर्शियाकी सीमासे लेकर सिन्धुतक बल्कि इससे भी आगे झेलम तकका प्रदेश इसके अधीन हो गया। बुख़ारा और अफ़गानिस्तान भी इसीमें शामिल था। इसीने ई० स० ४० और ४८ (वि० सं० ९७ और १०५ के बीच काबुलके अन्तिम ग्रीक राजा हर्मिअसको हराकर वहाँपरके ग्रीक राज्यपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार इसके उदय होते हुए प्रताप-सूर्यके सामने सिन्धुके पश्चिमी प्रदेशपर राज्य करनेवाले छोटे छोटे पह्लव राजा रूपी तारे अस्त हो गये।

मि० स्मिथका अनुमान है कि ई० स० ४८ में गोण्डोफ़रसके मरनेपर यही उसके राज्यका मालिक बन बैठा। इसने बहुत समय तक राज्य किया। ई० स० ७७ (वि० सं० १३४) के निकट इसकी मृत्यु हुई।

इसके ताँबे और काँसीके सिक्के मिलते हैं। इनमें राजाके और देवताओंके चित्रों आदिके सिवाय एक तरफ़ ग्रीक अक्षरोंका लेख और दूसरी तरफ़ खरोष्ठी लिपिका लेख होता है। उसके नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

(१) बहुतसे विद्वान् 'किपिन' शब्दका अर्थ काश्मीर करते हैं। किपिन शायद गांधारकी राजधानी थी।

'कुजुलकसस कुशणयवुगस ध्रमठिदस'

'कुशनस युवस कुयुलकफसस सच ध्रमठिदस'

हम पहले लिख चुके हैं कि इसने काबुलके ग्रीक राजा हर्मियसको हराया था। उसको हराकर इसने पहले पहल वहांपर उसके और अपने दोनोंके नामके सिक्के चलाये थे। उन पर खरोष्ठीमें ये लेख मिलते हैं:—

'कुजुलकसस कुशनयवुगस ध्रमठिदस'

'कुजुलकसस कुशणयुवगस ध्रमठिदस'

ई० स० ७८ के करीब इसका पुत्र विमकडफ़िसस (द्वितीय) इसका उत्तराधिकारी हुआ। इसने अपने पिताके जीते हुए प्रदेशोंके अलावा आगे बढ़ पंजाब और गंगाके पासके बनारस तकके प्रदेशोंपर भी दख़ल कर लिया।

काबुलसे ग़ाज़ीपुर तक, बनारसके पास, कच्छ और काठियावाड़में जो बिना नामके उस समयके सिक्के मिलते हैं उनको देखकर ऐतिहासिकोंने अनुमान किया है कि यह राजा अपने जीते हुए प्रदेशोंका शासन अपने हाकिमोंद्वारा करता था और ये सिक्के उन्होंने ही अपने अपने प्रदेशोंमें प्रचलित किये थे। मि० स्मिथका अनुमान है कि ये

(१) पार्थिअन राजा मोअसके वर्णनमें तक्षशिलाके एक लेखका उल्लेख किया जा चुका है। उसमें लिअक कुसूलकका नाम और संवत् ७८ लिखा है। गार्डनर साहब लिअककुसूलकका तात्पर्य 'कोजोलकडफिसस' निकालते हैं और उसमेंके संवत्को मोअसका चलाया संवत् मानकर कडफिसस प्रथमका मोअसके ७८ वर्ष बाद होना अनुमान करते हैं। (कैटलॉग ऑफ़ दि कॉइन्स ऑफ़ ग्रीक एण्ड सीथिक किंग्स ऑफ़ बैक्ट्रिया एण्ड इण्डिया, इन्ट्रोडकशन, पृ० ४९।

लोग इसकी मृत्युके करीब १० वर्ष बाद तक भी अपने अपने प्रदेशोंका शासन करते रहे थे।

पाश्चात्य विद्वानोंका अनुमान है कि इसके समय रोमवालोंके साथ भारतका व्यापार शुरू हो चुका था और यहाँके रेशमी वस्त्र, जवाहरात, रंग, मसाले, आदिकी एवज़में वहाँसे सुवर्ण आने लगा था। इसीसे कड़फ़िसस द्वितीयने चाँदी और ताँबेके सिक्कोंके अलावा सोनेके सिक्के भी बनवाये थे। इसके समय भी सिन्धुके नीचेके प्रदेशमें पार्थियन राजा विद्यमान थे।

ई० स० ९० (वि० सं० १४७) के करीब इसने दूत द्वारा चीनके बादशाहको कहलाया कि अपनी कन्याका विवाह मेरे साथ कर दो। परन्तु चीनकी तरफ़के सेनापति पनचओने मार्गमें ही उस दूतको रोक लिया। इस पर विमकड़फ़िसस (द्वितीय) ने ७०००० सवार देकर 'सी' नामक हाकिमको उस पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी। परन्तु मार्गमें १४ हज़ार फ़ीट ऊँचे 'ताशकुरघान'के दर्रेको पार करनेमें इस सेनाको ऐसी मुसीबतोंका सामना करना पड़ा कि वहाँसे आगे बढ़ कर मैदानमें पहुँचने पर चीन सेनापति पनचओने सहज ही इसको परास्त कर नष्ट कर दिया। इस पराजयके कारण कड़फ़िसस (द्वितीय) को चीनवालोंका करद होना पड़ा।

इसका राज्य ई० स० ११० (वि० सं० १६७) तक अनुमान किया जाता है।

मि० स्मिथ इसीको शक संवत्का प्रवर्तक मानते[२] हैं।

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ०, २५४।

(२) भारतके प्राचीन राजवंशके इतिहासके प्रथम भागके पृ० ३ से ६।

इसके सिक्कोंपर खरोष्टीमें निम्नलिखित लेख मिलते हैं:—

'महरजस रजदिरजस सर्वलोगइश्वरस महिश्वरस हिमकपिशस ग्रदत'

'महरज रजदिरज हिमकपिशस'

'महरजस रजदिरजस सर्वलोगइश्वर महिश्वर हिमकपिसस ग्रदत'

इसके सिक्कोंपर एक तरफ़ त्रिशूल और पाश हाथमें लिये बैल सहित खड़े शिवकी मूर्ति बनी होती है। इससे इसका शैवमत पर अनुराग रखना प्रकट होता है। दक्षिणमें इसका अधिकार नर्मदा तक फैल गया था और मालवेके क्षत्रप भी इसको अपना स्वामी मानते थे।

मि० विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि विमकड्फ़िससके ८० वर्षकी अवस्थामें मरने पर १० वर्ष तक उसीके नियुक्त किये हुए हांकिम लोग भिन्नभिन्न प्रदेशोंका शासन कार्य चलाते रहे और उसके बाद ई० स० १२० (वि० सं० १७७) में वझेष्कका पुत्र कनिष्क गद्दीपर बैठा। यह शायद यूएहची जातिकी दूसरी शाखाका होगा।

तक शक संवत्का वर्णन कर चुके हैं। परन्तु नवीन शोधके आधारपर यह संवत् कनिष्कके बदले उसके पूर्वाधिकारी विमकड्फ़िससका चलाया हुआ माना गया है।

(१) बहुतसे विद्वान कनिष्क, वासिष्क, हुविष्क और वासुदेवको कड्फ़िसस प्रथमके पूर्वज अनुमान करते हैं। परन्तु चीनवालोंकी पुस्तकोंमें कड्फ़िसस द्वितीयका भारत-विजय करना लिखा होनेसे यह सिद्ध होता है कि कनिष्क आदि कड्फ़िससके बाद ही हुए होंगे; क्योंकि कनिष्क आदिका मथुरापर राज्य करना प्रकट है। अतः यदि कड्फ़िसस इनका उत्तराधिकारी हुआ होता तो उसे नये सिरेसे भारत-विजयकी आवश्यकता न होती। (—अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २५७)

राजतरङ्गिणी (प्रथमस्तरङ्ग) में लिखा है:—

अथाभवन्स्वनामाङ्कपुरत्रयविधायिनः ।
हुष्कजुष्ककनिष्काख्यास्त्रयस्तत्रैव पार्थिवाः ॥ १६८ ॥
सविहारस्य निर्माता जुष्को जुष्कपुरस्य यः ।
जयस्वामी पुरस्यापि शुद्धधीः संविधायकः ॥ १६९ ॥
प्राज्ये राज्यक्षणे तेषां प्रायः काश्मीरमण्डलम् ॥
भोज्यमास्ते स्म बौद्धानां प्रव्रज्योर्जिततेजसाम् ॥ १७१ ॥
तदा भगवतः शाक्यसिंहस्य परनिर्वृतेः ।
अस्मिन्महीलोकधातौ सार्धं वर्षशतं ह्यगात् ॥ १७२ ॥

अर्थात्—अपने अपने नामोंपर तीन नगर बसानेवाले हुष्क, जुष्क और कनिष्क नामके तीन राजा हुए । इनमेंसे जुष्कने बौद्ध विहार-सहित जुष्कपुर बसाया था और जयस्वामिपुरका आबाद करनेवाला भी यही था । इन राजाओंके राज्य-समय करीब करीब सारा ही काश्मीर प्रदेश बौद्ध भिक्षुओंके निर्वाहार्थ दे दिया गया था । उस समय बुद्धको निर्वाण हुए १५० वर्ष हो चुके थे ।

उपर्युक्त श्लोकोंमें हुष्कसे हुविष्क और जुष्कसे जुविष्कका तात्पर्य होगा । इसका बसाया हुआ जुष्कपुर आज कल भी श्रीनगरके उत्तरमें ' ज़ुकुर ' नामसे विद्यमान है । यह जुविष्क शायद कनिष्ककी तरफ़से काश्मीरका हाकिम मुकर्रिर किया गया होगा । कनिष्कका बसाया हुआ कनिष्कपुर ' कानिसपोर ' नामसे वितस्ता और वराहमूलाकी सड़कके बीचमें प्रसिद्ध है । इसी प्रकार हुविष्कने हुष्कपुर हुविष्कपुर) बसाया था । चीनी यात्री हुएन्त्संग ई० स० ६३१ वि० सं० ६८८, में वहाँ पहुँचा था । उस समय तक भी उक्त नगर समृद्धिपर था । आजकल यही नगर उष्कूर (गाँव) के नामसे सिद्ध है ।

इन कुशान राजाओंके सिक्कों आदिको देखनेसे प्रकट होता है कि ये लोग जिस प्रकार ग्रीक, पर्शियन और हिन्दू देवताओंका आदर करते थे उसी प्रकार बुद्धको भी मानते थे। इसीसे इनके समय काश्मीरमें बौद्धोंका प्रभाव ख़ूब बढ़ गया था।

अन्य बातें तो राजतरङ्गिणीकी ठीक ही प्रतीत होती हैं। परन्तु कल्हणने जो बुद्धनिर्वाणके केवल १५० वर्ष बाद इनका होना लिखा है वह चिन्त्य है; क्योंकि इतिहाससे यह बात सिद्ध नहीं होती।

कनिष्क गान्धारका बड़ा प्रतापी राजा था। समग्र उत्तर पश्चिमी भारत, दक्षिणमें विन्ध्य तकका देश, और सिन्ध इसीके अधिकारमें थे। तथा इसके समय भारतमें पार्थियन (पह्लव) शासनका अन्त हो गया था। भारतमें इसकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। यहाँपर इसने बड़े बड़े बौद्ध स्तूप और मठ आदि बनवाये थे। चीनी यात्री सुंगयुनने[1] वहाँके एक स्तूपको देखा था। उस समय तक वह स्तूप बिजली गिरनेसे तीन बार नष्ट हो चुका था। परन्तु वहाँके राजाओंने उसकी मरम्मत करवा दी थी। इसीके पास एक मठ था जो बौद्ध धर्मकी शिक्षाके लिये ईसाकी नवीं शताब्दी तक भी प्रसिद्ध था[2]। अन्तमें शायद महमूद ग़ज़नी या उसके अनुयायियोंने इसे नष्ट

(१) यह यात्री ई० स० ५१८ (वि० सं० ५७५) में बुद्धधर्मके महायान संप्रदायके ग्रथोंकी खोजमें भारतमें आया था और ई० स० ५२१ (वि० ५७८) में लौट गया था। (२) बौद्ध विद्वान् वीरदेव, जो कि मगधके देवपाल द्वारा नालन्दके विश्वविद्यालयका महन्त बनाया गया था, इस मठको देखनेको गया था। देवपालका समय ई० स० ८४४ से ८९२ (वि० स० ९०१ से ९४९) तक माना जाता है।

किया होगा । भारतीय पुरातत्त्वानुसन्धान (आर्कियो लॉजिकल सर्वे) के महकमेंके परिश्रमसे आज भी उपर्युक्त स्थानोंकें भग्नावशेष देखनेको मिलते हैं ।

इसने पार्थियापर भी आक्रमण किया था ।

अपने अन्तिम समय विमकड्फ़िससका बदला लेनेको इसने चीनके शासित तुर्किस्थानपर भी आक्रमण किया था। यद्यपि यह बड़े साहसका काम था, तथापि अन्तमें इसे जय प्राप्त हुई और काशगर, यारकंद तथा खोतान पर इसका अधिकार हो गया। ये प्रदेश तिब्बतके उत्तर और पामीरके पूर्वमें थे । इस विजयको स्थायी बनानेके लिये कनिष्क वहाँके राजपरिवारके कुछ लोगोंको अपने साथ ले आया था। ये लोग प्रतिबंधक (ज़मानत) के तौरपर इसकी रक्षामें रहते थे। इनके लिये हर तरहका सुभीता किया गया था । गरमियोंमें ये लोग कपिशा (काफ़िरिस्तान) के मठोंमें रहते थे; जहाँ ठंडक रहा करती थी। वर्षामें इनका निवासस्थान गान्धार था और सर्दियोंमें ये लोग पूर्वी पंजाबमें रहा करते थे। पंजाबका वह स्थान जहाँपर ये लोग रहते थे 'चीनभुक्ति' के नामसे प्रसिद्ध हो गया था ।

दन्तकथाओंसे विदित होता है कि इसने पाटलिपुत्रपर भी अधिकार कर लिया था और वहाँसे बौद्ध भिक्षु अश्वघोषको यह अपने साथ ले गया था । तथा बौद्ध-धर्मका असली तत्व जाननेके लिये इसने जो काश्मीरमें बौद्ध-धर्मके विद्वानोंकी सभा की थी उसमें इसी अश्वघोषको उपसभापति बनाया था । इस सभामें ५०० विद्वान् एकत्रित हुए थे[१]

(१) इस सभामें हीनयान मतके 'सर्वास्तिवादिन्' संप्रदायके विद्वान् एकत्रित हुए थे ।

और इसका सभापति वसुमित्र था। इन लोगोंने जो ग्रन्थ संकलन किये थे वे सब ताम्रपत्रों पर लिखवाकर वहींके एक स्तूपमें रखवा दिये गये थे। सम्भव है अब तक भी वे श्रीनगरके आसपास कहीं पृथ्वीके पेटमें पड़े हों। इन ग्रन्थोंमेंसे 'महाविभाषा' नामक ग्रन्थ चीनी भाषामें अबतक विद्यमान् है। इस सभाके बाद ही शायद इसने काश्मीर प्रदेश बौद्ध-मठके हवाले कर दिया होगा।

मि० स्मिथ महाराष्ट्रके शासक क्षहरात नहपान और उज्जैनके शासक सत्रप चष्टनको भी कनिष्कके सामन्त अनुमान करते हैं।

इसके अनेक लेख मिले हैं, जो संवत् ३ से ४१ तकके हैं, परंतु अभी तक इस संवतके विषयमें बड़ा मतभेद है।

मि० स्मिथका अनुमान है कि इसका चलाया हुआ यह राज्य-संवत् १०० वर्षके पूर्व ही नष्ट हो गया था; क्यों कि इस संवत्का अन्तिम लेख ९८ वें वर्षका ही मिला है। लेखोंमें इसकी उपाधि 'महाराज राजातिराज देवपुत्र कनिष्क' मिलती है। ये लेख साधारण लोगोंके खुदवाये हुए हैं। इसका खुदका कोई लेख अबतक नहीं मिला है।

इसके सोने और काँसीके सिक्के मिले हैं। इनमें एक तरफ़ राजाका चित्र होता है और ग्रीक अक्षरोंमें इस राजाका नाम 'कनेर्कस' लिखा रहता है। दूसरी तरफ़ किसी पर स्त्री, किसी पर महादेव, आदि भिन्न भिन्न प्रकारके देवताओंके चित्र रहते हैं।

नागार्जुन, अश्वघोष, वसुमित्र और चरक आदि विद्वान् इसीके समयमें हुए थे। इनमेंका अन्तिम विद्वान् चरकाचार्य आयुर्वेदका ज्ञाता और इसकी सभाका राजवैद्य था।

इसने पेशावरके अलावा तक्षशिला मथुरा आदिमें भी अनेक स्तूप और मठ बनवाये थे। इसके समय वास्तुविद्यामें भी अच्छी उन्नति हुई थी। मथुरासे इसकी कुर्सी पर बैठी हुई एक मूर्ति मिली है। परन्तु उसका मस्तक टूटा हुआ है।

इसकी मृत्यु ई० स० १६२ (वि० सं० २१९) के करीब मानी गई है। कनिष्कके पीछे उसका पुत्र हुविष्क उसका उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु सारनाथ, साँची मथुरा, मानिक्याल, आर, आदि स्थानोंसे जो इनके समयके लेख मिले हैं उनमें इन राजाओंका समय इस प्रकार मिलता है:—

कनिष्कका—संवत् ३ से ४१ तक।

वासिष्कका—सं० २४ से २९ तक।

हुविष्कका—सं० ३३ से ६० तक।

यह तो निश्चित ही है कि एक ही समयमें एक ही स्थान पर एकसे अधिक राजा नहीं हो सकते। इससे अनुमान होता है कि वासिष्क और हुविष्क शायद कनिष्कके पुत्र होंगे। तथा जिस समय कनिष्क सुदूरके प्रदेशोंकी विजयमें लगा हुआ था उस समय पहले पहल वासिष्क उसकी तरफ़से राज्यके प्रबन्ध पर नियुक्त किया गया होगा। परन्तु संवत् २८ और ३३ के बीच उसकी मृत्यु हो जानेसे उक्त प्रबन्ध उसके छोटे भाई हुविष्कके हाथमें चला गया होगा। तथा यही अन्तमें कनिष्कका उत्तराधिकारी हुआ होगा।

वासिष्कके समयके लेखोंमें उसकी उपाधि 'महाराज राजातिराज देवपुत्र शाही वासिष्क' लिखी होती है।

ई० स० १६२ (वि० स० २१९) के करीब हुविष्क गद्दी पर बैठा । काबुल, काश्मीर और मथुराके प्रदेश इसीके राज्यमें थे ।

इसके समयके लेखोंमें इसकी उपाधि 'महाराज राजातिराज देवपुत्र हुविष्क' मिलती है ।

इसके सोने और काँसीके सिक्के मिले हैं । इनमें एक तरफ़ राजाकी तसवीर और दूसरी तरफ़ ग्रीक, हिन्दू या पर्शियन देवताकी मूर्ति बनी होती है । तथा इन परके ग्रीक अक्षरोंके लेखमें इसका नाम 'हुएर्कस' लिखा रहता है ।

ई० स० १८२ (वि० स० २३७) के करीब इसकी मृत्यु होने पर वासुदेव प्रथम इसका उत्तराधिकारी हुआ ।

इसके समयके सवत् ७४ से ९८ तकके लेख मिले हैं। उनमें इसकी उपाधि ' माहाराज राजातिराज देवपुत्र शाही वासुदेव ' मिलती है ।

इसके सोने, ताँबे और काँसीके सिक्के मिले हैं । इनपर एक तरफ़ राजाकी मूर्ति और दूसरी तरफ़ ग्रीकोंकी देवीकी या शिवकी आकृति बनी होती है । तथा इनपर ग्रीक अक्षरोंमें इसका नाम ' बैज़ोडेओ ' (वासुदेव) लिखा रहता है ।

इसके नाम और सिक्कोंको देखकर अनुमान होता है कि इन लोगोंने भी भारतीय सभ्यताके आगे मस्तक झुका लिया था ।

इसकी मृत्यु ई० स० २२० (वि० स० २७७) के करीब हुई होगी । हुविष्कके अन्तिम समयसे ही कुशान राज्यका प्रताप घटने लगा था और वासुदेवके बाद ही नष्टप्राय सा हो गया ।

सर रामकृष्ण भाण्डारकरका अनुमान है कि[1] कनिष्क आदिके लेखोंमें सैकड़ेके अङ्क छोड़ दिये गये हैं; जैसा कि मथुरासे मिले संवत् २९० के लेखसे प्रकट होता है। यद्यपि इस लेखमें राजाका नाम नहीं है तथापि इसमें कुशान राजाओंकी सी उपाधियोंके होनेसे इसका कुशान राजाओंके ही समयका होना सिद्ध होता है।

यदि यह अनुमान ठीक हो तो कनिष्कके सबसे पहलेके संवत् ३ के लेखको शक संवत् २०३ (ई० स० २८३=वि० सं० ३४०) का और वासुदेवके सबसे पिछले संवत् ९८ के लेखको श० सं २९८ (ई० स० ३७६=वि० सं ४३३) का मानना होगा।

श्रीयुत आर० डी० बैनरजी इनके पिछले सिक्कोंके आधारपर वासुदेव प्रथमके पीछे कनिष्क द्वितीय, वासुदेव द्वितीय और वासुदेव तृतीयका क्रमशः राजा होना अनुमान करते हैं।

मि० विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि ई० स० २२६ (वि० सं० २८३) में जब ससेनियन लोगोंके आक्रमणसे पर्शियाका राज्य नष्ट हुआ था उसी समय उत्तर भारतका कुशान और दक्षिणी भारतका आन्ध्र राज्य भी समाप्त हो गया। इसके बादका करीब सौ वर्षका भारतका इतिहास बिलकुल नहीं मिलता है। सम्भव है उस समय यहाँपर महत्त्वहीन छोटे छोटे राजा ही रह गये हों। पुराणोंमें आन्ध्रोंके पीछेके आभीर, गर्दभिल्ल, आदि राजवंशोंकी वंशावलियाँ मिलती हैं। परन्तु उनका कुछ भी हाल अबतक नहीं मिला है। सम्भव है उक्त शताब्दीके मध्य इन्हीं लोगोंने उत्तर पश्चिमकी तरफ़से भारतपर आक्रमण किये हों।

(१) ए पीप इन्टु दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया पृ० ४१–४३।

कुशान राजाओंके सिक्कोंसे पता चलता है कि काबुल और उसके आसपासके प्रदेशपर इनका राज्य ईसाकी पाँचवीं शताब्दी तक रहा था; जिसको अन्तमें हूणोंने इनसे छीन लिया। फिर भी कुछ स्थान बच रहे थे जिनको ईसवी सन्‌की सातवीं शताब्दीमें पर्शिया विजय करनेवाले अरबोंने समाप्त कर दिया।

बहुतसे विद्वानोंका अनुमान है कि ईसाकी तीसरी शताब्दीमें प्रथम ससेनियन राजा अर्दशीर और उसके उत्तराधिकारीने सिन्धुतकके प्रदेशोंपर अधिकार कर लिया था। परन्तु अभी इस विषयके विशेष प्रमाण नहीं मिले हैं।

गुप्त-वंश ।

ई० स० २७५ (वि० सं० ३३२) से ई० स० ५३३ (वि० सं० ५९०) के निकट तक।

गुप्तोंका समय ।

इस वंशका राज्य ईसाकी तीसरी शताब्दीसे सातवीं शताब्दीके पूर्वार्ध तक माना जाता है । परन्तु जब तक उक्त तीसरी शताब्दीके समयका उत्तरी भारतका इतिहास पूरी तौरसे विदित न हो जाय तब तक इस (गुप्त) वंशके मूल पुरुषके अधिकारारूढ होनेके कारण और समयका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है ।

इतिहाससे पता चलता है कि, दूसरी शताब्दीके आसपास दक्षिणमें मगध तक कुशान या तुखार वंशियोंका राज्य था। ईसाकी दूसरी शताब्दीके अन्त और तीसरीके आदिमें जब इस वंशका प्रताप घटने लगा, तब कई अन्य वंशोंने अपने अपने राज्यकी वृद्धिका उद्योग आरंभ कर दिया। उक्त गुप्त-वंशी भी उन्हींमेंसे एक थे ।

पृथक् पृथक् वंश ।

महाराज गुप्तसे लेकर भानुगुप्त तकके राजा और सम्भवतः स्कन्दगुप्तके भाई पुरगुप्तके वंशज भी पहलेके गुप्त राजाओंके नामसे प्रसिद्ध हैं ।

राज्य-विस्तार ।

ईसाकी चौथी शताब्दीमें इस वंशका राज्य पूर्वमें हुगलीसे पश्चिममें जमना और चम्बल तक, तथा उत्तरमें हिमालयसे दक्षिणमें नर्मदा

तक था। इसके अलावा आसाम, गंगाका मुख (Delta), हिमालय-का दक्षिणी उतार, राजपूताना, मालवा और सारा दक्षिणी भारत भी इसी वंशके अधिकारमें था। तथा उस समय इस वंशके राजाओंका सम्बन्ध गान्धार, काबुल व ओक्ससके कुशानवंशी राजाओं और सीलोन (लंका) आदि टापुओंके अधिपतियोंसे भी था।

पाठक इतनेसे ही समझ सकते हैं कि, अशोकके बादसे आज तक अर्थात् ६०० वर्ष तक भारतमें इतना बड़ा राज्य किसी वंशके अधिकारमें नहीं रहा था।

जाति।

विष्णुपुराण और मनुस्मृतिमें लिखा है कि, ब्राह्मणोंके नामके अन्तमें शर्मा, क्षत्रियोंके वर्मा, वैश्योंके गुप्त और शूद्रोंके दास लगता है। इसी आधारपर बहुतसे विद्वानोंका मत है कि गुप्त-वंशी राजा वैश्य थे और इसीलिये इन्होंने अपना नेपालके लिच्छवि वंशियोंका सम्बन्धी होना बड़े गर्वके साथ प्रकट किया है। यदि वे स्वयं क्षत्रिय होते तो उक्त सम्बन्धको बार बार प्रकट करनेकी आवश्यकता न समझते।

प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् ब्रह्मगुप्त और (श० सं० ६२७ के नेरूरसे मिले विजयादित्यके ताम्रपत्रमेंके) दासवर्मन्के नामोंसे प्रकट होता है कि कभी कभी नामकरणमें उपर्युक्त स्मृत्यादिके नियमोंका उल्लङ्घन भी कर दिया जाता था। क्योंकि वास्तवमें ब्रह्मगुप्त और दासवर्मन् दोनों ब्राह्मण थे। परन्तु इनके नामोंसे इनका वैश्य और क्षत्रिय होना सिद्ध होता है। अतः जब तक इस विषयके अन्य प्रमाण न मिल

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ९, पृ० १३१।

जायँ तब तक इनकी जातिके विषयमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता।

कुछ पिछले गुप्त राजा अपनेको चन्द्रवंशी लिखते थे।

धर्म।

ये (गुप्तवंशी) राजा ब्राह्मण धर्मके माननेवाले और वैष्णव थे। परन्तु अन्य बौद्धादि मतोंके विद्वानोंपर भी इनकी कृपा रहा करती थी। ख़ास मथुरामें भी उस समय अनेक बौद्ध मठ थे, जिनमें हज़ारों भिक्षु रहा करते थे।

ईसाकी चौथी शताब्दीमें इस वंशके राजा समुद्रगुप्तने और पाँचवींमें इस (समुद्रगुप्त) के पौत्र कुमारगुप्त प्रथमने अश्वमेध यज्ञ किया था।

रिवाज़।

जिस प्रकार भारतमें प्राय: पिताके पीछे बड़ा पुत्र राज्यका अधिकारी होता है, उस प्रकारका नियम इस वंशमें नहीं था। इनके यहाँ पिता अपने पुत्रोंमेंसे योग्यतम पुत्रको चुनकर युवराज बना सकता था। चाहे वह बड़ा हो या छोटा, इसका कुछ भी विचार नहीं किया जाता था।

इनके लेखोंसे प्रकट होता है कि चन्द्रगुप्त प्रथमने अपने पुत्र समुद्रगुप्तको और समुद्रगुप्तने अपने पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीयको उक्त रीतिसे ही राज्यके लिये चुना था।

कला-कौशल।

इस वंशके राज्य-समय कलाकौशलकी ख़ूब ही उन्नति हुई थी। अमरावतीका संगमर्मरका स्तूप, बनारसका सारनाथवाला स्तूप, नेपा-

लमेंके स्तूप, बुध गयाका मन्दिर और पृथ्वीसे निकली उस समयकी अनेक मूर्तियाँ तथा सिक्के इस विषयके विशिष्ट प्रमाण हैं।

यद्यपि इलोरा और अजण्टाकी गुफाएँ इनके समयसे एक दो शताब्दी, बादकी बनी हैं, तथापि क्रमविकाशके सिद्धान्तानुसार इनसे भी गुप्तोंके समयके कलाकौशलकी उन्नतिका अनुमान किया जा सकता है। ये दोनों गुफाएँ अपनी कारीगिरी और चित्रकारीके लिये संसार भरमें प्रसिद्ध हैं।

उपर्युक्त बातोंसे पता चलता है कि गुप्तोंके समय गृहनिर्माण, मूर्तिनिर्माण और चित्रकलाने अच्छी उन्नति कर ली थी।

देहलीके लोहस्तम्भको देखनेसे और उस समयकी बनी धातुकी बुद्ध मूर्तियोंका विवरण पढ़नेसे पता चलता है कि उस समय ढलाईका काम भी यहाँ बहुत ही बढ़िया होता था।

विद्या।

गुप्तोंके राज्यसमय, ईसवी सन् ४०० (वि० सं० ४५७) से ६५० (वि० सं० ७०७) तक, भारतमें साहित्य, गणितादिकी भी ख़ूब उन्नति हुई थी।

प्रोफेसर हिलबर्टका अनुमान है कि संस्कृतका प्रसिद्ध मुद्राराक्षस नाटक विशाखदत्तने ई० स० ४०० के करीब ही लिखा था।

मृच्छकटिकका समय इससे कुछ पूर्व माना गया है।

वायुपुराण और मनुस्मृतिका रचना-काल भी पाश्चात्य विद्वानोंके मतानुसार ईसाकी चौथी शताब्दीका पूर्वार्ध ही था। (परन्तु यह चिन्त्य है।)

(१) हम भूमिकामें लिख चुके हैं कि अर्थशास्त्रमें पुराणोंका उल्लेख मिलनेसे ईसवी सन्से ४०० वर्ष पूर्व भी उनका अस्तित्व मानना पड़ता है। सम्भव

ज्योतिःशास्त्रके प्रसिद्ध विद्वान् आर्यभट्ट (जन्म ई० स० ४७६= वि० स० ५३३), वराहमिहिर (ई० स० ५०५–५८७=वि० सं० ५६२–६४४) और ब्रह्मगुप्त (जन्म ई० स० ५९८=वि० सं० ६५५) भी इन्हींके समयमें हुए थे।

एक नालन्दके विश्वविद्यालयसे ही उस समयके विद्याप्रचारका पता चल जाता है। इस विद्यालयमें दस हज़ार विद्यार्थियोंके रहनेका स्थान था। देशविदेशसे आकर विद्यार्थी इसमें पढ़ा करते थे। प्रसिद्ध चीनी यात्री फ़ाहियान भी इसी विद्यालयमें पढ़ा था।

समुद्रगुप्तके लेखोंसे विदित होता है कि यह राजा स्वयं विद्वान्, कवि और गानविद्यामें निपुण था।

अधिकतर विद्वान् कालिदासका भी चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमार-गुप्त प्रथमका समकालीन होना मानते हैं। इनका निवासस्थान मन्दसोरके निकट माना गया है। कहते हैं कि कालिदासने ऋतुसंहार और मेघदूत तो चन्द्रगुप्त द्वितीयके समय और शकुन्तला आदि नाटक कुमारगुप्तके समय बनाये थे। नहीं कह सकते, यह कहाँ तक ठीक है।

वैदेशिक सम्बन्ध।

इतिहाससे सिद्ध होता है कि गुप्तराजाओंके समय भारतका चीन, सीलोन, आर्चियापेलेगो, जावा, पर्शिया, रोम, यूनान, आदि देशोंसे धार्मिक और व्यापारिक सम्बन्ध बना हुआ था।

इन्हींके राज्य-समय जावा आदिमें बौद्ध धर्मका प्रचार हुआ था।

है इस समय कुछ भाग नया बढ़ाया गया हो और उन्हें यह वर्तमानरूप प्राप्त हुआ हो।

सम्पत्ति।

गुप्त संवत् ८८ (वि० सं० ४६४=ई० स० ४०७) का चन्द्र-गुप्त द्वितीयके समयका एक लेख[1] गढवासे मिला है। उसमें लिखा है:—

"...[पुण्या] प्यायनार्थं रचि [त]...[स] दासत्र सामाण्य [न्य] ब्राह्म [ण]......दीनारैर्द्दशाभिः १०......"

अर्थात् धर्मार्थ एक ब्राह्मणके नित्यके भोजनके लिये १० सुवर्ण मुद्राओंसे।

इससे विदित होता है कि उस समय एक आदमीके नित्यके भोजनके लिये दस दीनारों (सुवर्ण मुद्राओं) का ब्याज पर्याप्त होता था।

गुप्त संवत् ९३ (वि० सं० ४६९=ई० स० ४१२) के चन्द्र-गुप्त द्वितीयके समयके लेख[2]में लिखा है:—

"...ददाति पञ्चविंशतश्च दीनारान्। तदत्त......या दर्धेन महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्य देवराज इति प्रियनाम......य तस्य सर्वगुणसंपत्तये यावच्चन्द्रादित्यौ तावत्पञ्चभिक्षवो भुंजतां रत्नगृहे च दीपको ज्वलतु नाम चापरार्धा पञ्चैव भिक्षवो भुंजतां रत्नगृहे च दीपक इति..."

अर्थात् पाँचबीसी-सौ-दीनार (सुवर्ण मुद्राएँ) दी जाती हैं। उनमेंकी आधी अर्थात् ५० दीनारोंसे देवराज उपनामवाले महाराजाधिराजश्री चन्द्रगुप्तके सब गुणोंकी प्राप्तिके लिये जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहें तब तक ५ भिक्षु भोजन करते रहें और बुद्ध भगवान्के रत्नगृह (मन्दिर) में एक दीवा जले तथा बाकीकी आधी अर्थात्

(१-२) फ्लीटके गुप्त इन्सक्रिपशन्स, पृ० ३७, ३१।

(मेरी) ५० सुवर्ण मुद्राओंसे भी पाँच भिक्षु भोजन करें और रत्न-गृहमें दीपक जले।

संस्कृत व्याकरणमें 'पञ्चविंशति' शब्दको एक वचनान्त माना है और इसीके आधार पर डाक्टर फ्लीटने उपर्युक्त लेखके "**ददाति पञ्चविंशतश्चदीनारान्**" वाक्यमें 'पञ्चविंशत'को अशुद्ध पाठ मानकर शुद्ध पाठ 'पञ्चविंशतिं' कर दिया है; जिसका अर्थ केवल २५ दीनार होता है। परन्तु पूर्वोक्त गुप्त संवत् ८८ के लेखसे स्पष्ट है कि एक ब्राह्मणके भोजनार्थ १० दीनारोंके सूदकी आवश्यकता होती थी। अतः २५ दीनारोंमें १० भिक्षुओंके भोजनका और दो दीपकोंका प्रबन्ध होना बिलकुल असम्भव प्रतीत होता है, क्योंकि करीब ५ वर्षमें इतना अन्तर नहीं हो सकता। पण्डित हरि रामचन्द्र दिवेकरने पञ्च और विंशति इन दोनों शब्दोंको अलग अलग मानकर इसका अर्थ 'पाँच बीसी' किया है। इससे व्याकरणदोष भी नहीं रहता और लेखका पाठ भी अभ्रान्त सिद्ध हो जाता है। तथा एक पुरुषके भोजनके लिये करीब १० मुद्राओंकी संगति भी मिल जाती है।

उपर्युक्त बातको पुष्ट करनेके लिये हम गुप्तोंके समयका एक लेख और उद्धृत करते हैं। यह लेख[1] गुप्त संवत् १३१ (वि० सं० ५०७ =ई० स० ४५०) का है और साँचीसे मिला है। इसमें लिखा है:—

"**...आर्यसंघाय अक्षयनीवी दत्ता दीनारा द्वादश एषां दीनाराणां या वृद्धिरुपजायते तया दिवसे दिवसे संघमध्य प्रविष्टकभिक्षुरेकः भोजयितव्यः। रत्नगृहेपि दीनारत्रयं दत्तं [त] द्दीनार-**

---

(१) फ्लीटके गुप्त इन्सक्रिपशन्स, पृ० २६१।

त्रयस्य वृद्धया रत्नगृहे भगवतो बुद्धस्य दिवसे दिवसे दीपत्रयं प्रज्वालयितव्यं । चतुर्बुद्धासनेपि दत्तदीनार एकः तस्य वृद्धया चतुर्बुद्धासने भगवतो बुद्धस्य दिवसे दिवसे दीपः प्रज्वालयितव्यः । एवमेषाक्षयनीवी आचन्द्रार्कशिलालेख्या । "

अर्थात् भिक्षुओंके संघके लिये अक्षय दान १२ दीनार (सुवर्ण-मुद्राएँ) दिये। इनके ब्याजसे हमेशा संघमेंके एक भिक्षुको भोजन करवाना चाहिये। बुद्धके रत्नगृह (मन्दिर) के लिये तीन दीनार दिये। इनके सूदसे उक्त मन्दिरमें हमेशा तीन दीपक जलाने चाहिये। चार बुद्धवाले स्थानमें भी एक दीनार दिया है। इसके ब्याजसे उक्त जगह पर नित्य एक दीपक जलाना चाहिये। इस प्रकार यह अक्षयदान, जो कि सूर्य और चन्द्रके रहने तक रहेगा, शिलापर लिखना चाहिये।

यह लेख ऊपर उद्धृत किये पहले लेखसे ४३ वर्ष और दूसरे लेखसे ३८ वर्ष बादका है। अत: सम्भव है कि अनेक उलट फेरोंके कारण; जैसा कि उक्त समयके इनके इतिहाससे विदित होगा, उस समय साम्पत्तिक स्थितिमें कुछ परिवर्तन हो गया होगा जिससे एक आदमीके भोजनके लिये १० मुद्राओंके स्थान पर १२ मुद्राओंके ब्याजकी आवश्यकता होने लगी थी।

इस तीसरे लेखमें ब्याजके लिये स्पष्टतया 'वृद्धि' शब्दका प्रयोग किया गया है।

गुप्तोंकी सुवर्ण-मुद्राओंका तोल करीब आठ माशेके होता है और हम भारतके प्राचीन राजवंशके प्रथमभागमें उषवदातके शक संवत् ४२ (वि० सं १७७=ई० स० १२०) के नासिकसे मिले लेखके

(१) भारतके प्राचीन राजवंश, प्रथमभाग, पृ० १०।

(२) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ८, पृ०८२।

आधार पर लिख चुके हैं कि उस समय चाँदीसे सुवर्णकी कीमत करीब १० गुनी अधिक थी। सम्भव है कि गुप्तोंके समय तक इसमें थोड़ीसी घटा बढ़ी हुई हो। अत: उस समय यदि एक आदमीके पास करीब ६८ तोले चाँदी होती थी तो उसे आयुपर्यन्त भोजनकी चिन्ता नहीं रहती थी।

पण्डित हरि रामचन्द्र दिवेकरने दक्षिणके शातवाहन लोगोंके शिलालेखोंके आधार पर उस समयके ब्याजकी दर ५) से ७॥) रुपये सैकड़े तक लिखी है[1]। अत: औसत ६) रुपये मान लिये जाँय तो १०० तोलेके सूदके ६ तोलेके हिसाबसे ६८ तोले चाँदीका एक वर्षका ब्याज ४ तोले चाँदीके करीब होगा। इससे प्रकट होता है कि उस समय १ तोला चाँदी (१ रुपया) एक आदमीके तीन महीनेके भोजनके लिये काफ़ी होती थी।

अब ज़रा उस समयके भावकी एक झलक और भी देख लीजिये। उपर्युक्त गु० सं० १३१ के लेखमें भगवान् बुद्धके सामने जलानेके लिये प्रत्येक नन्दीदीपके लिये एक दीनारके दानका उल्लेख है। इसी एक दीनारके ब्याजसे यह दीपक जलाया जाता था। अत: यदि एक दीपकके लिये रोज़ाना कमसे कम आधपावके करीब ही तेल समझ लिया जाय तो महिनेमें करीब ४ सेर तेलकी आवश्यकता होती होगी और साल भरमें करीब सवा मनके। हम पहले लिख चुके हैं कि गुप्तोंकी १० सुवर्ण मुद्राओंकी एवज़में करीब ६८ तोलेके चाँदी आती थी। तो एक दीनारके बदले करीब ६$\frac{३}{४}$ तोले चाँदी आती होगी और १०० तोले चाँदीका ब्याज जब ६ तोले चाँदी होती थी तब ६$\frac{३}{४}$ तोलेके वर्ष भरके ब्याजकी करीब साढ़े छ: आनेभर चाँदी हुई। अत:

(१) सरस्वती, अक्टूबर १९१४, पृ० ५३७।

यह स्पष्ट हुआ कि उस समय ।≈)॥ का मन सवामन तेल आता होगा। परन्तु पाठकोंको इसमें आश्चर्य करनेकी आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने भारतकी आजसे तीन चार सौ वर्षकी भी पुरानी दशाका वर्णन ऐतिहासिक पुस्तकोंमें पढ़ा है वे इस बातको अच्छी तरह समझ सकते हैं। चीनी यात्री फ़ाहियानके लेखसे भी प्रकट होता है कि चन्द्रगुप्तके समय साधारणतया निर्वाहके लिये केवल कौड़ियोंकी ही आवश्यकता होती थी।

भाषा और लिपि ।

पहला शुद्ध संस्कृतमें लिखा लेख मथुरासे कनिष्कके २४ वें राज्य-वर्ष (ई०स० १४४=वि० सं० २०१) का और दूसरा गिरनारका रुद्रदामाका (ई० सं० १५२=वि० सं० २०९ का) मिला है। परन्तु वास्तवमें गुप्तोंके समयमें ही संस्कृतकी उन्नति और प्रचार हुआ था। गुप्तोंके लेखों और सिक्कोंकी लिपि ब्राह्मी है और इसीका परिवर्तित रूप ही आजकलकी नागरी लिपि समझी जाती है। अङ्क भी इनमें ब्राह्मी लिपिके ही हैं। आज कलके अङ्कोंसे इनमें यह विलक्षणता है कि दहाईके लिये दो और सैकड़ेके लिये तीन अङ्क लिखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस प्रकार १ से लेकर ९ तक अलग अलग एक एक अङ्क नियत है, उसी प्रकार १० से ९० तक और १००—२०० आदिके लिये भी अलग अलग एक ही अङ्क नियत है। अतः यदि आपको उस समयके अङ्कोंमें ११५ लिखना हो तो पहले १०० का अंक, उसके पीछे १० का अंक और अन्तमें ५ का अंक लिखना होगा। जैसे १००+१०+५=११५। इन लेखों और सिक्कोंको पढ़नेके लिये जुदा पृष्ठपर इनके समयके ब्राह्मी अक्षरों और अंकोंकी वर्णमाला दी जाती है। उसमें उस समयके प्रत्येक ब्राह्मी अक्षरके सामने प्रचलित नागरी अक्षर भी लिख दिया गया है।

गुप्त संवत्।

मि० विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि यह संवत् चन्द्रगुप्त प्रथमने विजयादि द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेनेपर चलाया था। परन्तु डाक्टर फ्लीट इसे उक्त राजाके राज्यारोहण समयसे ही प्रारम्भ हुआ मानते हैं।

बहुधा देखनेमें आता है कि प्रतापी राजा लोग लेखादिकोंमें अपने राज्यवर्ष लिखा करते थे, और उनके मरनेपर ये ही संवत् उनके वंशजोंके लेखादिकोंमें भी जारी रहते थे। तथा आगे चलकर ये ही राजवर्ष एक विशेष संवत्का रूप धारण कर लेते थे।

गढवासे एक लेख चन्द्रगुप्त द्वितीयके समयका मिला है। उसमें '**श्रीचन्द्रगुप्तराज्यसम्वत्सरे ८८**' लिखा है। बिलसदके एक स्तम्भपर कुमारगुप्त प्रथमका एक लेख खुदा है। उस पर भी "**श्री कुमारगुप्तस्य अभिवर्धमानविजयराज्यसम्वत्सरे षण्णवते**" लिखा है। इनसे सिद्ध होता है कि चन्द्रगुप्त प्रथमने जो (अपने) राज्यारोहण दिवससे अपना राज्य-संवत् प्रचलित किया था, वही उसके पुत्र पौत्रादिकोंके लेखोंमें भी प्रचलित रहा और उसीका नाम गुप्तसंवत् हुआ। यह संवत् करीब ६०० वर्ष तक चलता रहा और गुप्त राज्यके नष्ट हो जानेपर वल्लभी संवत्के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

यद्यपि उपर्युक्त चन्द्रगुप्त और कुमारगुप्तके लेखोंमें क्रमशः '**श्री चन्द्रगुप्तराज्यसंवत्सरे**' और '**कुमारगुप्तस्य अभिवर्धमानविजयराज्यसंवत्सरे**' लिखा है, तथापि यही मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त प्रथमने, जो राज्य-संवत् अपने राज्यारोहण दिवससे

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २६६। (२) डा० फ्लीटका कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम् जिल्द ३, पृ० ३८, नोट ५।

लिखना प्रारम्भ किया था, वही संवत् उक्त दोनों लेखोंमें भी लिखा गया है। क्यों कि यह तो इतिहाससिद्ध बात है कि न तो चन्द्रगुप्त द्वितीयने ही ८८ वर्ष और न कुमारगुप्त प्रथमने ही ९६ वर्ष राज्य किया था। अतः इससे यही सिद्ध होता है कि उक्त लेख लिखे जानेके समय उपर्युक्त घटना (चन्द्रगुप्त प्रथमके राज्यारोहण) को क्रमशः ८८ और ९६ वर्ष व्यतीत हो चुके थे।

ऊपर लिखी बातोंपर विचार करनेसे डाक्टर फ़्लीटका मत ही ठीक प्रतीत होता है। क्यों कि यदि इस संवत्का प्रारम्भ (मि० विन्सैण्ट-स्मिथके लेखानुसार) चन्द्रगुप्त प्रथमके राज्यारोहण-दिवससे न मान-कर उसके विजय प्राप्तिके बादसे माना जाय तो इससे उक्त राजाके राज्य-वर्षका बोध नहीं हो सकता। क्यों कि वंशपरम्परागत अधिकार प्राप्त करने और सेना तैयार करके अड़ोस पड़ोसके राजाओंको जीत-नेमें कुछ वर्षोंका अन्तर होना निश्चित ही है।

राजाओंके अपने राज्यारोहण दिवससे संवत् प्रचलित करनेके और भी उदाहरण मिलते हैं। यथा हर्ष-संवत्। यह (हर्ष) संवत् वैसवंशी राजा हर्षवर्धनने अपने राज्यारोहण-दिवस (ई० स० ६०६) से प्रचलित किया था, न कि विजय-यात्रासे लौटनेके अनन्तर किये गये अभिषेकके दिवस (ई० स० ६१२) से।

अलबेरुनीके मतानुसार यह (गुप्त) संवत् शक संवत्से २४१ वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ था। डाक्टर फ़्लीट[1] इसका और शक संवत्का अन्तर २४२ वर्ष मानते हैं। उनके मतानुसार गुप्त संवत्का प्रथम वर्ष ई० स० ३२० की २६ फ़रवरी (वि० सं० ३७७) से प्रा-

---

(१) फ़्लीटका कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, इण्ट्रोडक्शन।

रम्भ होकर ई० स० ३२१ की १३ मार्च (वि० स० ३७८) को समाप्त हुआ था। यही चन्द्रगुप्त प्रथमके राज्यारोहणका पहला वर्ष माना जाता है।

श्रीयुत के० बी० पाठक जैन ग्रन्थोंके और बुधगुप्तके लेखोंके आधार पर इसका और श० सं० का अन्तर २४१ सिद्ध करते हैं। उनका कथन है कि एरनके स्तम्भ परसे मिले हुए बुधगुप्तके लेखमें जो गुप्त संवत् १६५ दिया है, उसको गतवर्ष समझना चाहिये। क्योंकि ऐसा माननेसे एक तो जैनग्रन्थोंमें[२] अनेक स्थानोंपर दिये हुए समयसे यह समय बराबर मिल जाता है, दूसरे सारनाथसे मिले हुए इसी बुधगुप्तके गुप्त संवत् १५७ के लेखमें[३] गतवर्ष ही लिखा है, अतः उक्त एरनके लेखका भी गतवर्ष होना सम्भव प्रतीत होता है। तीसरे ऐसा माननेसे अलबेरुनीका मत भी सिद्ध हो जाता है[४]।

लेख।

इन (गुप्तों) के २४ के करीब लेख मिले हैं। इन लेखोंकी लिपि ब्राह्मी और भाषा संस्कृत है।

सिक्के।

इन राजाओंके सोने, चाँदी, और ताँबेके सिक्के मिलते हैं। परन्तु अब तक विशेष संख्यामें सोनेके सिक्के ही मिले हैं। इनका सुवर्ण अशुद्ध

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, (१९१७) पृ० २९२–२९३।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी (१९१७) पृ० २८७–२९६, और इण्डियन ऐण्टिक्वेरी (१९१८), पृ० १६–२२।

(३) गुप्तानां समतिक्रांते सप्तपंचाशदुत्तरे।
शते समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति॥
—इण्डियन ऐण्टिक्वेरी (१९१७), पृ० २९२।

(४) अलबेरुनीका भारत (अरबी) प्रकरण ४९, पृ० २०५–६।

होता है। यह अशुद्धता भिन्न भिन्न प्रकारके सिक्कोंमें भिन्न भिन्न प्रमाणमें मिली होती है और इनका तोल भी भिन्न भिन्न ही होता है।

सुवर्णके सिक्कोंका वर्णन।

गरुडध्वजाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ टोपी, कोट और पायजामा पहने तथा भूषणोंसे सुसज्जित राजाकी खड़ी मूर्ति बनी होती है। इस मूर्तिके बायें हाथमें ध्वजा और दायें हाथमें अग्निकुण्डमें डालनेके लिये आहुति होती रहती है। इसी दायें हाथके नीचे अग्निकुण्ड बना होता है; जिसके पीछे दूसरी ध्वजा होती है। इस ध्वजा पर गरुड़ बैठा होता है। उलटी तरफ़ वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित तख़्त पर बैठी हुई लक्ष्मीकी मूर्ति बनी होती है; जिसके एक हाथमें कमल होता है। इस मूर्तिके पैरोंके नीचे भी कमल बना होता है।

धनुर्धराङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ पूर्वोक्त सिक्केकी तरह ही सुसज्जित राजा खड़ा होता है। इसके बायें हाथमें धनुष और दायें हाथमें तीर होता है। इसके पास गरुड़वाली ध्वजा भी बनी होती है। किसी किसी सिक्केमें पैरोंके पास रक्खे तरकससे (दायें हाथसे) तीर निकालता हुआ राजा बना होता है और बाकीकी वस्तुएँ सब पूर्ववत् ही होती हैं। उलटी तरफ़ गरुड़ध्वजाङ्कित सिक्केके समान ही लक्ष्मी बनी होती है। किसी किसीमें तख़्त पर बैठी हुई लक्ष्मीके बजाय कमलासीना लक्ष्मी बनी होती है।

विवाहबोधक—इनमें सीधी तरफ़ पूर्ववत् वस्त्राभूषणोंसे सज्जित राजा (चन्द्रगुप्त प्रथम) और रानी (कुमारदेवी) खड़े होते हैं। राजाके बायें हाथमें ध्वजा होती है; जिस पर अर्ध चन्द्रकी आकृति बनी होती है और दायें हाथमें, सामने खड़ी रानीके देनेके लिये

विवाह-मुद्रिका होती है। उलटी तरफ़ सिंह पर बैठी देवीकी मूर्ति बनी होती है; जिसके पैरोंके नीचे कमल बना होता है।

परशुधराङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ वस्त्राभूषणोंसे भूषित राजाकी मूर्ति बनी होती है; जिसकी कमरमें खड्ग बँधा होता है। राजाके बायें हाथमें परशु रहता है और दायाँ हाथ जाँघ पर रक्खा होता है। इसीके पास एक बालक खड़ा होता है और उसके पीछे पूर्ववत् चन्द्राङ्कित ध्वजा बनी होती है। उलटी तरफ़ तख़्त पर बैठी लक्ष्मी होती है, जिसके पैरोंके नीचे कमल होता है।

काचाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ राजा खड़ा होता है। इसके बायें हाथमें ध्वजा होती है; जिस पर चक्रका चिह्न बना होता है और दायें हाथमें आहुति होती है। राजाकी बाईं भुजाके नीचे ' काच ' लिखा रहता है। उलटी तरफ़ हाथमें कमल लिये लक्ष्मी खड़ी होती है।

व्याघ्रवधाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ वस्त्राभूषणोंसे भूषित (धनुषसे) तीर चलाता हुआ राजा बना होता है, जिसके सामने उछलता हुआ व्याघ्र होता है और व्याघ्रके पीछे चन्द्राङ्कित ध्वजा बनी होती है। किसी किसी सिक्केमें राजाका एक पैर व्याघ्र पर रक्खा हुआ होता है। उलटी तरफ़ मगर पर खड़ी गङ्गाकी मूर्ति बनी होती है। इसके बायें हाथमें कमल होता है और (खाली) दायें हाथके पीछे चन्द्राङ्कित ध्वजा होती है। किसी किसीमें कमल पर खड़ी देवी (कौमारी) की तसबीर बनी होती है। इसके बायें हाथमें कमल होता है, जो पीछेकी तरफ़ किया हुआ होता है और दायें हाथमें सामने खड़े मोरके लिये दाना होता है।

वीणाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ वस्त्राभूषणोंसे सज्जित और तख़्त

अशोक के समय के ब्राह्मी अक्षरों का नक्शा।

नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर	नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर
अ	𑀅	ज	𑀚
आ	𑀆	ट	𑀝
इ	𑀇	ड	𑀟
उ	𑀉	ढ	𑀠
ए	𑀏	ण	𑀡
क	𑀓	त	𑀢
ख	𑀔	थ	𑀣
ग	𑀕	द	𑀤
घ	𑀖	ध	𑀥
ङ	𑀗	न	𑀦
च	𑀘	प	𑀧
छ	𑀙	फ	𑀨

पृष्ठ २२७ का आगे (क)

गुप्तोंके समयके ब्राह्मी अक्षरोंका नकशा ।

नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर	नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर
स्क		हो	
स्त्रे			
स्थि			
स्य			
स्ये			
स्व			
हा			
हि			
ही			
हु			
हू			
हे			

पर बैठा हुआ राजा होता है। इसके हाथमें वीणा होती है। इसका दायाँ पैर पावदान पर रक्खा हुआ और बायाँ पैर दायें पैर पर लटकता हुआ होता है। उलटी तरफ़ मौंढ़े पर बैठी हुई लक्ष्मी बनी होती है। इसके दायें हाथमें छोटीसी रस्सी और बायें हाथमें गुलदस्ता होता है।

आश्वमेधिक—इनमें सीधी तरफ़ यूप (यज्ञस्तम्भ) के पास खड़ा हुआ घोड़ा होता है और यूप परकी ध्वजा घोड़ेकी पीठ पर उड़ती हुई बनी होती है। उलटी तरफ़ रानी खड़ी होती है। इसके दायें हाथमें (कंधे पर रक्खा हुआ) चँवर रहता है और बायाँ हाथ नीचेको लटकता हुआ होता है। दायीं तरफ़ सामने ध्वजायुक्त बल्लम (भाला) गड़ा रहता है।

सिंहासनस्थ नृपाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ सुसज्जित राजा तख़्त पर बैठा हुआ होता है। इसका दायाँ हाथ ऊपर उठा हुआ होता है, जिसमें पुष्प रहता है और बायाँ हाथ तख़्तके किनारे पर रक्खा हुआ होता है। उलटी तरफ़ तख़्त पर बैठी हुई लक्ष्मी बनी होती है। इसके बायें हाथमें और पैरोंके नीचे कमल होते हैं।

छत्रधराङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ खड़ी राजाकी आकृति बनी होती है। इसका बायाँ हाथ कमरसे बँधी हुई तलवारके कब्ज़ेपर रक्खा होता है और दायें हाथमें नीचे बने अग्निकुण्डके लिये आहुति होती है। राजाके पीछे एक नौकर बना होता है, जिसके हाथमें छत्र होता है। उलटी तरफ़ कमल पर खड़ी लक्ष्मी बनी होती है। इसके एक हाथमें रस्सी और दूसरेमें कमलपुष्प होता है।

सिंहवधाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ धनुष तानकर तीर चलाते हुए

राजाकी तसवीर बनी होती है, जिसके सामने उछलता हुआ सिंह बना होता है। किसी किसीमें तीर सिंहके पेटमें घुसा हुआ दिखता है, किसी किसीमें राजाका एक पैर सामनेके उछलते हुए सिंहपर रक्खा हुआ होता है और किसी किसीमें राजाके दायें हाथमें धनुष और बायें हाथमें तीर बना होता है, तथा सामने उछलता हुआ सिंह होता है। उलटी तरफ़ सिंहपर बैठी हुई अम्बिका देवीकी तसवीर बनी होती है। किसी किसीमें देवीके नीचे चलता हुआ सिंह बना होता है। इसी प्रकारके सिक्कोंमें ऐसा भी सिक्का मिला है, जिस पर सीधी तरफ़ राजाके ऊपर उठे हुए हाथमें धनुषके बदले खड्ग होता है और सामने पूर्वोक्त सिक्केकी तरह उछलता हुआ सिंह बना होता है। उलटी तरफ़ पूर्ववत् सिंहपर बैठी अम्बिकाकी आकृति बनी होती है।

अश्वारोह्यङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ कसे कसाये घोड़े पर बैठी राजाकी प्रतिमा बनी होती है। राजाके हाथमें बल्लम, तलवार या धनुष होता है। किसी किसी सिक्केमें उक्त शस्त्रोंमेंसे दो शस्त्र भी होते हैं। उलटी तरफ़ मौंढेपर बैठी हुई देवीकी आकृति बनी होती है। इसके एक हाथमें रस्सी और दूसरेमें नालसहित कमलका पुष्प होता है।

किसी किसीमें सामने खड़े मोरको फलादिक खिलाती हुई देवी (कौमारी) की तसवीर बनी होती है; जिसका एक हाथ कमरपर रक्खा हुआ होता है।

खड्गधराङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ सुसज्जित राजा खड़ा होता है। इसका बायाँ हाथ कमरसे बँधी तलवारकी मूठपर होता है और दायें हाथमें आहुति होती है। इसी हाथके पीछे गरुड़ध्वज भी बना होता है। उलटी तरफ़ कमलासीना लक्ष्मी बनी होती है।

मयूराङ्कित—इनमें दायें हाथमें फलोंकी टहनी लिये और बायें हाथको पीछेकी तरफ़ किये हुए राजाकी मूर्ति बनी होती है। राजाके सामने एक मोर बना होता है, जो उक्त दायें हाथकी टहनीके फल खाता हुआ होता है। किसी किसीमें राजा थोड़ासा आगेकी तरफ़ झुका हुआ होता है और उसका दायाँ हाथ खाली होता है। उलटी तरफ़ मोरपर बैठे कार्तिकेय (कुमार) की मूर्ति होती है। इसके दायें हाथमें आहुति और बायेंमें बल्लम होता है।

प्रतापाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ दो (खड़ी हुई) स्त्रियोंके बीच एक पुरुष खड़ा होता है। इसके पीछे गरुड़ध्वज रहता है। तथा उक्त दोनों स्त्रियाँ अपने हाथ उठाकर बीचवाले पुरुषसे कुछ कहती हुई प्रतीत होती हैं। उलटी तरफ़ कमलपर बैठी लक्ष्मी बनी होती है। इसका बायाँ हाथ कमर पर रक्खा हुआ होता है और दायाँ हाथ ऊपरको उठा हुआ होता है, जिसमें कमल होता है।

गजारोह्यङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ चलते हुए हाथी पर, दायें हाथमें अंकुश लिये राजा बैठा होता है और राजाके पीछे छत्र लिये एक आदमी भी होता है। उलटी तरफ़ कमल पर लक्ष्मी बनी होती है। इसके दोनों हाथोंमें कमल होते हैं।

लक्ष्म्यङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ बीचमें गरुड़ध्वज बना होता है। इसके दायें बायें क्रमशः राजा (स्कन्दगुप्त) और लक्ष्मी खड़े होते हैं। राजाके एक हाथमें धनुष होता है और दूसरा हाथ कमर पर रक्खा रहता है। इसी हाथमें तीर भी होता है। लक्ष्मीका दायाँ हाथ ऊपरको उठा हुआ और बायाँ हाथ नीचेको लटकता हुआ होता है। उलटी तरफ़ कमलासीना लक्ष्मी बनी होती है।

सिंहाश्वारोह्यङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ घोड़े पर चढ़े हुए राजाकी मूर्ति बनी होती है। राजाके दायें हाथका खड्ग सामनेके उछलते हुए सिंहके मुखमें घुसा हुआ होता है। तथा राजाके कन्धे पर लटकता हुआ धनुष होता है और घोड़ेके मस्तकके पीछे गरुड़ध्वज होता है। उलटी तरफ़ कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी बनी होती है।

परिचारिकाद्वयाङ्कित अथवा राजलीलाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ तख्त पर बैठा हुआ राजा बना होता है और तख्तके दोनों तरफ़ दो स्त्रियाँ खड़ी होती हैं। उलटी तरफ़ कमल पर बैठी लक्ष्मी बनी होती है।

वृषभाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ बैल होता है। उलटी तरफ़ कमल पर बैठी लक्ष्मी बनी होती है।

गुप्तमुद्रानुकारी वङ्गदेशीयमुद्रा—इनमें सीधी तरफ़ राजा खड़ा होता है। इसके बायें हाथमें धनुष और दायें हाथमें तीर होता है। इस (राजा) की बाईं तरफ़ छोटासा घोड़ा और दाईं तरफ़ ध्वजा बनी होती है। किसी किसी सिक्के पर घोड़ा नहीं होता। उलटी तरफ़ लक्ष्मी खड़ी होती है। तथा दोनों तरफ़की उक्त आकृतियाँ बिन्दुओंके वृत्तके बीचमें होती हैं।

चाँदीके सिक्कोंका वर्णन।

क्षत्रपानुकारी गरुडाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ क्षत्रपोंके सिक्कोंकी तरह राजाका मस्तक बना होता है और कहीं कहीं ग्रीक अक्षरोंके चिह्न पाये जाते हैं। उलटी तरफ़ बीचमें (चैत्यकी जगह) पर फैलाये हुए गरुड़ बना होता है; जिसके चारों तरफ़ लेख लिखा रहता है। किसी किसी सिक्केमें गरुड़के पास ही सात बिन्दुओंका तारा-

मण्डल और ०८ सूर्य तथा चन्द्रके चिह्न बने होते हैं। किसी किसीमें गरुड़के दोनों बाजुओंके नीचे मनुष्यके हाथोंके चिह्न भी होते हैं।

वृषभाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ राजाका मस्तक बना होता है। उलटी तरफ़ बैलकी आकृति बनी होती है।

अग्निकुण्डाङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ राजाका मस्तक होता है। उलटी तरफ़ अग्निकुण्डकी आकृति बनी होती है।

मयूराङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ राजाका मस्तक होता है और उलटी तरफ़ नाचते हुए मोरकी आकृति बनी होती है।

ये सब चाँदीके सिक्के आकार प्रकारमें क्षत्रपोंके सिक्कोंसे मिलते हुए होते हैं।

चाँदीके मुलम्मेवाले सिक्कोंका वर्णन।

गरुडाङ्कित—इन पर भी सीधी तरफ़ राजाका मस्तक और ग्रीक अक्षरोंके चिह्न होते हैं। उलटी तरफ़ गरुड़ बना रहता है।

ताँबेके सिक्कोंका वर्णन।

गरुडाङ्कित (चंद्रगुप्त द्वितीय)—इनमें सीधी तरफ़ किसीमें छाती तककी, किसीमें कमर तककी और किसीमें गुठनों तककी राजाकी मूर्ति बनी होती है। कुछ सिक्के ऐसे भी मिले हैं, जिनमें राजाके पीछे छत्र लिये एक नौकर भी खड़ा होता है। किसी किसी सिक्केमें राजाके हाथमें आहुति और किसी किसीमें पुष्प भी होता है। उलटी तरफ़ पर फैलाये गरुड़ पक्षी बना होता है। ये सिक्के छोटे बड़े कई प्रकारके मिलते हैं।

गरुडाङ्कित (कुमारगुप्त प्रथम)—इनमें सीधी तरफ़ वस्त्राभूषणोंसे भूषित राजा खड़ा होता है। इसका बायाँ हाथ कमर पर होता है

और दायें हाथमें आहुति होती है। उलटी तरफ़ पर फैलाये गरुड़ बना होता है। ये सिक्के दिखनेमें भद्दे प्रतीत होते हैं।

अग्निकुण्डाङ्कित (कुमारगुप्त प्रथम)—इनमें सीधी तरफ़ अग्निकुण्ड होता है। उलटी तरफ़ सिंहपर बैठी देवी बनी होती है।

कलशाङ्कित (चन्द्रगुप्त द्वितीय और हरिगुप्त)—इनमें सीधी तरफ़ पुष्पयुक्त कलश बना होता है। उलटी तरफ़ राजाका नाम लिखा रहता है।

इस प्रकारके चन्द्रगुप्त द्वितीयके सिक्कोंमें यह विशेषता है कि उनमें नामके ऊपर अर्धचन्द्र बना होता है।

सिक्कोंकी विशेष बातें।

गुप्त राजाओंके सोने चाँदी और ताँबेके सिक्कोंका साँचा तो बड़ा होता था, परन्तु सिक्का छोटा ही रक्खा जाता था। यही रीति मुसलमान बादशाहों और बहुतसे देशी राज्योंके सिक्कोंमें मिलती है। साँचेसे सिक्केके छोटे होनेके कारण उस पर पूरा लेख नहीं छप सकता। किसी सिक्केमें लेखका कोई भाग छपता है और किसीमें कोई। इसी प्रकार किसी सिक्केमें दोनों तरफ़के किनारेका बिन्दुओंका वृत्त छप जाता है और किसी पर नहीं छपता। लोगोंका ख़याल है कि उपर्युक्त कारणोंसे नकली सिक्के नहीं बन सकते। क्योंकि सिक्कोंमें साँचेके प्रत्येक अक्षरों व चिह्नोंके न छपे होनेके कारण नकल करनेमें अवश्य ही कुछ न कुछ त्रुटि रह जाती है, जिससे नकली सिक्का पहचाना जा सकता है।

इन (गुप्त) राजाओंके सिक्कोंके साँचोंमें भी दोनों (सीधी और उलटी) तरफ़ किनारोंपर बिन्दुओंके वृत्त रहते हैं और इन्हींके मध्य लेख और आकृतियाँ बनी होती हैं। परन्तु सिक्कोंके साँचेसे छोटे रहनेके कारण किसी पर तो ये वृत्त छपे मिलते हैं और किसीपर नहीं।

इतिहास ।

१ गुप्त ।

[ई० स० २७५–३०० (वि० सं० ३३२–३५७)]

इस वंशके राजाओंके लेखोंमें सबसे पहला नाम महाराज गुप्तका ही मिलता है । इसके नामके साथ केवल महाराजकी उपाधि ही लगी होनेसे अनुमान होता है कि यह साधारण राजा था[1] । इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी और इसीके आसपासके प्रदेश पर इसका अधिकार था ।

विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि इस राजाका नाम 'श्रीगुप्त' था। क्योंकि 'गुप्त' का अर्थ रक्षा किया हुआ है । इस लिये केवल 'गुप्त' शब्दसे पूरा अर्थ नहीं निकलता । परन्तु यदि इसको 'श्रीगुप्त' मान लें तो इसका अर्थ (श्रिया गुप्तः=श्रीगुप्तः) लक्ष्मीसे रक्षा किया हुआ होगा और फिर इसमें किसी शब्दकी अपेक्षा नहीं रहेगी ।

चीनी यात्री इत्सिंगने जो कि ई० स० ६७१–६९५ (वि० सं० ७२८–७५२) तक भारतमें था, अपनी पुस्तकमें महाराज श्रीगुप्तका वर्णन किया है । उसने लिखा है कि उक्त राजाने चीनी यात्रियोंके लिये मृगशिखावनके पास एक मन्दिर बनवाया था और उसके खर्चके लिये २४ गाँव दिये थे । उस मन्दिरका निर्माण इत्सिंगके भारतमें आनेसे करीब ५०० वर्ष पूर्व हुआ था और इत्सिंगके समय वह भग्नावस्थामें था ।

परन्तु फ्लीटके मतानुसार इस राजाका नाम गुप्त ही था । उनका कथन है कि 'श्री' शब्द केवल इज्ज़तके लिये ही लगाया जाता था । हमारी समझमें भी यही मत ठीक प्रतीत होता है । क्यों कि

(१) फ्लीटका कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, पृ० १५, नोट ४ ।

इस प्रकारके और भी बहुतसे उदाहरण मिलते हैं। प्रसिद्ध भिक्षु उपगुप्तके पिताका नाम भी गुप्त था[1]। रापसन साहबको एक मुहर मिली थी[2]। उस पर 'गुत्तस्य' लिखा हुआ है जो 'गुप्तस्य' शब्दका प्राकृत मिश्रित संस्कृत रूप है। डाक्टर होर्नले साहबके पास भी एक मिट्टीकी मुहर है[3] उस पर भी 'श्रीर्गुप्तस्य' लिखा हुआ है।

फ्लीट साहब इत्सिंगके वर्णन किये हुए श्रीगुप्तको और इस गुप्तको एक नहीं मानते[4]। उनका कहना है कि, इत्सिंगके लेखानुसार उसके वर्णित 'श्रीगुप्त' का समय ई० स० १७५ (वि० सं० २३२) के निकट आता है। परन्तु उपर्युक्त गुप्तका समय ई० स० ३१९–२० (वि० सं० ३७६–७७) के निकट होना चाहिये। अतः इन दोनों राजाओंके बीच १४५ वर्षका अन्तर आनेसे ये दोनों भिन्न भिन्न राजा होंगे। परन्तु बहुतसे विद्वान् फ्लीटके उक्त मतसे सहमत नहीं हैं[5]। उनका कथन है कि उक्त चीनी यात्रीने जो कुछ भी पहलेका वृतान्त लिखा है वह सब दन्तकथाओंके आधारपर लिखा है। अतः सम्भव है कि दन्तकथाओंके कारण ही उसके समय लिखनेमें गलती हुई हो।

दूसरी बात वे यह भी कहते हैं कि जब इत्सिंगवर्णित श्रीगुप्तके राज्यका भी पाटलिपुत्रके निकट होना ही पाया जाता है, तब इतने थोड़े समयमें एक ही राज्यपर एक ही नामके दो भिन्न वंशी राजा-

(१) दिव्यावदान (कॉवेल और नील द्वारा संपादित), पृ० ३४८।
(२–३) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१९०५) पृ० ८१४, प्लेट ६, २३ और (१९०१) पृ० ९९। (४) फ्लीटका कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० ८–९, नोट ३। (५) कैटलॉग ऑफ दि कौइन्स ऑफ गुप्तडाइनैस्टी, (इन्ट्रोडकशन) पृ० १५।

आकों होना माननेमें नहीं आता और यदि आप इत्सिगके श्रीगुप्तको इस गुप्तका पूर्वज माननेका विचार करें तो भी प्रमाणाभावसे सफल मनोरथ नहीं हो सकते। क्यों कि यदि ऐसा होता तो इनकी किसी न किसी वंशावलीमें तो उसका नाम अवश्य लिखा मिलता। अतः ये दोनों भिन्न भिन्न न होकर एक ही प्रतीत होते हैं।

विन्सैण्ट स्मिथने इसका समय ई० स० २७५ से ३०० (वि० सं० ३३२ से ३५७) निश्चित किया है[1]। यह करीब करीब ठीक ही मालूम होता है। इसके पुत्रका नाम घटोत्कच था।

२ घटोत्कच।

[ई० स० ३००–३२० (वि० सं० ३५७–३७७)।]

यह महाराज गुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी था। वैशालीसे एक मुहर मिली है। उस पर 'श्रीघटोत्कचगुप्तस्य' लिखा है। डाक्टर ब्लोचं[2] और विन्सैण्ट स्मिथ[3] इसे उक्त राजाकी ही खयाल करते हैं। परन्तु गुप्तोंके किसी भी लेखमें इस राजा (घटोत्कच) का नाम 'घटोत्कच गुप्त' न लिखा मिलनेसे और मुहरमें नामके आगे केवल 'श्री' ही लगा होनेसे इसे महाराज घटोत्कचकी मुहर समझना अनुचित मालूम होता है। सम्भवतः यह घटोत्कच गुप्त इसी वंशका और कुमारगुप्त प्रथमका पुत्र या छोटा भाई होगा। क्योंकि इस मुहरके साथ ही बहुत सी अन्य मुहरें भी मिली हैं। उनमें एक मुहर ध्रुवदेवीकी भी है। यह ध्रुवदेवी चन्द्रगुप्त द्वितीयकी रानी थी। इससे अनुमान होता

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी (१९०२) पृ० २५८। (२) रिपोर्ट ऑफ़ दि आर्कियो लॉजिकल सर्वे ऑफ़ इण्डिया (१९०३–४) पृ० १०२। (३) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१९०५) पृ० १५३।

है कि ये सब मुहरें उसी समयके आसपासकी हैं। इसका विशद विवरण कुमारगुप्तके इतिहासमें मिलेगा।

घटोत्कचका समय ई० स० ३००–३२० (वि० सं० ३५७–३७७) के बीच होना चाहिये[1]। इसके पुत्रका नाम चन्द्रगुप्त था।

३ चन्द्रगुप्त (प्रथम)।

ई० स० ३२०–३३५ (वि० सं० ३७७–३९२)।

यह घटोत्कचका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके वंशजोंके लेखोंमें इसकी उपाधि ' महाराजाधिराज ' लिखी है। इसका विवाह लिच्छवि वंशकी कुमारदेवीसे हुआ था। विन्सैण्ट स्मिथके मतानुसार इस (विवाह) का समय ई० स० ३०८ (वि० सं० ३६५) के निकट होना चाहिये[2]।

लेखोंमें कुमारदेवीके नामके आगे ' **महादेवी** ' की उपाधि लगी है। इस (कुमारदेवी) के पुत्र समुद्रगुप्तके लेखोंमें और उसके उत्तराधिकारियोंके लेखोंमें भी समुद्रगुप्तको ' **लिच्छविदौहित्रः** ' (लिच्छवियोंकी कन्याका पुत्र) लिखा है।

इस (चन्द्रगुप्त प्रथम) के समयके एक प्रकारके (विवाहबोधक) सिक्के मिलते हैं। इन पर एक तरफ़ राजा चन्द्रगुप्त प्रथम और उसकी रानी कुमारदेवी खड़ी होती है। इनके निकट ही इनके नाम भी लिखे होते हैं। दूसरी तरफ़ सिंह पर बैठी हुई अम्बिकादेवीकी तसवीर बनी होती है और एक तरफ़ ' **लिच्छवियः** ' लिखा रहता है।

इन बातों पर विचार करनेसे अनुमान होता है कि लिच्छविवंशके साथके सम्बन्धको गुप्तवंशी राजा बड़े सौभाग्यकी बात समझते

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी (१९०२) पृ० २५८।

(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २७९।

थे । इसी कारण समुद्रगुप्त और उसके वंशजोंने चन्द्रगुप्तके इस सम्बन्धको बड़े गर्वके साथ प्रकट किया है ।

मि० एलन इन सिक्कोंको समुद्रगुप्तके समयके अनुमान करते हैं ।

विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि चन्द्रगुप्त प्रथमके समय पाटलिपुत्र पर शायद लिच्छविवंशका अधिकार होगा और उन्होंने (लिच्छवियोंने) ही अपनी कन्याके विवाहोपलक्ष्यमें इस नगरको चद्रगुप्तको दे दिया होगा[1] । परन्तु स्मिथ साहबका यह अनुमान समझमें नहीं आता। क्योंकि एक तो चीनी यात्री इत्सिगके लेखसे विदित होता है कि महाराज गुप्तके समयसे ही पाटलिपुत्र गुप्तोंके अधिकारमें था, और दूसरे चन्द्रगुप्त प्रथमके ' महाराजाधिराज ' की उपाधि ग्रहण करनेसे सिद्ध होता है कि यह (चन्द्रगुप्त प्रथम) स्वयं प्रतापशाली राजा था । इसने पड़ोसके राज्योंको जीत कर अपने राज्यकी वृद्धि की थी । सम्भव है पहले पहल इसने अपने पड़ोसके वैशाली राज्य पर ही हमला किया हो और उस समय इसके साथ मेल करनेके लिये ही लिच्छवियोंने अपनी कन्या कुमारदेवीसे इसका विवाह कर दिया हो । अतः हमारी समझमें समुद्रगुप्त आदिका लिच्छविवंशियोंके साथके अपने सम्बन्धको बार बार प्रकट करना केवल उस वंशके प्राचीन गौरवके कारण ही मालूम होता है ।

लिच्छविवंशका वर्णन पुराणोंमें नहीं मिलता। इसका कारण शायद यह होगा कि उस समय ब्राह्मण लोग मगध और नेपालके क्षत्रियोंको पतित समझते थे । क्यों कि ये क्षत्रिय बौद्ध और जैन धर्मोंके अनुयायी थे । इन नेपालवालोंने ई० स० १११ (वि० सं० १६८) से अपना संवत् भी चलाया था[2] ।

---

(१) अली ' हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ' पृ० २६५–२६६ ।

(२) लेवी, ली नेपाल, जिल्द १, पृ० १४, और जिल्द २, पृ० १५३

यद्यपि लेखादिकोंसे चन्द्रगुप्तके राज्यविस्तारका कुछ भी पता नहीं चलता। तथापि अनुमानसे ज्ञात होता है कि उस समय इसका राज्य प्रयागसे पाटलिपुत्र तक था। वायुपुराणमें एक स्थान पर गुप्तोंके राज्यका विस्तार इस प्रकार लिखा है[1]:—

अनुगङ्गाप्रयागं च साकेतं मगधान्स्तथा।
एताञ्जनपदान्सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः॥

अर्थात् गङ्गाके आसपासके देशोंको, प्रयागको, साकेतको और मगध देशको गुप्तवंशी राजा भोग करेंगे।

सम्भवतः यह इसी (चन्द्रगुप्त प्रथम) के राज्यका वर्णन हो तो आश्चर्य नहीं। इसीने अपने राज्यारोहण दिवससे गुप्त-संवत् प्रचलित किया था और इसके करीब १५ वर्ष बाद इसकी मृत्यु हुई थी।

जोहन एलन साहबने इसका २५ वर्ष राज्य करना लिखा है। परन्तु स्वयं उन्हींके लेखके पूर्वापर सम्बन्धको देखनेसे इसमें १० वर्ष की ग़लती माळूम होती है[2]।

मि० स्मिथने इसका राज्यकाल ई० स० ३२० से ३३० (वि०सं० ३७७ से ३८७) तक माना है। उन्होंने लिखा है कि यह राजा सांख्य-मतका अनुयायी था। परन्तु अपने अन्तिम समयमें बौद्ध भिक्षु वसुबन्धुकी उक्तियोंको भी बड़े प्रेमसे सुना करता था। इसने अपने पुत्र समुद्रगुप्तको भी वसुबन्धुसे शिक्षा दिलवाई थी। परन्तु हमारे मतसे वसुबन्धुका विक्रमादित्य (पुरुगुप्त) और उसके पुत्र बालादित्य (नरसिंह गुप्त) के समय होना ही ठीक प्रतीत होता है। क्यों कि इन्हींके

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (१९०२), पृ० २५८, नोट ७।
(२) कैटलॉग ऑफ़ गुप्त डाइनैस्टी (इण्ट्रोडक्शन) पृ० २० और ३२।

समयके निकट ई० सं० ५४६ और ५६९ के बीच परमार्थने वसुबन्धुका जीवनचरित लिखा था। इसमें इसको उक्त राजाओंका समकालीन ही लिखा है। मि० विन्सैण्ट स्मिथने पेरी आदि विद्वानोंके अनुमानके आधार पर इनका चन्द्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्तके समय होना लिख दिया है। उक्त विद्वानोंको अनुमान है कि वसुबन्धुके बनाये हुए ग्रन्थोंका अनुवाद ई० स० ४०४ के करीब चीनी भाषामें किया गया था। अतः यह ई० स० २८० से ३६० के मध्य चन्द्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्तका समकालीन था। परन्तु यह अनुमान ही है। अब तक इसका कोई पूरा प्रमाण नहीं मिला है। दूसरा उक्त वसुबन्धुके समकालीन परमार्थके लेखसे इस बातका खण्डन हो जाता है।

परमार्थने उसे विक्रमादित्य और बालादित्यका समकालीन लिखा है। ये उपाधियाँ चन्द्रगुप्त और समुद्रगुप्तके नामके साथ कहीं भी नहीं मिली हैं। वास्तवमें ये उपाधियाँ पुरगुप्त और नरसिंहगुप्तकी ही थीं।

मेहरौली (देहलीसे नौ मील दक्षिण) से एक लेख[1] मिला है। यह कुतुबमीनारके पासके रायपिथोराके पुराने किलेमेंके लोहस्तम्भ पर खुदा है। इसमें राजा चन्द्रका बङ्ग देशमें एकत्रित हुए शत्रुओंको जीतना, सिन्धु नदीको पारकर बाल्हीकोंको हराना और विष्णुपद पहाड़ी पर विष्णुध्वज (इस स्तम्भ) का स्थापन करना लिखा है।

मि० विन्सैण्ट स्मिथके मतानुसार यह लेख चन्द्रगुप्त द्वितीयका ही है। यदि यह अनुमान ठीक हो तो इस राजाकी विजय-यात्राका पश्चिममें सिन्धुके उस पार तक होना सिद्ध होता है और बङ्ग देशके राजाओंसे इसके पिता द्वारा जीते गये राजाओंका तात्पर्य निकलता

---

(१) कौर्पस इन्स्क्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० १३९।

है। क्योंकि चन्द्रगुप्तको दूसरी तरफ़की युद्धयात्रामें लगा हुआ देखकर शायद उन लोगोंने उस समयको इसकी अधीनतासे निकल जानेका मौका समझा होगा। उक्त लेखके बाह्लीक शब्दका अर्थ बलख़ होता है, किन्तु यहाँपर इस शब्दसे शायद किसी वैदेशिक शक्तिका तात्पर्य हो; क्योंकि मि० जोहन एलनके मतानुसार चन्द्रगुप्तका वहाँ (बलख़) तक जाना सिद्ध नहीं होता और न बलख़का रास्ता ही उधरसे था[1]।

बहुतसे विद्वान् उक्त लोहस्तम्भके लेखको पीछेका खुदा हुआ मानते हैं। उनका कहना है कि न तो इसमें अन्य गुप्त लेखोंकी तरह वंशावली ही दी है और न इसकी लेखशैली ही उनसे मिलती है।

होर्नले (Hoernle)[2] और विन्सैण्ट स्मिथ[3] इस लेखके अक्षरोंको पाँचवीं शताब्दीके प्रारम्भकालका मानते हैं और इस समयके किसी दूसरे चन्द्रनामक राजाका पता न मिलनेसे इसको चन्द्रगुप्त द्वितीयका ही समझते हैं। प्रिंसेप साहब इस लेखको तीसरी या चौथी शताब्दीका समझते हैं। परन्तु डाक्टर भाऊदाजी इसको गुप्तोंके पीछेका समझते हैं[4]। फ़्लीट साहबने इस लेखको चन्द्रगुप्त प्रथमके समयका अनुमान किया था। परन्तु इसमें उक्त राजाकी, उन भारतीय सीथियनों (Indo-scythians) पर प्राप्त की हुई विजयका (जिससे गुप्तवंशका राज्य स्थापित हुआ था) वर्णन न होनेसे उनका सन्देह पूरी तौरसे न मिटा।

फ़्लीट साहबका यह भी अनुमान है कि शायद यह लेख मिहिर-

---

(१) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स ऑफ़ गुप्त डाइनैस्टी, (इण्ट्रोडकशन) पृ० ३६। (२) इण्डियन ऐण्टिकेरी, जिल्द २१, पृ० ४३–४४।

(३) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २७५।

(४) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० १४०, नोट १।

कुलके छोटे भाईका हो[1]; क्योंकि यह लेख मेहरौली गाँवसे मिला है। मि० जोहन एलन भी इस विषयमें डाक्टर फ्लीटसे सहमत हैं[2]।

हरप्रसादशास्त्री इस लेखको चन्द्रवर्माका मानते हैं। इसका उल्लेख अशोकके इलाहाबादवाले स्तम्भमें किया गया है। यह समुद्रगुप्तके जीते हुए आर्यावर्तके नौ राजाओंमेंसे था। सुसुनिया पहाड़ीके लेखमें लिखा है[3]:—

"पुष्करणाधिपतेर्महाराजसिंहवर्म्मणः पुत्रस्य महाराजश्रीचन्द्रवर्म्मणः कृतिः।"

इससे प्रकट होता है कि यह चन्द्रवर्मा पौकरण (मारवाड़–राजपूतानामें) के राजासिंहवर्माका पुत्र था और इसने वहाँपर चक्रस्वामीके मन्दिरमें चक्र अर्पण किया था। इसीके आधारपर उक्त शास्त्रीजीने चन्द्रवर्माको बंगालका विजेता अनुमानकर मिहरौलीके स्तम्भपरके चन्द्रसे मिलाया है। परन्तु श्रीयुत राधागोविन्द बासकने उपर्युक्त मतोंका खण्डन करके उक्त लेखको चन्द्रगुप्त प्रथमका सिद्ध किया है[4]। उनका कथन है कि मन्दसोरसे मिले हुए नरवर्माके लेखसे[5] विदित होता है कि मालव संवत् ४६१ (ई० स० ४०४) में सिंहवर्माका पुत्र नरवर्मा मालवेका शासक था। इस कथनसे प्रकट होता है कि चन्द्रवर्मा नरवर्माका बड़ा भाई होगा; क्योंकि चन्द्रवर्माका उल्लेख समुद्र-

---

(१) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० १४०, नोट १।
(२) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स ऑफ़ गुप्त डाइनैस्टी (इण्ट्रोडकशन) पृ० ३८।
(३) ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १३, पृ० १३३।
(४) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, जिल्द ४८, पृ० ९८–१०१।
(५) ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १२, पृ० ३१५।

गुप्तके इलाहाबादके लेखमें आया है और नरवर्माके समय—मालव संवत् ४६१ (वि० सं० ४०४) में—चन्द्रगुप्त द्वितीयका राज्य था ।

एक तो यदि चन्द्रवर्माने बंगालपर विजय पाई होती तो इस बातका उल्लेख उसके या उसके उत्तराधिकारियोंके लेखोंमें अवश्य मिलता । परन्तु ऐसा न होनेसे यह (बंगविजयकी) बात ठीक प्रतीत नहीं होती । उपर्युक्त सुसुनिया पहाड़ीके लेखमें भी केवल चक्रदानका ही वर्णन है, अतः चन्द्रवर्मा वहाँपर केवल तीर्थयात्रार्थ ही गया होगा । दूसरे समुद्रगुप्तके विजित देशोंमें बंगालका वर्णन न होनेसे प्रतीत होता है कि यह प्रदेश उसे अपने पितासे मौरूसीमें ही मिला होगा । अतः इस प्रदेशका जीतनेवाला चन्द्रवर्मा या चन्द्रगुप्त द्वितीय न होकर चन्द्र गुप्त प्रथम ही था । दामोदरपुरसे मिले हुए ताम्रपत्रोंसे प्रकट होता है कि बंगालपर भी गुप्तोंका अधिकार था । तीसरे गुप्तवंशी राजाओंके नामोंके आगे परम भागवत लिखा होनेसे इनका वैष्णव होना निर्वि- वाद है । अतः चन्द्रवर्माके बदले चन्द्गुप्त प्रथमने ही उक्त विष्णुध्वज स्थापन किया होगा ।

विवाहसूचक सोनेके सिक्के ।

इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ ध्वजाके स्तम्भके दायें और बायें चीनी लेखप्रणालीकी तरह क्रमशः ‘ चन्द्रगुप्त ’ लिखा होता है और रानीके पीछे सीधी लेखनप्रणालीमें ‘ कुमारदेविश्रीः ’ लिखा रहता है । उलटी तरफ़ लक्ष्मीके वामपार्श्वमें ‘ लिच्छवयः ’ लिखा मिलता है ।

४ समुद्रगुप्त ।

ई० स० ३३५–३८० (वि० सं० ३९२–४३७)।

यह चन्द्रगुप्त प्रथमका पुत्र था और पिताके मरनेपर उसके

राज्यका अधिकारी हुआ। यद्यपि यह सबसे बड़ा पुत्र न था, तथापि इसके पिताने अपने सब पुत्रोंमें योग्यतम समझकर इसे अपना उत्तराधिकारी नियत कर दिया था। यह बात इसके लेखसे सिद्ध होती है। यह राजा बड़ा प्रतापी था और इसका राज्य भी भारतके आज तकके बहुत बड़े राज्योंमेंसे एक था।[1]

इसके समयके दो लेख मिले हैं। एक इलाहाबादके अशोकके स्तम्भ परसे[2] और दूसरा एरणसे[3]। इनमेंके पहले लेखमें पद्य और गद्य दोनों हैं। परन्तु दूसरेमें केवल पद्य ही हैं।

प्रथम लेखसे, जो कि अशोकके स्तम्भपर खुदा हुआ है, इस राजाका बहुतसा वृत्तान्त मिलता है। यह राजा स्वयं उत्तम कवि, विद्वान् और विद्वानोंका आश्रयदाता था। यह इतना गुणी था कि अपने सब पुत्रोंमें ज्येष्ठ न होने पर भी इसके पिता चन्द्रगुप्त प्रथमने इसीको अपना उत्तराधिकारी चुना था। इसकी वीरता और प्रतापके विषयमें हम उक्त लेखमेंसे ख़ास ख़ास बातें यहाँपर उद्धृत करते हैं। उसमें लिखा है:—

"इस (समुद्रगुप्त) ने सैकड़ों युद्धोंमें विजय प्राप्त की थी। इससे इसके समस्त शरीरमें शस्त्रोंके क्षत बन गये थे। इसने अपनी सेना द्वारा घेरकर कोटवंशी राजाको पकड़ लिया था और कोशलके[4]

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ३२८–३३४।

(२–३) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० १ और पृ० १८।

(४) कोशल देशके दो भाग थे। उत्तरी और दक्षिणी। उत्तरीसे अयोध्याका बोध होता था और दक्षिणीसे मध्यप्रदेशके दक्षिण पूर्वी भागका। यहाँपर सम्भवतः दक्षिण कोशलसे ही तात्पर्य है।

(अयोध्या) और मध्यप्रदेशके दक्षिण–पूर्वी भाग (अर्थात् रायपुर और छत्तीसगढ़के आसपासके देश) के राजा महेन्द्र, महाकान्तार (दक्षिण कोशलसे पश्चिमकी तरफ़का मध्यप्रदेशका जंगली हिस्सा) के राजा व्याघ्रराज, केरल (कावेरी नदीसे उत्तरका पश्चिमी घाटसे समुद्र तकका देश) के राजा मन्तराज, पिष्टपुर (मद्रास प्रान्तका गोदावरी परका पिट्ठापुरं) के राजा महेन्द्र, कोट्टूर (मद्रास प्रान्तका कोइंबटूरका प्रदेश) के राजा स्वामिदत्त, एरण्ड पल्ल (बंबई प्रान्तस्थ खानदेश जिलेका एरंडोल) के राजा दमन, काञ्ची (मद्रासप्रान्तस्थ काञ्जीवरं) के (पल्लव) राजा विष्णुगोप, अवमुक्तके राजा नीलराज, वेंगी (गोदावरी और कृष्णा नदियोंके बीचका पूर्वी समुद्रतटका देश) के राजा हस्तिवर्म, पलक्क (नालोर ज़िलेमें) के राजा उग्रसेन, देवराष्ट्र (महाराष्ट्र) के राजा कुबेर, कुस्थलपुरके राजा धनञ्जय आदि सब दक्षिणापथके[1] राजाओंको जीतकर उन्हें फिर अपने अपने राज्य पर स्थापित कर दिया। रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नन्दी, बलवर्मा आदि अन्य बहुतसे आर्यावर्त (विन्ध्याचल और हिमालयके बीचका देश) के राजाओंके राज्य छीन लिये[2]। सब आटविक (विन्ध्याचलसे उत्तरके जंगली देशके) राजाओंको अपना सेवक बनाया। समतट (गंगा और ब्रह्मपुत्राके बीचका

(१) दक्षिणापथ—नर्मदाके दक्षिणका देश।

(२) मिस्टर के. एन. दीक्षितने अपने लेखमें इन राजाओंके विषयमें इस प्रकार लिखा है:—

१ रुद्रदेव—यह सम्भवतः बुंदेलखण्डका वाकाटकवंशी रुद्रसेन प्रथम था। इसके पौत्र रुद्रसेन द्वितीयके साथ चन्द्रगुप्त द्वितीयकी कन्या

समुद्रके निकटका देश जैसोर कलकत्ता आदि), डवाक, कामरूप (आसामका एक भाग), नेपाल, कर्तृपुर (गढ़वाल, कमाऊँ और अलमोड़ाके पासका देश) आदि सीमाप्रान्तीय प्रदेशोंके राजाओंको और मालव, अर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, प्राभीर, प्रार्जुन सनकानिक, काक और खरपरिक आदि जातियोंको अपने अधीन कर उनसे कर वसूल किया । बहुतसे राज्यसे भ्रष्ट हुए राजवंशियोंको पुनः राजा बनाया और देवपुत्र, शाही, शाहानुशाही, शक, मरुण्ड और लङ्का आदि

प्रभावति गुप्ताका विवाह हुआ था । —इण्डियन ऐण्टिक्वेरी सन् १९१२, पृ० २१४–२१५ ।

२ मतिल और ३ नागदत्त—पूर्वी मालवा और राजपूतानाके थे । —इम्पीरियल गैज़ेटियर, जिल्द २, पृ० ३९ और जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी सन् १८९७, पृ० ८७६ ।

४ चन्द्रवर्मा—यह शायद सुसुनिआके लेखका पुष्करन(राजपूताना)का राजा होगा ।—प्रोसिडिंग्स ऑफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, सन् १८९५, पृ० १७७ ।

५ गणपति नाग—यह पद्मावती (गवालियर) का राजा था । —रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, जिल्द २, पृ० ३०९ ।

६ नागसेन—यह ऊपरी दोआबका था ।—जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी सन् १८९७, पृ० ८७६ ।

७ अच्युत—रुहेलखण्डका ।—जर्नल रोयल एशियाटिक सोसाइटी सन् १८९७, पृ० ८६२ ।

८ नन्दी—उत्तरी बंगालका ।

९ बलवर्मा—आसामके भास्करवर्माका पूर्वज ।—एपिग्राफ़िया इण्डिका जिल्द १२, पृ० ६५ ।

द्वीपवासियोंसे कन्याएँ और भेटें ग्रहण कीं[1] यह राजा गानविद्यामें बड़ा निपुण था (यह बात इसके वीणाङ्कित सिक्कोंसे भी बोध होती है) और इसने हज़ारों गायें दान की थीं। यह सदा दीन दुखियोंके दुःख दूर करनेमें तत्पर रहा करता था।"

इसी लेखमें इसकी माताका नाम कुमारदेवी लिखा है। यह लिच्छवि वंशकी कन्या थी। (विवाहबोधक सिक्कोंसे भी इस बातकी पुष्टि होती है।)

समुद्रगुप्तकी ऊपर लिखी इस दो तीन हज़ार मीलकी युद्धयात्रामें कमसे कम दो तीन वर्ष तो अवश्य ही लगे होंगे। विन्सैण्ट स्मिथके मतानुसार यह यात्रा ई० स० ३५० (वि० सं० ४०७) के करीब समाप्त हुई थी।

पूर्वोक्त लेखमें जितने राजाओंके नाम दिये हैं उन सबका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है। उक्त राजाओंमेंसे गणपति नाग सम्भवतः पद्मावती (नरवर) का राजा था। इसके सिक्के अब तक मिलते हैं।

मि० रापसनका अनुमान है कि, नागसेन भी पद्मावतीके नागकुलका ही था। हर्षचरितमें[2] लिखा है:—

"**नागकुलजन्मनः सारिकाश्रावितमन्त्रस्य आसीत् नाशो नागसेनस्य पद्मावत्याम्**"

अर्थात्—मैना (पक्षी) द्वारा कुछ गुप्त बातोंके प्रकट कर दिये जानेके कारण, पद्मावतीमें, नागसेन मारा गया था।

---

(१) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी सन् १८९८, पृ० ४४९।
(२) हर्षचरित (कलकत्ता) पृ० ४७४, नं० ६१।

इस स्थान पर बाणभट्टने नागसेनके लिये '**नागकुलजन्मनः**' लिखा है। यदि इसका अर्थ 'नागवंशका उत्तराधिकारी' करें तो यह नागसेन और उपर्युक्त (समुद्रगुप्तके) लेखमें वर्णित नागसेन एक नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा माननेसे बाणवर्णित नागसेन या तो गणपति नागका पूर्वज हो सकता है या वंशज। किसी हालतमें भी समकालीन नहीं हो सकता। परन्तु यदि इस पदका अर्थ केवल 'नागवंशमें उत्पन्न हुआ' करें तो ये दोनों नागसेन एक ही हो सकते हैं। क्यों कि ऐसा माननेसे नागसेन गणपतिनागका पूर्वज या उत्तराधिकारी न हो कर केवल नागकुलमें उत्पन्न हुआ उसका सम्बन्धी होनेके कारण समकालीन माना जा सकता है। मि० वी० ए० स्मिथ इसे मथुराके आसपासके शासक रामदत्त और पुरुषदत्तकी जातिका ही अनुमान करते हैं[1]।

विष्णुपुराणमें नौ नागोंका वर्णन है। वे शायद इस लेखमें लिखे हुए रुद्रदेव, मतिल आदि ये ही नौ राजा हों तो आश्चर्य नहीं।

अहिच्छत्रसे कुछ ताँबेके सिक्के मिले हैं। उनपर केवल 'अच्यु' पढ़ा जाता है। रापसन[2] और विन्सैण्ट स्मिथका[3] अनुमान है कि सम्भवतः ये सिक्के इसी लेखवाले अच्युतके हैं। यदि उनका यह अनुमान ठीक हो तो अच्युतका अहिच्छत्र पर राज्य करना सिद्ध होगा।

कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि बुलन्दशहरसे मिली हुई मुहरका

(१-२) जर्नल रॉयल ऐशियाटिक सोसायटी (१८९७) पृ० ८७६ और पृ० ४२०। (३) इण्डियन म्यूज़ियम कैटलॉग ऑफ़ कौइन्स, जिल्द १, पृ० १८५-१८६। (४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द १८, पृ० २८९।

मतिल और इस लेखका मतिल एक ही है। परन्तु अन्य कुछ विद्वान् इस अनुमानसे सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि उक्त मुहरमें मतिलके नामके आगे कोई उपाधि न होनेसे, वह (मुहर) किसी साधारण पुरुष विशेषकी है, राजाकी नहीं हो सकती।

फ़्लीट साहबके मतानुसार इस लेखके आटविक राजाओंसे आजकलके मध्यभारत (Central India) के राजाओंका तात्पर्य[1] है।

अपनी दक्षिणकी इस युद्धयात्रामें, कोशल, महाकान्तार, पिष्टपुर, केरल[2] और काञ्ची आदि देशोंको जीतता हुआ यह प्रतापी राजा (समुद्रगुप्त) पश्चिमकी तरफ़ मुड़ गया और उधरके पलक्क, देवराष्ट्र, और एरण्डपल्ल[3]के राजाओंको जीतता हुआ अपने राज्यको लौट आया।

इसके पूर्वोक्त लेखसे यह भी प्रकट होता है कि इसने पूर्व और उत्तरके सीमान्तप्रदेशके राजाओंको तथा पश्चिम और दक्षिण-पश्चिमकी अनेक जातियोंको जीतकर उनसे कर वसूल किया था। इन पूर्व और उत्तरके सीमान्त प्रदेशोंमेंसे पूर्वमें समतट (ब्रह्मपुत्राके मुहानेका प्रदेश) का राज्य था। उसके उत्तर देवाक (पूर्वी बंगाल), उसके आगे उत्तर-पूर्वमें कामरूप (आसाम) और उत्तरमें नेपाल व कर्तृपुर थे। यह कर्तृपुर, जलन्धरके पास कर्तारपुर नामसे अब तक प्रसिद्ध है। तथा पश्चिम और दक्षिण-पश्चिमकी अनेक जातियोंमेंसे उत्तर-पश्चिम (पंजाब) में यौधेय और मद्रक जातिके लोग थे। उनके दक्षिणमें मालव, अर्जुनायन और अभीर थे। दक्षिणमें प्रार्जुन,

---

(१) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० १३, नोट ७।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ६, पृ० ३, नोट ३।

(३) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, (१८९८) पृ० ३६८–३६९।

सनकानीक, काक और खरपरिक थे। इन पिछली जातियोंके निवास-स्थान शायद मालवा और मध्यप्रदेश हों।

समुद्रगुप्तके लेखमें यह भी लिखा है कि इसने बहुतसे राजाओंको जीत कर उन्हें फिर अपने अपने राज्यपर स्थापित कर दिया था, तथा शकादिकों और लङ्कावासियोंसे कर वसूल किया था। परन्तु स्पष्ट तौरसे नहीं कह सकते कि समुद्रगुप्तने वास्तवमें इन दक्षिणापथके राजाओंको जीता था, या इसके बढ़ते हुए प्रतापको देखकर उन लोगोंने स्वयं ही भेट वगैरा भेजकर इससे मैत्री करना उचित समझा था।

चीनी ऐतिहासिकोंने लिखा है[1] कि--"लंका द्वीपके राजाने समुद्रगुप्तको इस लिये भेट वगैरा भेजी थी कि उक्त राजाको लंकासे गये यात्रियोंके लिये बोध गयामें एक मठ बनवानेकी आज्ञा दी जाय। इस बातको समुद्रगुप्तने सहर्ष स्वीकार कर लिया था।" सम्भवतः इसीके आधारपर उक्त लेखमें लंकाआदि द्वीपवासियोंसे (इसका) भेट ग्रहण करना लिख दिया होगा।

इसने उत्तरमें शकों और देवपुत्रोंके राज्य तक चढ़ाई की थी। इन शकोंसे शायद सुराष्ट्रके पश्चिमी क्षत्रपोंका तात्पर्य होगा। परन्तु यह (समुद्रगुप्त) इनको पूरी तौरसे विजय न कर सका और अन्तमें इसके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीयने इस कामको पूरा किया।

उक्त लेखकी २३ वीं पंक्तिमें 'देवपुत्रशाहीशाहानुशाहीशकमरुण्डैः' लिखा है। ये सम्भवतः कुशान और शक राजाओंके प्रतिनिधि थे; जिन्होंने चार शताब्दी पूर्व भारतपर हमला किया था और

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, (१९०२) पृ० १९२-१९७,।

(२) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१८९७) पृ० ४०१,।

धीरे धीरे उत्तरी भारतके स्वामी बन गये थे। ई० स० २५० (वि० सं० ३०७) तक मगधपर भी इन्हींका अधिकार था[1]। परन्तु ईसाकी तृतीय शताब्दीके अन्तमें इनका प्रभाव घट गया था।

उपर्युक्त देवपुत्र, शाही और शाहानुशाही शायद क्रमशः कुशान राजा कनिष्क, हुविष्क, और वासुदेवकी उपाधियाँ थीं। परन्तु तीसरी शताब्दीमें कुशान राज्यके टुकड़े हो गये थे और उस समयसे उस प्रदेशके प्रत्येक छोटे छोटे राजा भी इन उपाधियोंको ग्रहण करने लगे थे।

कैनेड़ी साहबका अनुमान है कि 'देवपुत्र' उपाधिवाले राजाका राज्य पंजाबमें था[2]।

मि० विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि शाही–शाहानुशाहीसे या तो ससेनियन राजा सापोरका तात्पर्य है या ओक्सस नदी परके कुशान राजाका। जोहन एलन साहब भी इस अन्तिम मतसे सहमत हैं[3]। इस कुशान राजाका राज्य भारतसे लेकर औक्सस तक था।

हम पहले लिख चुके हैं कि शक शब्दसे पश्चिमी क्षत्रपोंका तात्पर्य है। परन्तु पेशावर आदि स्थानोंसे एक प्रकारके सिक्के मिले हैं। उनपर 'शक' लिखा है। बहुत सम्भव है कि यहाँ पर शक शब्दसे उन्हीं सिक्कोंके चलानेवालोंका तात्पर्य हो[4]। मरुण्ड शब्द पुराणोंमें मिलता है, उन (पुराणों) में इस वंशके राजाओंको म्लेच्छ लिखा है। लेवी साहबका अनुमान है कि ये सीथिक या कुशानवंशी थे।

(१–२) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसायटी (१९१२) पृ० १०५७, ६८२, और (१९१३) पृ० १०६२।

(३–४) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स ऑफ़ गुप्त डाइनैस्टी (इण्ट्रोडक्शन) पृ० २८।

गुप्तोंके समयका (ईसवीसन्‌की चौथीशताब्दीका) भारतका मानचित्र

जैनग्रन्थोंमें मरुण्डराजको कान्यकुब्ज (कन्नौज) का राजा लिखा है। यह पाटलिपुत्रमें रहता था। चीनी ऐतिहासिकोंने भी इसे पाटलिपुत्रका राजा लिखा है। इन बातोंसे अनुमान होता है कि ईसाकी पहली या दूसरी शताब्दीके करीब भारतमें मरुण्ड-राज्यका विशेष प्रभाव था। ये राजा विदेशी थे और इनका राज्य गंगाके आसपास था। शायद इनके पतनके साथ ही गुप्तराज्यका उदय हुआ हो। समुद्रगुप्तके समय इनका राज्य केवल उत्तरमें ही रह गया था[1]। लेसन साहबका अनुमान है कि ये मरुण्ड लोग लम्पाक (काबुलकी नदीके उत्तरी किनारे परके) देशके थे[2]। हरिवंशसे पता चलता है कि ईसाकी सातवीं शताब्दीमें भी मरुण्ड लोग भारतके भूतपूर्व प्रतापी राजा माने जाते थे।

उपर्युक्त व्यवस्था स्वीकार करनेसे इन देवपुत्रादिकोंके राज्योंकी स्थिति इस प्रकार होगी:—

गंगाके ऊपरी प्रदेशमें मरुण्ड राज्य होगा और उसके उत्तर-पश्चिममें शकोंका राज्य। उस समय इनके राज्यमें आजकलका उत्तर-पश्चिमी प्रदेश (N. W. P.), काश्मीरका कुछ भाग और उत्तरी पंजाब था। बाकीके पंजाबमें देवपुत्रोंका राज्य था। शाही लोग गान्धारमें और शाहानुशाही काबुलमें राज्य करते थे। इनका राज्य भारतकी सीमासे लेकर ऑक्सस नदी तक फैला हुआ था।

विन्सैण्ट स्मिथ इस (समुद्रगुप्तके) लेखको ई० स० ३६० (वि० सं० ४१७) का या इसके कुछ बादका मानते हैं।

समुद्रगुप्तका दूसरा (एरणसे मिला हुआ) लेख टूटा हुआ है।

---

(१) कैटलॉग ऑफ दि कौइन्स ऑफ दि गुप्त डायनैस्टी (इन्ट्रोडकशन), पृ० २९।

(२) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, (१८९७) पृ० ९८४,–९८६।

इसमें किसी मकान आदिके बनवानेका और सुवर्ण-दानका वर्णन है। यह दान सम्भवतः अश्वमेध-यज्ञके समय दिया गया होगा। इससे अनुमान होता है कि यह लेख इस (समुद्रगुप्त) के राज्यके अन्तिम समयमें लिखा गया था।

इसके उत्तराधिकारियोंके लेखोंसे पाया जाता है कि इसने अपनी विजयके उपलक्ष्यमें अश्वमेध यज्ञ किया था और उस समय ब्राह्मणोंको (दान) देनेके लिये एक प्रकारके सोनेके (आश्वमेधिक) सिक्के ढलवाये थे। इनपर एक तरफ़ यूप (यज्ञस्तम्भ) के आगे घोड़ा खड़ा होता है और उपजाति छन्दमें '**राजाधिराजः पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्यप्रतिवार्यवीर्यः**' लिखा रहता है। दूसरी तरफ़ महिषी (पटरानी) खड़ी होती है और '**अश्वमेधपराक्रमः**' लिखा रहता है।

यह यज्ञ ईसाकी दूसरी शताब्दीमें पुष्यमित्रने भी किया था। उसके बाद पहले पहल चौथी शताब्दीमें समुद्रगुप्तने और पाँचवीं शताब्दीमें इसके पौत्र कुमारगुप्त प्रथमने किया।

रापसन साहबने एक मुहर छपवाई है[1]। इसपर घोड़ेकी तसवीर और '**पराक्रमः**' खुदा है। शायद यह समुद्रगुप्तकी ही हो और इसी अश्वमेधसे सम्बन्ध रखती हो। इसी तरह लखनऊके अजायबघरमें एक पत्थरका घोड़ा रक्खा हुआ है। उस पर केवल '......**द्रगुप्तस देयधम्म**' पढ़ा जाता है। पूर्वके कुछ अक्षर टूट गये हैं। यह भी सम्भवतः समुद्रगुप्तके इसी अश्वमेध यज्ञसे सम्बन्ध रखता है।

यद्यपि समुद्रगुप्तके इलाहाबादवाले लेखमें अश्वमेध यज्ञका वर्णन नहीं है। तथापि इसके पूर्वोक्त (आश्वमेधिक) सिक्कों और इसके

---

(१) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, (१९०१) पृ० १०२।

उत्तराधिकारियोंके लेखोंसे इस बातकी पुष्टि होती है। इस लिये सम्भवत: यह (इलाहाबादका) लेख इस घटनाके पहले लिखवाया गया होगा।

इसके प्रत्येक प्रकारके सिक्कोंपर विजयबोधक वाक्योंके लिखे होनेसे अनुमान होता है कि दक्षिण-विजय करके वापिस आनेपर ही इसने सिक्के ढलवाना प्रारम्भ किया था। निम्नलिखित दो बातोंसे भी इसी अनुमानकी पुष्टि होती है। उनमेंसे एक तो यह है कि दक्षिण-विजयमें इसे बहुतसा सुवर्ण मिला होगा और दूसरी यह है कि उस यात्रामें इसने अपने पड़ोसियोंके प्रचलित सिक्के भी देख लिये होंगे।

इसके लेखादिकोंसे इसके समयका पता नहीं चलता। मि० जोहन एलन इसका राज्यारोहण समय ई० स० ३३५ (वि० सं० ३९२) के करीब अनुमान करते हैं। मि० लेवीने चीनी ग्रन्थोंके आधारपर इसको सीलोनके मेघवर्णका समकालीन सिद्ध किया है। मि० विन्सैण्ट स्मिथने इस मेघवर्णका समय ई० स० ३५२ से ३७९ (वि० सं० ४०९–४३६) तक माना है[1] और समुद्रगुप्तका राज्यारोहण समय ई० स० ३३० (वि० सं० ३८७) निश्चित किया है[2]। डाक्टर फ़्लीट मेघवर्णका समय ई० स० ३५१ से ३७९ (वि० सं० ४०८ से ४३६) तक मानते हैं[3] और समुद्रगुप्तका राज्यारोहण समय ई० स० ३३५ (वि० स० ३९२) के निकट ही अनुमान करते हैं।

समुद्रगुप्त ई० स० ३८० या ३८५ (वि० स० ४३७ या ४४२) तक जीवित रहा था।

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २८७।

(२) ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १७०।

(३) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, (१९०९) पृ० ३४२।

समुद्रगुप्तके राज्यकी वास्तविक सीमा इस प्रकार थी:—उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें नर्मदा, पूर्वमें ब्रह्मपुत्रा और पश्चिममें जमना और चम्बल। इसके अलावा पंजाबके यौधेय और मालवे आदिके लोग भी इसकी प्रभुता स्वीकार करते थे। इस राजाका दूसरा नाम शायद 'काच' था। यह नाम इसके कुछ सिक्कोंपर लिखा मिलता है[1]। फ़रीदपुरसे एक लेख मिला है। यह महाराजाधिराजश्रीधर्मादित्यका है। होर्नले साहब इसे भी समुद्रगुप्तके समयका ही मानते हैं। यदि उक्त साहबका यह अनुमान ठीक हो तो मानना पड़ेगा कि इस राजाका तीसरा नाम धर्मादित्य भी था। परन्तु इस विषयका विशेष प्रमाण न मिलनेके कारण विद्वान् लोग इस बातको स्वीकार नहीं करते[2]।

मि० विन्सैण्ट स्मिथने लिखा है कि बौद्ध भिक्षु वसुबन्धु पर इसकी विशेष कृपा रहती थी। परन्तु हम चन्द्रगुप्त प्रथमके वर्णनमें ही लिख चुके हैं कि यह वसुबन्धु पुरगुप्तके समय हुआ था।

इसकी रानीका नाम दत्तदेवी और पुत्रका नाम चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) था।

मि० एलन चन्द्रगुप्त प्रथमके विवाह-सूचक सिक्कोंके पीछे 'लिच्छवयः' लिखा होनेसे उन सिक्कोंको इसीके समयके मानते हैं। उनका अनुमान है कि इसीने अपने मातापिताके नामपर उक्त सिक्के बनवाये थे।

इसके अनेक प्रकारके सोनेके सिक्के मिले हैं। उनका विवरण नीचे लिखते हैं:—

गरुड़ध्वजाङ्कित—इन सिक्कोंमें सीधी तरफ़ राजाके बायें हाथके नीचे

(१–२) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स ऑफ़ गुप्त डाइनैस्टी (इण्ट्रोडकशन), पृ० ३२ और ३३।

चीनी लेखप्रणालीके अनुसार ऊपर नीचे स गु (समुद्रगुप्त) लिखा
मु प्त
द्र

होता है और किनारेपर चारों तरफ़ उपगीति छन्दमें '**समरशतवितत्तविजयो जितरिपुरजितो दिवं जयति**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ दायें किनारेपर '**पराक्रमः**' लिखा रहता है।

धनुर्धराङ्कित——इन सिक्कोंमें सीधी तरफ़ राजाके बायें हाथके नीचे चीनी लेखप्रणालीमें समुद्र और किनारेपर चारों तरफ़ उपगीति छन्दमें '**अप्रतिरथो विजित्य क्षितिं सुचरितैर्दिवं जयति**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ '**अप्रतिरथः**' लिखा रहता है।

परशुधराङ्कित——इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ राजाके बायें हाथके नीचे चीनी लेखप्रणालीमें समुद्रगुप्त और किनारेपर पृथ्वी छन्दमें '**कृतान्तपरशुर्जयत्यजितराजजेताजितः**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ '**कृतान्तपरशुः**' लिखा रहता है।

काचाङ्कित——इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ राजाके बायें हाथके नीचे 'काच' और किनारेपर उपगीति छन्दमें '**काचो गामवजित्य दिवं कर्मभिरुत्तमैर्जयति**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ दक्षिण पार्श्वमें '**सर्वराजोच्छेत्ता**' लिखा रहता है।

व्याघ्रवधाङ्कित——इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ '**व्याघ्रपराक्रमः**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ '**राजा समुद्रगुप्तः**' लिखा रहता है।

वीणाङ्कित——इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ किनारे पर '**महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तः**' और पावदान पर '**सि**' लिखा होता है।

उलटी तरफ़ '**समुद्रगुप्तः**' लिखा रहता है।

आश्वमेधिक——इन सिक्कोंपर सीधी तरफ किनारे पर उपजाति-

छन्दमें ' राजाधिराजः पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्यप्रतिवार्यवीर्यः ' और घोड़ेके पेटके नीचे ' सि ' लिखा होता है। उलटी तरफ़ ' अश्वमेधपराक्रमः ' लिखा रहता है।

५ चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य)।

ई० स० ३८०–४१३ (वि० सं० ४३७–४७०)।

यह समुद्रगुप्तका पुत्र था। यद्यपि यह भी अपने पिताका सबसे बड़ा पुत्र न था, तथापि योग्यतम होनेके कारण अपने पिता द्वारा राज्यका उत्तराधिकारी चुना गया था। इसके समयके पाँच लेख मिले हैं। इनमेंके तीन लेखोंमें संवत् लिखे हैं; जिनसे इसके राज्य-समयका पूरा पता लगता है। इन्हींके आधार पर इस राजाका अभिषेक ई० स० ३८० (वि० सं० ४३७) के करीब और मृत्यु ई० स० ४१३ (वि० सं० ४७०) के करीब मानी जा सकती है।

उक्त पाँच लेखोंमेंसे पहला लेख उदयगिरिकी गुफ़ासे मिला है[१]। यह गुप्त संवत् ८२ (वि० सं० ४५७–४५८) की आषाढ़ शुक्ला एकादशीका है। इसमें चन्द्रगुप्त द्वितीयके सामन्त सनकानिकवंशी महाराज विष्णुदासके पुत्र (छगलगके पौत्र) द्वारा दिये हुए दानका वर्णन है। परन्तु इसमें दाताके नामके केवल पिछले दो अक्षर '....ढल' ही पढ़े जाते हैं। फ़्लीटसाहबके मतानुसार इस लेखका समय ई० स० ४०१–२ की जून या जुलाईमें आता है।

दूसरा लेख[२] मथुरासे मिला है। यह बिना संवत्का है।

यद्यपि इसमेंका राजा (चन्द्रगुप्त) का नाम टूट गया है। तथापि

(१–२–३) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० ५२, नंबर १३, पृ० २१ और २५।

राजाके पिताका नाम समुद्रगुप्त और माताका नाम दत्तदेवी लिखा होनेसे यह लेख भी निस्सन्देह चन्द्रगुप्त द्वितीयहीका है।

तीसरा लेख साँचीसे मिला है[1]। यह गुप्त संवत् ९३ (वि० सं० ४६८–४६९) के भाद्रपदकी चतुर्थीका है। इसमें उन्दानके पुत्र आमरकारदेव द्वारा दिये गये ईश्वरवासक गाँव और २५ दीनारोंके दानका वर्णन है। यह दान काकनाबोटके विहारमें नित्य पाँच जैन भिक्षुओंके भोजनके लिये और रत्नगृहमें दीपक जलानेके लिये दिया गया था। उक्त आमरकारदेव चन्द्रगुप्तके यहाँ किसी सैनिक पदपर नियुक्त था। इस लेखका समय ई० स० ४१२–१३ के अगस्त या सितंबर महीनेमें आता है।

चौथा लेख[2] भी उदयगिरिकी गुफासे मिला है। यह भी विना संवत्का है। इसमें वीरसेन द्वारा महादेवकी गुफा बनवानेका वर्णन है। यह वीरसेन वंशपरम्परासे गुप्तराजाओंका मन्त्री और सान्धिविग्रहिक (Foreign minister) था और चन्द्रगुप्तकी विजययात्राके समय उक्त राजाके साथ ही यहाँ पर आया था। यह (वीरसेन) पाटलिपुत्रका रहनेवाला था और इसका उपनाम शाब था।

पाँचवाँ लेख गढ़वासे मिला[3] है। यह गुप्त संवत् ८८ (वि० सं० ४६३–४६४=ई० स० ४०७–८) का है। इसमें १० (सुवर्णके) दीनारोंके दानका वर्णन है।

कुतुबमीनारके पासके मेहरौलीसे मिले लोहस्तम्भपरके चन्द्रके लेखका वर्णन हम चन्द्रगुप्त प्रथमके इतिहासमें कर चुके हैं।

(१–२–३) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० २९, ३४, ३६।

इस चन्द्रगुप्त द्वितीयने वि० सं० ४५० (ई० स० ३९३) के करीब पश्चिमके क्षत्रपोंको जीतकर गुजरात, सुराष्ट्र और मालवेको अपने राज्यमें मिला लिया था और भारतसे शकोंका नाम तक मिटा दिया था। उक्त समय स्वामीरुद्रसिंह तृतीय वहाँका राजा था।

उदयगिरिसे मिले हुए पूर्वोक्त दोनों लेखोंसे इस (चन्द्रगुप्त द्वितीय) का पूर्वी मालवेपर भी अधिकार होना पाया जाता है। हम पहले ही लिख चुके हैं कि इन लेखोंमेंसे एक गुप्त संवत् ८२ (ई०स० ४०१–२=वि० सं० ४५७–५८) का है और दूसरा विना संवत्का। इसी दूसरे लेखसे इस राजाका अपने मन्त्री वीरसेनसहित उदयगिरि पर जाना और वीरसेनका उक्त गुफा बनवाना प्रकट होता है। यदि इसमें संवत् लिखा होता तो चन्द्रगुप्त द्वितीयके क्षत्रपोंपर चढ़ाई करनेका और उक्त स्थलपर पहुँचनेका समय ठीक ठीक माळूम हो जाता। परन्तु ऐसा न होनेसे इसका समय निश्चित करनेमें केवल इनके सिक्कोंसे ही कुछ सहायता मिल सकती है।

पश्चिमी क्षत्रपोंके सबसे पिछले सिक्के श० सं० ३१० या ३१[1]× (ई० स० ३८८ या ३८८ से ३९७[2]=वि० सं० ४४५ या ४४५ से ४५४) के मिले हैं। इनपर एक तरफ़ राजाका मस्तक और निरर्थक ग्रीक अक्षर बने होते हैं। तथा राजाके मस्तकके पीछे संवत् लिखा रहता है। दूसरी तरफ़ उपाधियों सहित राजाका और उसके पिताका नाम लिखा होता है और बीचमें चैत्यका चिह्न बना रहता

(१) यह अङ्क पढ़ा नहीं जाता। (२) कैटलॉग ऑफ़ आन्ध्र एण्ड वैस्टर्न क्षत्रप कौइन्स (इण्ट्रोडक्शन) पृ० १४९, १५१ और सिक्के नंबर ९०७ से ९२९।

है । सुराष्ट्र विजय करनेपर चन्द्रगुप्त द्वितीयने भी इसी प्रकारके सिक्के ढलवाये थे । केवल उनमें चैत्यके स्थानपर गरुड़ पक्षीका चिह्न लगवा दिया था । इसके इन सिक्कोंपर सबसे पहला संवत् ९० या ९०+[1]× (ई० स० ४०९ या ४०९ से ४१३=वि० सं० ४६६ या ४६६ से ४७०[2]) मिला है ।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि इसका उदयगिरिसे मिला हुआ एक लेख गुप्त संवत् ८२ (ई० स० ४०१–२=वि० सं० ४५७–४५८) का है । इससे उस समय पूर्वी मालवेपर इसका अधिकार होना प्रकट होता है । बहुत सम्भव है कि इसी यात्रामें इसने गुजरात और काठियावाड़पर भी अधिकार कर लिया हो । अतः इस यात्राका समय ई० स० ३८८ से ४०१ (वि० सं० ४४५ से ४५८) के मध्य होना चाहिये । इन्हीं सब बातोंपर विचार करके मि० विन्सैण्ट स्मिथने इसकी इस युद्धयात्राका प्रारम्भ ई० स० ३८८ (वि० सं० ४४५) के करीब और समाप्तिका समय ई० स० ३९५ (वि० सं० ४५२) निश्चित किया है[3] । यह समय करीब करीब ठीक ही प्रतीत होता है ।

बाणभट्टकृत हर्षचरितके छठे उच्छ्वासमें लिखा है कि:—

"**अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेशगुप्तश्चन्द्रगुप्तः शकपतिं अशातयदिति ।**" ' अर्थात् शत्रुके नगरमें दूसरेकी स्त्रीकी कामना

---

(१) यह अङ्क भी पढ़ा नहीं जाता । (२) ई० स० ४१३ में चन्द्रगुप्त द्वितीयकी मृत्यु मानी जाती है ।—गुप्त कौइन्स (इण्ट्रोडक्शन) पृ० ३९ ।

(३) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २७६ ।

(४) ई० स० १८९२ का कलकत्तेका छपा हर्षचरित, पृ० ४७९, नं० ८१ ।

करनेवाले शकपतिको स्त्रीके वेशमें छिपे हुए चन्द्रगुप्तने मार डाला।' इस कथाका भी शायद इसी चढ़ाईसे तात्पर्य हो।

चीनीयात्री फ़ाहियान ई० स० की चौथी शताब्दीके प्रारम्भमें (ई० स० ३९९–४१४) भारतमें आया था। उसका मुख्य उद्देश्य विनयपिटक आदि बौद्ध धर्मके ग्रन्थोंका पढ़ना और एकत्रित करना था। इसी कार्यके लिये उसने अपना विशेष समय बौद्ध मठोंमें रहकर ही बिताया था। वह अपने उक्त कार्यमें इतना व्यग्र रहता था कि उसने उस समयके प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त द्वितीयका नाम तक अपनी पुस्तकमें नहीं लिखा है। उसका अन्य सांसारिक बातोंको छोड़ अपनी धर्मसम्बन्धी खोजमें लीन रहनेका एक और भी उदाहरण मिलता है। उसने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि:—'भारतमें बेचने और ख़रीदनेका साधन केवल कौड़ियाँ हीं हैं।' यह बात कहाँ तक ठीक है इसका विचार पाठक स्वयंकर सकते हैं। क्यों कि उस समयके सैकड़ों सोने, चाँदीके सिक्के अब तक मिलते हैं और अनेक लेखोंमें भी सुवर्ण और दीनारोंका वर्णन आता है। हमारी समझमें फ़ाहियान एक साधारण तीर्थयात्रीकी हैसियतसे भारतमें आया था और उसका बहुतसा समय धर्मकी खोजके लिये मठोंमें बौद्ध भिक्षुओंके संग ही बीता था। अतः सम्भव है कि उसको इस सांसारिक और व्यापारिक लेन देनसे अभिज्ञ होनेका मौका ही न मिला हो। परन्तु उसके इस लेखसे एक बात तो बड़े ही मारकेकी प्रकट होती है कि उस समय भारतमें हद्दसे ज्यादा सस्तीका ज़माना था। साधारण जीवनके निर्वाहार्थ केवल कौड़ियोंसे ही काम चल जाता था! आज कलकी तरह लोगोंको भूखसे मरनेकी नौबत नहीं आती थी। यहाँपर हम फ़ाहियानके यात्रा-

वर्णनसे उस समयका कुछ हाल उद्धृत करते हैं:—

उस समय उद्यान (काबुलके आसपासके प्रदेश) से उत्तरी भारतवर्षका प्रारम्भ होता था। वहाँके लोग मध्य हिन्दुस्तानकी भाषा बोलते और उन्हींके जैसा खान-पान और वस्त्र व्यवहारमें लाते थे। वहाँ पर बौद्धधर्मका प्रभुत्व था और उस धर्मके ५०० मठ विद्यमान थे। वहाँसे फ़ाहियान स्वात, गाँधार, तक्षशिला होता हुआ पेशावरमें आया। वहाँ पर उसने कनिष्कका बनवाया एक चार सौ हाथ ऊँचा बौद्धस्तूप देखा। वहाँसे चलकर सिन्धुको पार करता हुआ उक्त यात्री मथुरामें पहुँचा। वहाँ पर यमुनाके दोनों किनारों पर मिला कर २० संघाराम थे। इनमें तीन सहस्र भिक्षु रहा करते थे। वहाँ पर भी बौद्धधर्मका खूब प्रचार था। वहाँसे आगे मरुभूमिसे पश्चिम (राजपूताने) के राजा लोग भी बौद्धधर्मको मानते थे। उसके दक्षिणका प्रदेश मध्यदेश कहलाता था। वह समशीतोष्ण देश था। उस देशकी प्रजा सुखी थी। वहाँ पर किसी प्रकारकी रोक-टोक नहीं थी। लोग राजाकी भूमि जोतते थे और उपजका कुछ अंश उसे करस्वरूप दे देते थे। वे जहाँ इच्छा होती जा सकते थे। उन्हें किसी प्रकारका दण्ड नहीं दिया जाता था। अपराधीको उसकी शक्तिके अनुसार केवल अर्थदण्ड दिया जाता था। हाँ यदि कोई बार बार चोरी या उपद्रव करता था तो उसका दाहिना हाथ काट लिया जाता था। राजाके नौकर तनख़ा पाते थे। सारे देशमें सिवाय चांडालोंके न तो कोई जीवहिंसा ही करता था, न मद्य ही पीता था, और न लहसुन प्याज़ ही खाता था। चाण्डाल लोग नगरके बाहर रहते थे और जब नगरमें आते थे तब लोगोंकी सूचनाके लिये लकड़ी बजाते चलते

थे। उस देशके लोग न तो सूअर और मुर्गे ही पालते थे न जीवित पशु ही बेचते थे। वहाँपर मद्यकी दूकानें नहीं होती थीं। लेन-देनमें कौड़ियोंका व्यवहार किया जाता था और केवल चाण्डाल लोग ही हत्या करते व मांस बेचते थे। वहाँ पर अनेक खेत, घर, बगीचे, आदि भिक्षुओंको दिये हुए थे और उनका वृत्तान्त ताम्रपत्रों पर खुदा हुआ था। ये प्राचीन राजाओंके समयसे चले आते थे और उस समय तक किसीने इसमें हस्तक्षेप नहीं किया था। विहारमें भिक्षुओंके भोजन और वस्त्रका पूरा प्रबन्ध था। वर्षाऋतुमें पथिकोंको भी वहाँ पर रहनेका स्थान मिल जाता था। वहाँसे फ़ाहियान सांकाश्यकी तरफ़ होता हुआ कन्नौज पहुँचा। वहाँके वृत्तान्तमें उसने केवल हीनयानके दो संघारामोंका वर्णन ही किया है। वहाँसे साँची होता हुआ वह कोशलकी राजधानी श्रावस्तीमें पहुँचा। उक्त नगर उस समय उजड़ी हुई हालतमें था। फ़ाहियानने लिखा है कि उस समय वहाँ पर बहुत कम आदमी रहते थे और सब मिला कर दोसौसे कुछ ही अधिक घर थे। परन्तु जैतवन विहारमें उस समय भी भिक्षुक रहते थे। वहाँसे चलता हुआ यह यात्री कपिलवस्तु पहुँचा। उस समय वह नगर (बुद्धका जन्मस्थान) बिलकुल उजड़ गया था। वहाँ न राजा था न नगरवासी ही थे। केवल दस घर गृहस्थोंके थे और कुछ श्रमण भी रहते थे। वहाँसे वह बुद्ध-निर्वाणके स्थान कुशीनगरमें पहुँचा। वहाँ पर सब जगह स्तूप बने थे। परन्तु नगरमें बस्ती कम और विरल थी। इधर उधर कुछ श्रमणोंके घर भी थे। वहाँसे रवाना होकर वह लिच्छवियोंकी राजधानी वैशाली होता हुआ पाटलिपुत्रमें पहुँचा। फ़ाहियानने लिखा है कि वहाँ पर असुरों द्वारा बनाये हुए

अशोकके महल और सभाभवन उस समय तक भी विद्यमान थे। वे पत्थरके बने थे और कारीगरीमें बहुत ही सुन्दर थे। (उक्त यात्रीका विश्वास था कि इस लोकके लोग ऐसे भवन नहीं बना सकते हैं।) वहाँ पर उस समय तक भी बौद्ध धर्मका अच्छा प्रचार था। प्रति वर्ष दूसरे मासके आठवें दिन बौद्ध मूर्तियोंकी रथयात्रा होती थी। नगरमें वैश्योंके स्थापित किये भोजनालय और औषधालय थे। उनमें असहाय लोगोंको भोजन और बीमारोंको बीमारी भर पथ्य व औषधादि मिलता था और वे लोग अच्छे होने पर अपने अपने स्थानोंको चले जाते थे। वहाँसे चल कर हमारा यात्री राजगृह, गृध्रकूट आदिकी तरफ़ होता हुआ गया पहुँचा। वह स्थान उस समय बिलकुल उजाड़ पड़ा था। वहाँसे वह वाराणसीमें मृगदावको देखता हुआ कोशांबी पहुँचा। वहाँसे उक्त चीनी यात्री वापिस लौट कर पाटलिपुत्र चला आया। यद्यपि उक्त यात्री विनयपिटककी खोजमें आया था, तथापि उस समय विशेषतर ज़बानी शिक्षाका तरीका होनेके कारण इतनी लंबी यात्रामें उसे कहीं भी विनयपिटककी लिखित प्रति नहीं मिली। अन्तमें यहाँ पर उसे उसकी एक लिखित प्रति मिली। अतः तीन वर्ष रहकर उसने उक्त ग्रन्थकी नकल की और साथ ही संस्कृत भाषाका भी अभ्यास किया। यहाँसे वह गंगाके दक्षिण किनारे परके चंपानामक नगरमें (यह चम्पा अङ्ग—पूर्वी बिहारकी राजधानी थी) होता हुआ ताम्रलिप्ति (तमलुक—बंगालके मेदनीपुर ज़िलेमें) देशमें पहुँचा। वहाँ उस समय बंदरगाह था और चौबीस संघाराम थे। फ़ाहियानने वहाँ पर दो वर्ष तक रहकर सूत्रोंकी नकल की और मूर्तियोंके चित्र बनाये। वहाँसे व्यापारियोंके एक जहाज़में सवार हो समुद्रमें दक्षिण-

पश्चिमकी तरफ़ रवाना हुआ और १४ दिनमें सिंहल पहुँचा। वहाँ पर बहुतसे श्रमण रहते थे। (फाहियान लिखता है कि स्वयं बुद्ध देव भी वहाँ पर आये थे।) और बुद्धके दाँतका भी एक विहार था। नगरमें अधिकतर बड़े बड़े व्यापारी रहते थे। वहाँ पर फ़ाहियानने दो वर्ष तक अनेक ग्रन्थोंकी नकल की और अन्तमें एक व्यापारी जहाज़में—जिसमें २०० से अधिक यात्री थे—चढ़कर वहाँसे रवाना हुआ और मार्गमें तूफ़ानसे सताया जाकर ९० दिनमें 'जावा' नामक टापूमें पहुँचा। उस टापूमें ब्राह्मण धर्मका ही प्रचार था। वहाँवाले बौद्धधर्म नहीं मानते थे। पाँच महीने बाद वहाँसे फिर वह एक नावमें चढ़ रवाना हुआ। उस नावमें २०० यात्री और ५० दिनके खाने पीनेकी सामग्री थी। मार्गमें अनेक कष्ट झेलता हुआ वह ८२ दिनमें चीनके दक्षिणी किनारे पर पहुँचा।

इस प्रकार हमारा यह प्रसिद्ध यात्री चांगगानसे चलकर ६ वर्षमें मध्यप्रदेशमें पहुँचा, ६ वर्ष वहाँ पर रहा और लौटते हुए मार्गमें उसे ३ वर्ष लगे। अतः कुल १५ वर्षमें उसने अपनी उक्त यात्रा पूर्ण की। उसने इस यात्रामें करीब ३० जनपदोंमें भ्रमण किया था।

(भारतमें उस समय ख़ूब ही सुख सम्पत्ति और सदाचारका ज़माना था। धार्मिक सत्रोंमें निर्धनोंको अन्न:वस्त्र मिलता था और धार्मिक औषधालयोंमें उनकी विना दामोंके चिकित्सा की जाती थी। राज्यकी सुव्यवस्थाके कारण अपराध भी बहुत ही कम हुआ करते थे और पूर्ण शान्तिका राज्य था। राजकर्मचारियोंका वेतन नियुक्त था। अतः उनको रिश्वत खानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। देशमें मांस, मदिरादिका बहुत ही कम प्रचार था। लोग प्याज़ और लहसुन भी

नहीं खाते थे। सूअर और मुर्गोंका पालना तथा पशुओंका व्यापार करना भी निषिद्ध था। बाज़ारमें कसाइयों और शराबवालोंकी दूकानें नहीं होती थीं। लोग अस्पृश्य जातियोंसे दूर रहा करते थे और वे (अस्पृश्य जातिके) लोग जब शहरमें आते थे तो लकड़ी खटखटाते रहते थे। इससे लोगोंको उनके आगमनकी सूचना मिल जाती थी और वे उनसे अलग हो जाते थे। बौद्ध भिक्षुओंके खान-पानका सब प्रबन्ध धनिकोंकी तरफ़से ही होता था। डकैतियाँ और चोरियाँ भी नहीं होती थीं और न इधर उधर जानेमें परवानेकी ही ज़रूरत पड़ती थी। उस समय बहुधा फ़ौजदारी अपराधोंके लिये जुर्मानेकी ही सज़ा दी जाती थी। परन्तु जुर्माना देश कालके और अपराधकी लघुता गुरुताके अनुसार न्यूनाधिक होता था। प्राणदण्ड किसीको भी नहीं दिया जाता था। राजद्रोही और लुटेरोंका दाहिना हाथ काट दिया जाता था। परन्तु ऐसा अवसर बहुत ही कम होता था। तथा उस समय लोगोंको न्यायालयसम्बन्धी तकलीफ़ बिलकुल नहीं थी।)

फ़ाहियानके लेखसे यह भी प्रतीत होता है कि यद्यपि उस समय तक पाटलिपुत्र और मगधकी दशा अच्छी थी, तथापि गया आदि बौद्ध तीर्थोंकी दशा गिरने लगी थी।

उस समयके लेखों और सिक्कोंसे प्रकट होता है कि उक्त कालके गुप्त राजा ब्राह्मणधर्मानुयायी थे। इसी लिये नरपतियोंके आश्रयसे वञ्चित हो, बौद्ध धर्म अपना प्रभाव खो रहा था और यही बौद्ध तीर्थोंकी समृद्धिके नाशका मुख्य कारण था।

मि० विन्सैण्ट स्मिथने लिखा है कि चन्द्रगुप्त द्वितीयने बंगालसे बलूचिस्तान तकके देश विजय किये थे। अतः इसका राज्य इसके पिता

समुद्रगुप्तके राज्यसे भी बड़ा था। इसने उज्जैनको अपने राज्यके पश्चिम प्रान्तकी राजधानी बनाया था। इसकी उपाधि 'विक्रमादित्य' थी और इसीने भारतके शक राज्यकी जड़ काटी थी। इन्हीं कारणोंसे बहुतसे विद्वान् इसीको उज्जैनका प्रसिद्ध विक्रमादित्य मानते हैं; जिसकी उपाधि 'शकारि' भी थी। तथा कविकुलगुरु कालिदासको भी इसीकी सभाका एक रत्न समझते हैं। परन्तु इसका विचार आगे चलकर स्वतन्त्रतापूर्वक किया जायगा। प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवंशकी राजधानी अयोध्याको भी इसके और (इसके पिता) समुद्र गुप्तके समय गुप्तराज्यके उस प्रान्तकी राजधानी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

महाराज घटोत्कचके वर्णनमें लिखा जा चुका है कि वैशाली (बसरासे) से बहुतसी मिट्टीकी मुहरें (Seals) मिली हैं। इनमें एक मुहर 'महादेवी श्रीध्रुवस्वामिनी' की भी है। यह ध्रुवस्वामिनी महा-

(१) राजशेखरने अपनी काव्य-मीमांसामें कथोत्थ मुक्तकके उदाहरणमें यह श्लोक दिया है:—

दत्वा रुद्धगतिः खसाधिपतये देवीं ध्रुवस्वामिनीं।
यस्मात् खण्डितसाहसो निववृते श्रीशर्मगुप्तो नृपः॥

अर्थात्—(जिस हिमालयमें) चाल रुक जानेपर अपनी स्त्री ध्रुवस्वामिनीको खसोंके राजाको देकर खण्डितसाहस श्रीशर्मगुप्त राजा लौट आया था।

इस श्लोकमें 'ध्रुवस्वामिनी' और 'गुप्त' इन पदोंके होनेसे कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि यहाँपर शर्मगुप्तकी जगह चन्द्रगुप्त ही पाठ होगा, क्योंकि गुप्तवंशमें एक ही ध्रुवस्वामिनीका पता चलता है, जो चन्द्रगुप्त द्वितीयकी स्त्री थी। सम्भव है उत्तरमें चन्द्रगुप्त द्वितीयको चीनके खशोंसे हार माननी पड़ी हो और वहीं पर इसकी रानी छिन गई हो।

(नागरीप्रचारिणीपत्रिका भाग १, अंक २, पृ० २३४–३५।)

राजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त द्वितीयकी स्त्री और महाराज श्रीगोविन्दगुप्तकी माता थी। यह गोविन्दगुप्त शायद कुमारगुप्त (प्रथम) का छोटा भाई और वैशाली (बसरा) का अधिकारी था। श्रीयुत भाण्डारकरका अनुमान है कि वह स्थान—जहाँ पर मुहरें मिली हैं—उस समयके मुहर बनानेवालेका कार्यालय होगा और ये मिली हुई मुहरें उस समयके अधिकारियोंकी असली मुहरोंके नमूने होंगे। इन मुहरोंमें निम्नलिखित उपाधियाँ मिलती हैं:—

'कुमारामात्याधिकरण'—कुमारका प्रधानमन्त्री। इस उपाधिके साथ लगी हुई 'भट्टारक' और 'युवराज' की भी उपाधियाँ मिलती हैं। इससे प्रकट होता है कि यहाँ पर (इस मुहरमेंके) युवराजसे राजाके उत्तराधिकारीका तात्पर्य नहीं है।

'बलाधिकरण'—सेनापति। इसके साथ भी पूर्वोक्त 'भट्टारक' और 'युवराज' की उपाधियाँ लगी हैं।

'रणभाण्डागाराधिकरण—युद्ध-सामग्रीका कोशाध्यक्ष।

'दण्डपाशाधिकरण'—पुलिस या फ़ौजका अफ़सर।

'विनयशूर' (महाप्रतिहार)—राजाके मकानोंका निरीक्षक।

'महादण्डनायक'—न्यायाधीश।

चन्द्रगुप्तके दूसरे नाम देवगुप्त और देवराज भी थे। चामुकसे मिले वाकाटकवंशी महाराज प्रवरसेन द्वितीयके लेखमें लिखा है कि इसके पिता रुद्रसेन द्वितीयने महाराजाधिराज देवगुप्तकी कन्या 'प्रभावती गुप्ता' से विवाह किया था और उसीसे प्रवरसेनका जन्म हुआ था। परन्तु रुद्रसेनके ताम्रपत्रमें इसी प्रभावती गुप्ताको चन्द्रगुप्तकी

(१) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, नंबर ५५।

(२) इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द ४७, पृ० १६५।

कन्या लिखा है। अतः चन्द्रगुप्तका ही दूसरा नाम देवगुप्त था, यह निर्विवाद सिद्ध है।

डा० फ्लीटने देवराजको चन्द्रगुप्तका मन्त्री अनुमान किया है। परन्तु चन्द्रगुप्तके गुप्त संवत् ९३ के साँचीसे मिले लेखमें '**महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्य देवराज इति प्रिय नाम..........**' लिखा होनेसे यह भी चन्द्रगुप्तका ही नाम प्रतीत होता है।

चन्द्रगुप्तकी दूसरी रानीका नाम कुबेरनागा था। इसीसे प्रभावती गुप्ताका जन्म हुआ था।

मि० स्मिथने इस (चन्द्रगुप्त) का समय ई० स० ३७५ (वि० सं० ४३२) से ई० स० ४१३ (वि० सं० ४७०) तक माना है।

इसके सिंहवधाङ्कित सिक्कोंसे पता चलता है कि यह बड़ा वीर था और शायद सिंहकी शिकारका शौक़ रखता था।

इसके भी कई प्रकारके सुवर्णके सिक्के मिले हैं:—

धनुर्धराङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ राजाके बायें हाथके नीचे चीनी लेखप्रणालीके अनुसार '**चन्द्र**' और किनारेपर '**देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ '**श्री विक्रमः**' लिखा रहता है।

सिंहासनस्थ नृपाङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ '**देवश्री महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्य**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ '**श्रीविक्रमः**' लिखा रहता है।

छत्रधराङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ '**महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः**' या उपगीति छन्दमें '**क्षितिमवजित्य सुचरितैर्दिवं**

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी (१९१२), पृ० २१४–२१५।

जयति विक्रमादित्यः' लिखा होता है। उलटी तरफ़ **'विक्रमादित्यः'** लिखा रहता है।

सिंहवधाङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ वंशस्थविला छन्दमें **'नरेन्द्रचन्द्रप्रथित"-दिवं जयत्यजेयो भुविसिंहविक्रमः'** या **'नरेन्द्रसिंहचन्द्रगुप्तः पृथिवीं जित्वा दिवं जयति,'** **'महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः'** और **'देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः'** इनमेंसे कोई एक पद लिखा होता है। उलटी तरफ़ **'सिंहविक्रमः'** **'सिंहचन्द्रः'** या **'श्रीसिंहविक्रमः'** लिखा रहता है।

अश्वारोह्याङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ **'परमभागवतमहाराधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः'** लिखा हाता है। उलटी तरफ़ **'अजितविक्रमः'** लिखा रहता है।

चाँदीके सिक्के।

गरुड़ाङ्कित (क्षत्रपानुकारी)—इन पर सीधी तरफ़ क्षत्रपोंके सिक्कोंकी तरह राजाका मस्तक और ग्रीक अक्षरोंके चिह्न होते हैं और मस्तकके पीछे ब्राह्मी अक्षरोंमें वर्षेका 'व' और अङ्क लिखे रहते हैं। इन अङ्कोंमें अब तक केवल ९० का अङ्क ही पढ़ा गया है। उलटी तरफ़ गरुड़का चिह्न और **'परमभागवतमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तविक्रमादित्य (:)'** या **'श्रीगुप्तकुलस्य महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तविक्रमाङ्कस्य'** लिखा होता है।

ताँबेके सिक्के।

गरुड़ाङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ किसी किसीमें **'श्रीविक्रमादित्यः'** लिखा होता है। उलटी तरफ़ **'महाराजश्रीचन्द्रगुप्तः'**, **'महाराजचन्द्रगुप्तः'** **'श्रीचन्द्रगुप्तः'** या **'चन्द्रगुप्तः'** लिखा

रहता है। कुछ सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिनपर सीधी तरफ़ 'श्रीचन्द्र' और उलटी तरफ़ 'गुप्त' लिखा होता है।

कलशाङ्कित—इन सिक्कोंपर केवल उलटी तरफ़ 'चन्द्र' लिखा रहता है और इस (नाम) के ऊपर अर्धचन्द्रका आकार बना होता है।

६ कुमारगुप्त प्रथम (महेन्द्रादित्य)।

ई० स० ४१३–४५५ (वि० सं० ४७०–५१२)।

यह चन्द्रगुप्त द्वितीयका पुत्र था और उसके बाद ई० स० ४१३ (वि० सं० ४७०) के करीब गद्दीपर बैठा। मि० स्मिथ भी इसका राज्यारोहणकाल ई० स० ४१३ (वि० सं० ४७०) ही मानते हैं।

इसके समयके भी कई लेख मिले हैं:—

पहला लेख गढ़वासे मिला है[1]। इसका संवत् टूट गया है। केवल तिथि दशमी पढ़ी जाती है। इसमें कुछ दीनारों (सुवर्णके सिक्कों) के दानका वर्णन है।

दूसरा लेख बिलसदसे मिला है[2]। यह गुप्त संवत् ९६ (ई० स० ४१५–१६=वि० सं० ४७१–४७२) का है। इसमें स्वामी महासेन (कार्तिकेय) के मन्दिरमें प्रतोली (द्वार) और धर्मसत्र बनवानेका वर्णन है। इनके बनवानेवालेका नाम ध्रुवशर्मा था और उसीने यह लेख वहाँके स्तम्भपर खुदवाया था।

तीसरा लेख भी गढ़वासे मिला है[3]। यह गुप्त संवत् ९८ (ई० स० ४१७–१८=वि० सं० ४७३–४७४) का है। इसमें सत्रके लिये १२ दीनारोंके दानका वर्णन है।

चौथा लेख मानकुवारसे मिला है[4]। यह गाँव अरियलसे नौ मील

(१–२–३) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० ३९, ४२, ४०।
(४) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० ४५।

दक्षिण-पश्चिम, जमनाके दक्षिण किनारे पर है। यह लेख गुप्त संवत् १२९ (ई० स० ५४८–४९=वि० सं० ६०४–६०५) के ज्येष्ठ मासका है। इसमें बौद्ध भिक्षु बुधमित्रके बुद्धकी प्रतिमा स्थापन करनेका वर्णन है। के० बी० पाठकका अनुमान है कि यह बुधमित्र वसुबन्धुका गुरु था[१]।

एक लेख उदयगिरिसे मिला है[२]। यद्यपि इसमें कुमारगुप्तका नाम नहीं है, तथापि गुप्त संवत् १०६ (ई० स० ४२५–४२६=वि० सं० ४८१–४८२) का होनेसे यह लेख भी इसीके समयका प्रतीत होता है। परन्तु इसमें राजाकी उपाधि केवल 'महाराज' ही लिखी है।

करमडाण्डे (फ़ैज़ाबाद ज़िला) से ई० स० १९०८ (वि० सं० १९६५) में एक महादेवका लिङ्ग मिला था। उस पर गुप्त संवत् ११७ (ई० स० ४३६=वि० सं० ४९३) का एक लेख खुदा है। इस लेखमें मन्त्री, कुमारामात्य पृथ्वीसेनका नाम है। यह पृथ्वीसेन, कुमारगुप्त प्रथमके समय 'महाबलाधिकृत' (सेनापति) था। तथा इस (पृथ्वीसेन) का पिता शिखरस्वामी कुमारगुप्तके पिता चन्द्र-गुप्त द्वितीयके समय मन्त्री और कुमारामात्य था। इससे प्रतीत होता है कि ये (मन्त्री और कुमारामात्य) पद वंशपरम्परासे चले आते थे। इस बातका प्रमाण चन्द्रगुप्त द्वितीयके समयके उदयगिरिके लेखसे[३] भी मिलता है। उसमें स्पष्ट ही लिखा है कि वीरसेन वंशपरम्परासे गुप्तोंका सान्धिविग्रहिक (Minister of peace and war) था।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी (१९१२), पृ० २४४।

(२) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० २५८, नंबर ६१।

(३) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० ३४।

मन्दसोरसे एक लेख कुमारगुप्त और बन्धुवर्माका मिला है। इसमें दशपुर (मन्दसोर) में सूर्यके मन्दिर बनवानेका वर्णन है। यह मन्दिर मालव संवत् ४९३ (ई० स० ४३७–३८) में रेशमके कारीगरोंने बनवाया था और मालव संवत् ५३० (ई० स० ४७३–४७४) में इसकी मरम्मत करवाई गई थी। उस समय कुमारगुप्तकी तरफ़से विश्वकर्माका पुत्र बन्धुवर्मा दशपुर (मन्दसोर) का अधिकारी था। इससे प्रकट होता है कि यह मन्दिर कुमारगुप्त प्रथमके समय बनवाया गया था और इसकी मरम्मत कुमारगुप्त द्वितीयके समय की गई थी।

गुप्त संवत् १३५ (ई० स० ४५४–५५=वि० सं० ५१०–५११) का एक लेख[1] मथुरासे मिला है। यद्यपि इसमें राजाका नाम नहीं दिया है, तथापि यह गुप्तसंवत् १३५ का होनेसे कुमारगुप्त प्रथमके अन्तिम समयका ही है।

हालहीमें दामोदरपुर (ज़िला दिनाजपुर—बंगाल) से इसके समयके दो ताम्रपत्र और मिले हैं। इनमेंसे पहला गुप्तसंवत् १२४ (ई० स० ४४३–४४=वि० सं० ५००–५०१) का और दूसरा गु० सं० १२९ (ई० स० ४४८–४९=वि० सं० ५०४–५०५) का है। इनमें धर्मकार्योंके लिये पृथ्वी ख़रीदनेका उल्लेख है। ये ताम्रपत्र साधारण ताम्रपत्रोंके समान नहीं हैं। इनसे पता चलता है कि उस समय लोग धर्मकार्यके लिये राज्याधिकारियोंसे ज़मीन ख़रीदा करते थे और उसकी कीमत सुवर्ण मुद्राओंमें दिया करते थे। इस लेन देनके नियम इस प्रकार थे—पहले पृथ्वी ख़रीदनेवालेको उक्त

(१) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम् जिल्द ३, पृ० २६२।

प्रदेशके शासकके पास पृथ्वी ख़रीदनेके लिये दरख़्वास्त देनी पड़ती थी। उसमें जिस कार्यके लिये वह पृथ्वी ख़रीदना चाहता था, उसका तथा जहाँ परकी पृथ्वी ख़रीदनी होती थी वहाँकी प्रचलित प्रथाके हिसाबसे उसकी कीमतका उल्लेख करना पड़ता था। यह कीमत प्रत्येक कुल्यवाप (अर्थात् जितनी पृथ्वीमें एक कुल्य—द्रोण—नाज—बोया जावे उतनी पृथ्वी) पर दीनारोंके हिसाबसे लिखी जाती थी। यहाँ पर दीनारोंका तात्पर्य गुप्तोंकी सुवर्णमुद्राओंसे ही समझना चाहिये; क्योंकि गुप्तोंके अनेक लेखोंमें इसका उल्लेख आता है[1]। इस प्रकार प्रार्थना करने पर जब राज्यका पुस्तपाल (रैकर्ड-कीपर) इस पर अपनी अनुमति दे देता था तब ख़रीददारसे कीमत लेकर उसकी प्रार्थनाके अनुसार पृथ्वी नापकर उसकी हदबंदी कर दी जाती थी। इसके बाद प्रार्थी उसको उक्त कार्यमें ला सकता था।

उपर्युक्त दोनों ताम्रपत्रोंसे उस समय पुण्ड्रवर्धनभुक्ति (उत्तरी बंगाल) में बंजर ज़मीनकी कीमत फ़ी कुल्यवाप तीन दीनार होना प्रकट होता है।

इनसे यह भी प्रकट होता है कि उस समय विषयपति (ज़िला अफसर) को राज्यप्रबन्धमें सलाह देनेके लिये चार मनुष्योंकी एक सभा होती थी। इसमें एक नगरश्रेष्ठी अर्थात् नगरका सबसे बड़ा धनी आदमी, एक सार्थवाह अर्थात् सबसे बड़ा व्यापारी, एक प्रथम कुलिक अर्थात् सबसे बड़ा कारीगर और एक प्रथम कायस्थ–अर्थात् सबसे बड़ा लेखक या सैक्रेटरी रहता था।

मानकुवाँरसे मिले इसके लेखका हम पहले वर्णन कर चुके हैं। इसमें कुमारगुप्तके नामके आगे केवल '**महाराजश्री**' की ही उपाधि

(१) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, नंबर, ५,७,८,९,६२,६४।

होनेसे डा०फ्लीटने सन्देह किया था कि शायद पुष्यमित्रके और हूणोंके आक्रमणसे इसका राज्य कमज़ोर पड़ गया होगा। परन्तु उपर्युक्त गु० सं० १२९. के ताम्रपत्रमें कुमारगुप्तके आगे '**परमदैवत परमभट्टारक महाराजाधिराजाश्री**' की उपाधि लगी होनेसे प्रकट होता है कि उस समय भी इसका प्रताप अक्षुण्ण था और इसका राज्य पूर्वमें उत्तरी बंगाल तक फैला हुआ था।

परन्तु जूनागढ़से मिले इसके पुत्र स्कन्दगुप्तके लेख(१)में निम्नलिखित पद हैं:—

'**जित्वा पृथ्वीं समग्रां,**' '**सर्वेषु देशेषु विधाय गोप्त्रीन्,**'
'**पूर्वेतरस्यां दिशि पर्णदत्तं नियुज्य राजा धृतिमांस्तथाभूत्**'

इनसे प्रकट होता है कि कुमारगुप्त: प्रथमके अन्त समय उसके राज्यके पश्चिमी प्रदेश हूणों, (पुष्यमित्रों), आदिके आक्रमणोंसे अवश्य ही उसके अधिकारसे निकल गये थे और गु० सं० १३६ (ई० स० ४५५=वि० सं० ५११) के करीब इसीसे स्कन्दगुप्तको उनपर वापिस अधिकार करना पड़ा था। इसके बाद उसने वहाँ (सुराष्ट्र—काठियावाड़) के प्रबन्धके लिये अपने सब कर्मचारियोंमें योग्यतम कर्मचारी पर्णदत्तको नियुक्त किया था।

भिटारीसे भी स्कन्दगुप्तका एक लेख(२) मिला है। उसमें लिखा है:— '**पितरिदिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मीं भुजबलविजितारिर्य्यः प्रतिष्ठाप्यभूयः**" अर्थात् 'पिताके मरनेपर गड़बड़ाई हुई वंशलक्ष्मीको, जिसने पुनः प्रतिष्ठित करके' इससे भी प्रकट होता है कि कुमार

(१) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, नंबर १४।
(२) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० ५२।

गुप्तके अन्तिम समय राज्यमें गड़बड़ मच गई थी; जिसको मिटानेके लिये उसके पुत्र स्कन्दगुप्तको शत्रुओंसे युद्ध करना पड़ा था।

कुमारगुप्तकी मृत्यु ई० स० ४५५ (वि० सं० ५१२) में हुई थी[1]। इसकी स्त्रीका नाम अनन्तदेवी[2] और पुत्रोंका नाम स्कन्दगुप्त और पुरगुप्त था। यह अनन्तदेवी ही पुरगुप्तकी माता थी। परन्तु स्कन्दगुप्त भी इसीका पुत्र था या नहीं, इस बातका कुछ भी पता नहीं चलता है। इसके आश्वमेधिक सिक्कोंके मिलनेसे प्रतीत होता है कि यह भी प्रतापी राजा था और इसने भी अपने दादा समुद्रगुप्तकी तरह अश्वमेध यज्ञ किया था।

कुमारगुप्तके सिक्कोंसे अनुमान होता है कि इसका इष्टदेव कार्तिकेय था और इसकी उपाधियाँ '**महेन्द्रः**' और '**महेन्द्रादित्यः**' थीं। गुप्त संवत् ११६ (ई० स० ४३५–३६=वि० सं० ४९१–९२) का लेखखण्ड[3] गवालियरके ईशागढ़ परगनेके तुमैन गाँवसे मिला है। यह कुमारगुप्तके राज्य समयका है। इसमें घटोत्कचगुप्तकी वीरताका उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि शायद यह घटोत्कचगुप्त कुमारगुप्त प्रथमका पुत्र या छोटा भाई हो और उस (कुमारगुप्त प्रथम) के राज्य-समय ऐरनका शासक रहा हो। इसीसे इसके शासित प्रदेशके लेखमें कुमारगुप्तके नामके साथ साथ इसका भी नाम दिया गया होगा। यदि यह अनुमान ठीक हो तो महाराज घटोत्कच गुप्तके इतिहासमें वर्णित वैशालीसे मिली '**श्रीघटोत्कचगुप्तस्य**' नामवाली मुहर

---

(१) अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३०८।

(२) जर्नल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, (१८८९) पृ० ८९।

(३) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ४९, पृ० ११४–११५।

भी इसीकी अनुमान की जा सकती है।

एक प्रकारके धनुर्धराङ्कित सुवर्णके सिक्के[1] मिले हैं। इनमें सीधी तरफ़ राजाके हाथ नीचे चिनी लेखप्रणालीमें '**घटो**' लिखा होता है और उसके ऊपर अर्ध चन्द्र बना रहता है। परन्तु इसके किनारेके लेखके साफ़ न होनेसे केवल उसका अन्तिम अक्षर '**प्तः**' ही पढ़ा जाता है। उलटी तरफ़ '**क्रमादित्यः**' लिखा रहता है। इनकी बनावट और तोलपर विचार करनेसे इनके बनानेका समय ईसवी सन्‌की पाँचवीं शताब्दीका उत्तरार्ध ही विदित होता है। अतः ये सिक्के चन्द्रगुप्त प्रथमके पिता महाराज घटोत्कचके समयके नहीं हो सकते। सम्भव है कि ये सिक्के इसी घटोत्कच गुप्तके हों। परन्तु इस विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

कुमारगुप्तके सोने चाँदी और तांबेके सिक्कोंके सिवाय रजतावृत चाँदीके मुलम्मवाले (silver plated) सिक्के भी मिले हैं।

सुवर्णके सिक्के।

धनुर्धराङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ राजाके बायें हाथके नीचे '**कु**' और चारों तरफ़ उपगीति छन्दमें '**विजितावनिरवनिपतिः कुमारगुप्तो दिवं जयति**' अथवा '**जयति महीतलं कुमारगुप्तः,**' '**परमराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः,**' '**महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः**' या '**गुणेशो महीतलं जयति कुमारः**' लिखा होता है परन्तु पिछले दो पदोंवाले सिक्कोंपर क्रमशः हाथके नीचे और कुहनीके बाहरकी तरफ़ (चीनी लेखप्रणालीकी तरह) कुमार लिखा मिलता है। उलटी तरफ़ '**श्रीमहेन्द्रः**' लिखा रहता है।

---

(१) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स ऑफ़ गुप्त डाइनैस्टी, प्लेट २४, नं० ३।

खड्गधराङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ राजाकी दायें हाथकी कुहनीके नीचे '**कु**' लिखा होता है। इसपर अर्धचन्द्रकी आकृति बनी रहती है। किनारेपर उपगीति छन्दमें '**गामवजित्यसुचरितैः कुमारगुप्तो दिवं जयति**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ '**श्रीकुमारगुप्तः**' लिखा रहता है।

आश्वमेधिक—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ (बायें किनारेपर) '**जयति दिवं कुमारः**' लिखा होता है। किसी किसीमें घोड़ेके पैरोंके नीचे '**अश्वमेधः**' लिखा मिलता है। उलटी तरफ़ '**श्रीअश्वमेधमहेन्द्रः**' लिखा रहता है।

अश्वारोह्यङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ उपगीति छन्दमें '**पृथिवी तलम........‿...दिवं जयत्याजितः,**' '**क्षितिपतिरजितो विजयी महेन्द्रसिंहो दिवं जयति,**' '**क्षितिपतिरजितो विजयी कुमारगुप्तो दिवं जयति,**' '**गुप्तकुलव्योमशशी जयत्यजेयो जितमहेन्द्रः;**' '**कुमारगुप्तो जयत्याजितः**' या '**गुप्तकुलामलचन्द्रो मेहन्द्रकर्माजितो जयति**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ '**अजितमहेन्द्रः**' लिखा रहता है।

सिंहवधाङ्कित—इन सिक्कोंमें सीधी तरफ़ उपगीति छन्दमें '**साक्षादिव नरसिंहो सिंहमहेन्द्रो जयत्यनिशं,**' '**क्षितिपतिरजितमहेन्द्रः कुमारगुप्तोदिवं जयति,**' '**कुमारगुप्तो विजयी सिंहमहेन्द्रो दिवं जयति**' या वंशस्थविला छन्दमें '**कुमारगुप्तो युधि सिंहविक्रमः**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ '**श्रीमहेन्द्रसिंहः**' या '**सिंहमहेन्द्रः**' लिखा रहता है।

व्याघ्रवधाङ्कित—इन सिक्कोंमें सीधी तरफ़ '**श्रीमांव्याघ्रबलपरा-**

क्रमः' लिखा होता है। उलटी तरफ़ 'कुमारगुप्तोधिराजा' लिखा रहता है।

मयूराङ्कित—इन सिक्कोंमें सीधी तरफ़ '**जयति स्वभूमौ गुणराशि ......महेन्द्रकुमारः**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ '**महेन्द्रकुमारः**' लिखा रहता है।

प्रतापाङ्कित—इन सिक्कोंमें सीधी तरफ़ बीचकी मूर्तिके वाम भागमें '**कुमार**' और दक्षिण भागमें '**गुप्तः**' लिखा होता है और किनारेका लेख साफ़ न मिलनेके कारण अब तक नहीं पढ़ा गया है। उलटी तरफ़ '**श्रीप्रतापः**' लिखा रहता है।

गजारोह्याङ्कित—इन सिक्कोंपरका लेख अब तक नहीं पढ़ा गया है और न अभी तक यही पूर्ण रूपसे कह सकते हैं कि ये इसी राजा (कुमारगुप्त प्रथम) के हैं।

चाँदीके सिक्के।

गरुडाङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ राजाका मस्तक बना होता है और किसी किसीमें मस्तकके पीछे '**वर्षे**' लिखा होता है। परन्तु अङ्क नज़र नहीं आते। उलटी तरफ़ '**परमभागवतमहाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तमहेन्द्रादित्यः**' या '**परम भागवतराजाधिराजश्री-कुमारगुप्तमहेन्द्रादित्यः**' लिखा होता है। ये सिक्के इसके राज्यके पश्चिमी प्रान्तके हैं।

मयूराङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ राजाका मस्तक होता है। किसी किसी सिक्केमें संवत् भी लिखे रहते हैं; जिनमेंसे आज तक ११९, १२२ और १२४ पढ़े गये हैं। उलटी तरफ़ उपगीति छन्दमें '**विजितावनिरवनिपतिः कुमारगुप्तो दिवं जयति**' लिखा रहता है।

ये सिक्के इसके राज्यके मध्यप्रान्तके हैं।

(एशियाटिक सोसाइटीके मासिक पत्रमें इसका गुप्त संवत् १३६ का सिक्का भी छपा है।)

चाँदीके मुलम्मेवाले सिक्के।

गरुडाङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ राजाका मस्तक और ग्रीक अक्षरोंके चिह्न होते हैं। उलटी तरफ़ '**परमभागवतमहाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्तमहेन्द्रादित्यः**' लिखा रहता है। (ये सिक्के ताँबेके होते हैं और इनपर चाँदीका पानी चढ़ा रहता है।)

ताँबेके सिक्के।

गरुडाङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ राजाकी खड़ी तसबीर बनी होती है। उलटी तरफ़ '**कुमारगुप्तः**' लिखा रहता है।

अग्निकुण्डाङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ '**श्रीकु**' लिखा होता है। कुमारगुप्तके लेखों और सिक्कोंके मिलनेके स्थानोंसे अनुमान होता है कि इसने अपने पिताके राज्यको अच्छी तरहसे सम्हाला था।

७ स्कन्दगुप्त (क्रमादित्यः)।

ई० स० ४५५–४६९ (वि० सं० ५१२–५२६)।

यह कुमारगुप्त प्रथमका पुत और उत्तराधिकारी था और गुप्तसंवत् १३६ (ई० सं० ४५५=वि० सं० ५१२) की वसन्तऋतुमें राज्यपर बैठा था। इसके समयके चार लेख और एक ताम्रपत्र मिला है।

इनमेंसे पहला लेख बिहारसे मिला है[1]। इसमें संवत् नहीं है। यह लेख दो भागोंमें विभक्त है। पहले भागमें कुमारगुप्तका नाम लिखा है और

(१) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० ४७।

इस (कुमारगुप्त) के मन्त्री द्वारा यूपके बनवानेका वर्णन है । इससे यह भी प्रकट होता है कि इस मन्त्रीकी बहनसे कुमारगुप्तने विवाह किया था । यद्यपि इस लेखमें स्कन्दगुप्तका नाम नहीं है, तथापि इसके दूसरे भागमें स्कन्दगुप्तका नाम होनेसे और इस (पहले) भागमें भी 'स्कन्दगुप्तबट' नामक गाँवका उल्लेख होनेसे यह स्कन्दगुप्तके समयका ही प्रतीत होता है । दूसरे भागमें स्कन्दगुप्तका नाम लिखा है । (उपर्युक्त दोनों भागोंमें धार्मिक कार्योंका उल्लेख है ।)

दूसरा लेख भिटारीसे मिला है[1] । इसमें विष्णुप्रतिमाकी प्रतिष्ठाका और उसके पूजनादिकके प्रबन्धके लिये गाँवके दानका वर्णन है । इससे विदित होता है कि कुमारगुप्तके अन्तिम समयमें राज्यपर विपत्ति आपड़ी थी और इस (गुप्त) वंशका प्रतापसूर्य भी मेघाच्छन्नसा हो गया था; परन्तु स्कन्दगुप्तने अपने बाहुबलसे राज्यपर आई हुई इस विपत्तिको दूर कर दिया । इस बातके प्रमाणके लिये उक्त लेखमेंसे कई पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं:—

(पंक्ति १०)—**विचलितकुललक्ष्मीस्तम्भनायोद्यतेन क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा । समु-(पंक्ति ११) दितबलकोषान्पुष्यमित्रांश्च जित्वा क्षितिपचरणपीठे स्थापितो वामपादः ।**

---

(१) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं जि० ३, पृ० ५२ ।

(२) श्रीयुत हरि रामचन्द्र दिवेकरका कथन है कि 'पुष्यमित्रान्' के स्थानपर 'युद्ध्यमित्रान्' पाठ ठीक प्रतीत होता है; क्यों कि इस लेखके सिवाय आज तक पुष्यमित्र लोगोंका कहीं भी पता नहीं चलता है । तथा उक्त लेखमें भी 'पुष्य' और 'युद्ध्य' में विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता ।—(सरस्वती, मार्च १९१४, पृ० १५१–१५४ ।)

अर्थात् जाती हुई अपने वंशकी लक्ष्मीको रोकने लिये तैयार हुए जिस (स्कन्दगुप्त) ने ज़मीनपर लेट कर ही रात बिता दी और सेना और धनसे युक्त पुष्यमित्रोंको जीतकर अपना बायाँ पैर राजाओंके ऊपर रक्खा।

(पंक्ति १२)—**पितरिदिवमुपेते** (पंक्ति १३) **विप्लुतां वंश-लक्ष्मीं भुजबलविजितारिर्यः प्रतिष्ठाप्यभूयः जितमितिपरितो-षान्मातरं सास्रनेत्रां हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमभ्युपेतः।**

अर्थात् पिताके मरनेपर गड़ाबड़ाई हुई अपने कुलकी लक्ष्मीको, अपनी भुजाओंके बलसे शत्रुओंके नाश द्वारा पुनः प्रतिष्ठित करके पुत्रकी विजयसे हर्षके आँसू बहाती हुई माके पास, जिस प्रकार शत्रुओंको मारकर कृष्ण आये थे उसी प्रकार, स्कन्दगुप्त आया।

(पंक्ति १४) **स्वैर्दण्डैः......रत्युत्प्रचलितं वंशं प्रतिष्ठाप्य।**

अर्थात् संकटमें पड़े हुए अपने वंशको, अपनी ही फ़ौजकी सहा-यतासे पुनः प्रतिष्ठित करके।

(पंक्ति १५) **हूणैर्यस्यसमागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता।** अर्थात् हूणोंसे लड़ते समय जिसके बाहुबलसे पृथ्वी काँप गई थी।

इस लेखकी ११ वीं पंक्तिमें पुष्यमित्रोंको जीतनेका वर्णन आया है। परन्तु इन (पुष्यमित्रों) का पूरा पता लगाना कठिन है। सम्भ-वतः ये वे ही पुष्यमित्र होंगे; जिनका वर्णन विष्णुपुराणमें आया है। डाक्टर फ़्लीटके मतानुसार ये लोग नर्मदाके निकट रहते थे[1]। मि० विन्सैण्ट स्मिथ इनको ईरोनियन ख़याल करते हैं[2]। परन्तु अबतक इसका

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी (१८८९), पृ० २२६।
(२) ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १५६।

कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला है।

इस लेखकी १३ वीं पंक्तिसे अनुमान होता है कि कुमारगुप्तने अपने अन्तिम समयमें उमड़ते हुए पुष्यमित्रोंको रोकनेके लिये स्कन्द-गुप्तको भेजा था। और इस (स्कन्दगुप्त) ने तीन मास तक घोर संग्राम करके उनको जीत लिया था। परन्तु इसके विजय प्राप्त करके वापिस लौटनेके पूर्व ही इसका पिता कुमारगुप्त (प्रथम) मर चुका था, इसी लिये इसको देखकर इसकी माके आँसू निकलपड़े थे।

इस लेखकी १५ वीं पंक्तिसे प्रकट होता कि इसने हूणोंपर भी विजय प्राप्त की थी।

यद्यपि उपर्युक्त लेखमें संवत् नहीं लिखा है, तथापि यदि उप-र्युक्त हूण और जूनागढ़के लेखवाले म्लेच्छ एक ही हों तो मानना पड़ेगा कि यह लेख ई० स० ४५५ (वि० सं० ५१२) के आस-पासका है; क्यों कि इसी समय पहले पहल गुप्त राज्य पर हूणोंका आक्रमण हुआ था।

होर्नले साहब इस लेखको ई० स० ४६५ (वि० सं० ५२२) के बादका मानते हैं[1]। इसके प्रमाणमें वे कहते हैं कि उक्त संवत्-के पूर्व गाँधार पर हूणोंका अधिकार नहीं हुआ था। परन्तु अब तक इस बातका निश्चय नहीं हुआ है कि इस लेखमें लिखे हूणोंके साथके युद्धसे भारत पर किये गये हूणोंके किस आक्रमणसे तात्पर्य है।

तीसरा लेख जूनागढ़से मिला है। यह गुप्त संवत् १३८ (ई० स० ४५७–४५८=वि० सं० ५१३–५१४) का है। इसके दो भाग

(१) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, (१९०९), पृ० १२६–१२८।
(२) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, पृ० ५६।

हैं:—पहले भागसे विदित होता है कि उस समय स्कन्दगुप्तकी तरफ़से पर्णदत्त सुराष्ट्रका अधिकारी था और उसने अपने पुत्र चक्रपालितको गिरिनगर (गिरनार) का अधिकारी नियुक्त कर दिया था । तथा गुप्त संवत् १३६ (ई० स० ४५५–४५६=वि० सं० ५११–५१२) में वर्षाकी अधिकतासे सुदर्शन नामक झीलका बाँध टूट गया था। उसको गुप्त संवत् १३७ (ई० स० ४५६–४५७=वि० सं० ५१२–५१३) में उक्त चक्रपालितने दुरुस्त करवाया। दूसरे भागसे विदित होता है कि गुप्त सं० १३८ में चक्रपालितने चक्रभृत् नामक विष्णुका मन्दिर बनवाया था। इस लेखके पहले भागकी तीसरीसे छठी पंक्ति तकके श्लोकोंसे भी प्रकट होता है कि पिताके मरनेपर स्कन्दगुप्तने अपने भुजबलसे शत्रुओंको जीतकर अपना राज्य प्रतिष्ठित किया था और शत्रुओंको दबाये रखनेके लिये अपने राज्यके प्रत्येक प्रान्तमें अधिकारी नियुक्त कर दिये थे।

चौथा लेख कहौम (ककुभग्राम) से मिला है[१]। (यह कहौम नामक गाँव गोरखपुर परगनेमें है।) यह लेख गुप्त संवत् १४१ (ई० स० ४६०–४६१=वि० सं० ५१६–५१७) का है। इस लेखसे प्रकट होता है कि मद्र नामक किसी पुरुषने उक्त (ककुभ) गाँवमें पाँच तीर्थङ्करोंकी मूर्तियाँ और एक स्तम्भ बनवाया था। यद्यपि यह मद्रक जैन था, तथापि इसको ब्राह्मणोंमें भक्ति रखनेवाला लिखा है। यह लेख भी स्कन्दगुप्तके समयका ही है। इससे प्रकट होता है कि उक्त समय तक गुप्त राज्यके पूर्वी और पश्चिमी प्रान्त भी स्कन्दगुप्तके ही अधिकारमें थे।

इसके समयका एक ताम्रपत्र इन्दौरसे मिला है[२]। यह गुप्त संवत्

(१–२–) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० ६५, ६८।

१४६ (ई० स० ४६५–४६६=वि० सं० ५२१–५२२) का है। इससे विदित होता है कि, स्कन्दगुप्तका सामन्त वैश्यपति सर्वनाग अन्तर्वेदी (गङ्गा और यमुनाके बीचका देश) का स्वामी था। उसके समय किसी देवविष्णु नामक ब्राह्मणने इन्द्रपुरके सूर्यमन्दिरमें दीपक जलानेके लिये दान दिया था। इस ताम्रपत्रसे विदित होता है कि उस समय तक भी गुप्तराज्यके मध्यके प्रदेशोंमें शान्ति विराजती थी। इस (ताम्रपत्र) में स्कन्दगुप्तकी उपाधि 'परमभट्टारकमहाराजाधिराज' लिखी है।

गुप्त संवत् १४८ (ई० स० ४६७–४६८=वि० सं० ५२३–५२४) का एक लेख गढवासे मिला है[1]। यद्यपि इसमेंके राजाका नाम टूट गया है, तथापि संवतादिकोंसे अनुमान होता है कि यह लेख भी स्कन्दगुप्तके समयका ही है। इससे प्रकट होता है कि उस समय तक भी इसका राज्य निष्कण्टक था।

सोमदेवरचित कथासरित्सागरके १८ वें भागमें राजा विक्रमादित्यकी एक कथा लिखी है कि "एक समय उज्जैनमें महेन्द्रादित्य नामक राजा राज्य करता था। उसके समय भारतपर म्लेच्छोंने अपना अधिकार बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु महेन्द्रादित्यके पुत्र विक्रमादित्यने उनका नाश कर डाला।" इस कथाका और कुमारगुप्तके भिटारी और जूनागढ़के लेखोंका भाव बिलकुल मिलता हुआ ही है। उनसे भी—जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं—विदित होता है कि हूणोंने कुमारगुप्तके अन्तिम समय उसके राज्यपर हमला किया था। परन्तु उसके पुत्र स्कन्दगुप्तने उनको जीतकर अपने राज्यकी रक्षा की।

---

(१) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, नंबर ६६।

ऊपर लिखी हुई कथासरित्सागरकी कथामें राजाका नाम महेन्द्रादित्य और उसके पुत्रका नाम विक्रमादित्य लिखा है। कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्तके सिक्कोंसे प्रकट होता है कि कुमारगुप्तकी उपाधि महेन्द्रादित्य और उसके पुत्र स्कन्दगुप्तकी विक्रमादित्य थी। अतः उक्त कथाका संबन्ध इन्हीं दोनोंके समयसे है। मि० जोहन ऐलनका अनुमान है कि "यद्यपि राज्यपर बैठते समय स्कन्दगुप्तने हूणों (म्लेच्छों) के आक्रमणको रोक दिया था, तथापि इसके चाँदीके गरुडाङ्कित सिक्कोंके बहुत कम मिलनेसे अनुमान होता है कि इसके राज्यके अन्तिम भागमें गुप्त राज्यका पश्चिमी प्रान्त, जिसमें इस प्रकारके सिक्के ढाले जाते थे, इसके हाथसे निकल गया था। इसके उत्तराधिकारीके इस प्रकारके (चाँदीके गरुडाङ्कित) सिक्कोंके न मिलनेसे भी उपर्युक्त बातकी ही पुष्टि होती है, क्योंकि ऐसे सिक्के गुप्तराज्यके पश्चिमी प्रान्तमें ही चलते थे और जब वह प्रान्त इस (स्कन्दगुप्त) के हाथसे निकल गया तब फिर इसके उत्तराधिकारीको उनके ढालनेका सौभाग्य कैसे प्राप्त हो सकता था? ई० स० ४६५ (वि० स० ५२२) के करीब हूणोंने गान्धार (पश्चिमी पंजाब) पर अधिकार कर लिया और ई० स० ४७० (वि० स० ५२७) के करीब स्कन्दगुप्तके राज्य पर दुबारा आक्रमण किया। स्कन्दगुप्तने राज्यपर बैठते समय इनके हमलेसे अपने राज्यको अच्छी तरह बचा लिया था, तथापि वह इस (पिछले) आक्रमणको न सम्हाल सका। इससे गुप्तराज्यकी जड़ हिल गई और इसके बाद इसके वंशजोंका राज्य केवल अपने पूर्वी प्रान्तों पर ही रह गया।"

परन्तु कुमारगुप्त प्रथमके और बुधगुप्तके दामोदरपुरसे मिले हुए

ताम्रपत्रोंको देखकर स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्कन्दगुप्त और उसके उत्तराधिकारियोंके समय भी पुण्ड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) पर गुप्तोंका ही अधिकार था। इसी प्रकार इन्दौरसे मिले हुए गुप्त संवत् १४६ (ई० स० ४६७=वि० सं० ५२३) के स्कन्दगुप्तके समयके ताम्रपत्रसे अन्तर्वेदि (गंगा और यमुनाके बीचका प्रदेश) और इन्दौरका भी इसीके अधिकारमें होना सिद्ध होता है। कोसम (कौशाम्बी—जमनाके बाँये किनारे पर) से मिले गुप्त संवत् १३९ (ई० स० ४५९) के महाराजा भीमवर्माके लेखमें यद्यपि गुप्त राजाका नाम नहीं है तथापि उसमें गुप्त संवत्के होनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय वह प्रदेश भी स्कन्दगुप्तके ही अधीन था।

स्कन्दगुप्तकी उपाधि '**क्रमादित्य**' थी। परन्तु चाँदीके किसी किसी सिक्के पर '**विक्रमादित्य**' भी लिखी मिलती है।

इसके सोने और चाँदीके अब तक बहुत कम सिक्के मिले हैं। इनमेंसे वे सोनेके सिक्के—जो कि इसके राज्यके प्रारम्भिक कालमें ढाले गये थे—इसके पूर्वजोंके सिक्कोंसे मिलते हुए ही हैं। परन्तु इसके राज्यके उत्तरकालिक सिक्के—और ख़ास कर पूर्वी प्रान्तके सिक्के—ख़राब सुवर्णके बने हैं तथा वजनमें भी पहलेवालोंसे भारी हैं।

इसके कई प्रकारके सुवर्णके सिक्के मिले हैं:—

पूर्वकालिक।

धनुर्धराङ्कित—इन सिक्कों पर सीधी तरफ़ राजाके बाँयें हाथके नीचे चीनी लेखप्रणालीमें '**स्क न्द**' लिखा रहता है। सिक्केके बाँयें किनारे पर '**सुधन्वी**' और दाँयें पर '**जयति महीतलं**' पढ़ा जाता है।

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जि० १५, पृ० १२९,१४४।

(२-३) कौर्पस इ० इ० जि० ३, नं० १६ औरर नं० ६५, पृ० २६६-६७।

इसमेंका यह दाईं तरफ़का लेख स्पष्ट न होनेसे अब तक पूरा नहीं पढ़ा गया है। उलटी तरफ़ **'श्रीस्कन्दगुप्तः'** लिखा रहता है।

लक्ष्म्यङ्कित—इन सिक्कों पर भी ऊपर लिखे धनुधराङ्कित सिक्कोंके समान ही लेख होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि इनमें राजाके हाथके नीचे कुछ नहीं लिखा होता।

उक्त दोनों प्रकारके सिक्के तौलमें अन्य गुप्त सिक्कोंके समान ही होते हैं और स्कन्दगुप्तके राज्यके प्रारम्भिक कालके समझे जाते हैं।

उत्तरकालिक ।

धनर्धराङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ राजाके हाथके नीचे **'स्क न्द'** और किनारे पर उपगीति छन्दमें **'जयति दिवं श्रीक्रमादित्यः'** लिखा होता है। उलटी तरफ़ **'क्रमादित्यः'** लिखा रहता है।

ये सिक्के तौलमें अन्य सिक्कोंसे भारी होते हैं और इनका सुवर्ण भी ख़राब होता है। ये इसके राज्यके उत्तर कालके समझे जाते हैं।

चाँदीके सिक्के ।

गरुडाङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ किसी किसीमें राजाके मस्तकके पीछे **'वर्षे'** लिखा होता है। उलटी तरफ़ **'परमभागवत-महाराजाधिराजश्रीस्कन्दगुप्तक्रमादित्यः'** लिखा रहता है।

ये सिक्के इसके राज्यके पश्चिमी प्रान्तके हैं।

वृषभाङ्कित—इन सिक्कों पर सीधी तरफ़ कुछ नहीं लिखा होता। उलटी तरफ़ **'परमभागवतमहाराजाधिराजश्रीस्कन्दगुप्त-क्रमादित्यः'** लिखा रहता है। परन्तु इनके लेखोंमें बड़ी गड़बड़ होती है। किसी सिक्केमें कोई अक्षर भूलसे छुटा हुआ होता है और किसीमें कोई।

अग्निकुण्डाङ्कित—इन सिक्कोंमें सीधी तरफ़ ग्रीक अक्षरोंके चिह्न होते हैं। उलटी तरफ़ '**परमभागवतश्रीविक्रमादित्यस्कन्दगुप्तः**' या '**परमभागवतश्रीस्कन्दगुप्तक्रमादित्यः**' लिखा होता है। किसी किसीमें अन्तिम लेखके बीचके कुछ अक्षर भूलसे छुटे हुए होते हैं, तथा किसी किसी सिक्केपर (उलटी तरफ़) केवल '**परमभागवत-श्रीस्कन्दगुप्तः**' ही लिखा रहता है।

मयूराङ्कित—इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ संवतके अङ्क लिखे रहते हैं; जिनमेंसे अब तक गुप्त संवत् १४१,१४५ (८?),१४६ ही मिले हैं। (इनमें १४५ में का पाँचका अङ्क सन्दिग्ध है।) उलटी तरफ़ उपगीति छन्दमें '**विजितावनिरवनिपतिर्जयति दिवं स्कन्दगुप्तोयं**' या '**विजितावनिरवनिपतिःश्रीस्कन्दगुप्तो दिवं ज-यति**' लिखा रहता है। ये मयूराङ्कित सिक्के इसके राज्यके मध्य प्रान्तके हैं।

इस राजा (स्कन्दगुप्त) के सुवर्णके केवल दो ही प्रकारके सिक्कोंके मिलनेसे और उनमें भी अन्तिम समयके सिक्कोंका सुवर्ण ख़राब होनेसे अनुमान होता है कि इसके समय राज्यका वह पूर्वका विभव और विस्तार शायद कुछ घट गया था।

(रॉयल एशियाटिक सोसाइटीके मासिक पत्रमें इसका गुप्त-संवत् १४८ का सिक्का भी छपा है।)

स्कन्दगुप्तकी मृत्यु ई० स० ४६८ (वि० सं० ५२५) के बाद हुई होगी। मि० स्मिथ ई० स० ४६७ (वि० सं० ५२४) में इसकी मृत्यु मानते हैं।

कुमारगुप्त द्वितीय।

ई० स० ४६९–४७६ (वि० सं० ५२६–५३२)।

सारनाथसे बौद्ध मूर्तियोंपर खुदे हुए तीन लेख[1] मिले हैं। उनमेंका पहला गु० सं० १५४ (ई० स० ४७४=वि० सं० ५३०) का है। उसमें लिखा है **" भूमिं शासति कुमारगुप्ते:"**। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि उस समय कुमारगुप्तका राज्य था। परन्तु यह लेख स्कन्दगुप्तके पिता कुमारगुप्त प्रथमका तो हो ही नहीं सकता। अतः स्पष्ट है कि यह स्कन्दगुप्तके उत्तराधिकारी कुमारगुप्त द्वितीयका ही होगा। श्रीयुत राधागोविन्द बसाकका अनुमान है कि जिस प्रकार चन्द्रगुप्त प्रथमके पौत्रका नाम भी चन्द्रगुप्त ही था उसी प्रकार कुमारगुप्त प्रथमके पौत्रका नाम भी कुमारगुप्त हो तो इसमें शङ्काकी कोई बात नहीं है।

मन्दसोरसे मालव संवत् ४९३ और ५२९ (ई० सं० ४३७ और ४७३) का एक लेख मिला[2] है। इसका वर्णन हम कुमारगुप्त प्रथमके इतिहासमें कर चुके हैं। इसमें मालव संवत् ५२९ (ई० स० ४७३) में दशपुर (मालवा) के जिस सूर्यमन्दिरके जीर्णोद्धारका वर्णन है, वह इसी कुमारगुप्त द्वितीयके समय हुआ होगा।

बुधगुप्तका लेख गु० सं० १५७ का मिला है। अतः यदि गु० सं० १५६ तक कुमारगुप्तका जीवित रहना माना जाय तो खोहसे मिला हुआ महाराज हस्तीका ताम्रपत्र[3] भी इसी कुमारगुप्तके समयका होगा; क्यों कि उसमें गु० सं० १५६ (ई० स० ४७६=वि० सं० ५३३)

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, जिल्द ४७, पृ० १६१–१६२।

(२–३) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० ७९–८८ और नं० २१, पृ० ९३–१००।

लिखा है। परन्तु यदि कुमारगुप्त द्वितीयका देहान्त इसके पूर्व ही हो गया हो तो यह उसके उत्तराधिकारी बुधगुप्तके समयका समझा जायगा। इस लेखमें केवल '**गुप्तनृपराज्यभुक्तौ**' लिखा होनेसे उस समयके राजाके नामके विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु इतना तो इससे अवश्य सिद्ध होता है कि मालवेपर उस समय तक भी गुप्तराजाओंका ही अधिकार था।

कुछ सोनेके सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिनपर '**प्रकाशादित्यः**' लिखा है। मि० विन्सैण्ट स्मिथ[1] का अनुमान है कि ये सिक्के भी पुरगुप्तके ही हैं। परन्तु इस अनुमानको स्वीकार करनेसे पुरगुप्तकी 'विक्रमादित्य' और 'प्रकाशादित्य' दो उपाधियाँ माननी पड़ेंगी जो ठीक प्रतीत नहीं होतीं।

होर्नले साहब[2] इन 'प्रकाशादित्य' उपाधिवाले सिक्कोंको यशोधर्माके मानते हैं। परन्तु मि० जोहन ऐलन[3] इससे सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि एक तो सिक्कों पर '**विजित्य वसुधां दिवं जयति**' लिखना गुप्तवंशियोंमें रूढीसी हो गई थी और इसके लिखनेका अधिकारी होनेके लिये राजाको वास्तवमें पृथ्वीविजयकी आवश्यकता नहीं होती थी। अतः केवल उक्त लेखके अक्षरार्थको सार्थक करनेके लिये यशोधर्माको घसीटना उचित नहीं है। दूसरे अब तक कहीं भी यशोधर्माकी 'प्रकाशादित्य' उपाधि नहीं मिली है।

मि० एलन[4] इन सिक्कोंको स्कन्दगुप्तके उत्तराधिकारीके अनुमान

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० २९३।

(२) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१९०९) पृ० १३५–१३६।

(३–४) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स ऑफ गुप्त डाइनैस्टी (इण्ट्रोडकशन) पृ० ५२।

करते हैं; जो कि ईसाकी पाँचवी शताब्दीके अन्तिम भागमें हुआ होगा। आगे चलकर उन्होंने यह भी लिखा है कि आजतक स्कन्दगुप्तके उत्तराधिकारीका कुछ पता न लगनेके कारण ही भिटारीकी मुहरके आधार पर स्कन्दगुप्तका उत्तराधिकारी उसके भाई पुरगुप्तको मान लिया है। परन्तु सम्भव है कि स्कन्दगुप्तके समयसे इस वंशकी दो शाखाएँ हो गई हों और मुख्य शाखामें स्कन्दगुप्तके वंशज रहे हों और उपशाखामें पुरगुप्तके वंशज हों।

उपर्युक्त सारे अनुमान उस समय तकके हैं; जब तक कि स्कन्द-गुप्तके उत्तराधिकारीका पता नहीं चला था। परन्तु अब सारनाथसे मिले हुए गु० सं० १५४ के लेखके आधार पर इसके स्कन्दगुप्तके उत्तराधि-कारी सिद्ध होनेसे यदि ये सिक्के इसी कुमारगुप्त द्वितीयके मान लिये जायँ तो सब गड़बड़ मिट जायगी। यद्यपि ये सिक्के कुमारगुप्त तृतीयके सिक्कोंसे दिखनेमें भद्दे हैं तथापि नरसिंहगुप्तके सिक्कोंसे मिलते हुए हैं और यदि इनकी सुवर्णकी उत्तमता पर विचार किया जाय तो ये नरसिंहगुप्तके सिक्कोंसे पहलेके प्रतीत होंगे।

प्रकाशादित्य उपाधिवाले सोनेके सिक्के।

सिंहाश्वारोह्यंकित---इन सिक्कों पर सीधी तरफ़ घोड़ेके नीचे '**रु**' या '**उ**' और किनारे पर उपगीतिछन्दमें '**विजित्य वसुधां दिवं जयति**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ '**श्रीप्रकाशादित्यः**' लिखा रहता है। अभी तक इस विषयका पूरा प्रमाण न मिलनेसे कुमारगुप्त द्वितीयके विषयमें विद्वानोंने अधिकतर अनुमानसे ही काम लिया है।

बुधगुप्त ।

ई० स० ४७६–५०५ (वि० स० ५३२–५६२ ?) के निकट तक।

हम कुमारगुप्त द्वितीयके वर्णनमें सारनाथसे मिली हुई बौद्ध मूर्तियोंके तीन लेखोंका उल्लेख कर चुके हैं। इनमेंसे पहला गु०सं० १५४ का लेख बुधगुप्तके पिता कुमारगुप्तके समयका है। परन्तु दूसरे और तीसरे लेखमें[1] क्रमशः लिखा है:—

"**गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्तपंचाशदुत्तरे शते समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति**"

"**...प्त पंचाशदुत्तरे शते समानां पृथिवीं बुधगु...(प्ते) प्रशासति वैशाखमासे सप्तमे**"

इनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुप्त संवत् १५७ (ई० स० ४७७=वि० सं० ५३४) में बुधगुप्तका राज्य था।

कुमारगुप्त प्रथमके इतिहासमें हम जिन दामोदरपुरसे मिले हुए पाँच ताम्रपत्रोंका उल्लेख कर चुके हैं उनमेंसे पहले दो तो कुमारगुप्त प्रथमके समयके हैं और उसके बादके दो[2] इस बुधगुप्तके समयके हैं। इनमें बुधगुप्तकी उपाधि '**परमदैवतपरमभट्टारकमहाराजाधिराजश्री**' लिखी है। इनमें भी धर्मकार्यके लिये पृथ्वी खरीदनेका उल्लेख है। यद्यपि इन दोनोंमेंसे संवत्के अङ्क नष्ट हो गये हैं; तथापि इनसे यह तो स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि बुधगुप्तके समय भी गुप्त-राज्यका पूर्वी हिस्सा (उत्तरी बंगाल) इसीके राज्यमें सम्मिलित था।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, जिल्द ४७, पृ० १६२।

(२) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १५, पृ० १३४–१४१।

एरनसे स्तम्भ पर खुदा हुआ गुप्त संवत् १६५ (ई० स० ४८४–८५=वि० सं० ५४१–४२) का एक लेख[1] मिला है। इसमें बुधगुप्तके राज्यसमय महाराज मातृविष्णु द्वारा ध्वजस्तम्भ स्थापित करनेका वर्णन है। इसी लेखसे यह भी पता चलता है कि उस समय महाराज सुरश्मिचन्द्र यमुना और नर्मदाके बीचके प्रदेशका शासक था।

इसके चाँदीके सिक्के मिले हैं:—

मयूराङ्कित—इनमें सीधी तरफ़ राजाके मस्तकके पीछे संवत् लिखा रहता है। इनमेंसे अब तक केवल गुप्त संवत् १७५ (ई० स० ४९४–९५=वि० सं० ५५०–५१) ही पढ़ा गया है। उलटी तरफ उपगीति छन्दमें '**विजितावनिरवनिपतिः श्रीबुधगुप्तो दिवं जयति**' लिखा होता है। यह लेख कुमारगुप्त प्रथम और स्कन्दगुप्तके सिक्कों परके लेखोंसे मिलता हुआ ही है।

उपर्युक्त लेखों और सिक्कोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि बुधगुप्तका राज्य उत्तरी बंगाल, सारनाथ और नर्मदा व जमनाके बीचके प्रदेश पर था।

चीनीयात्री हुएन्त्संगके आधारपर कनिंगहाम साहबने लिखा है कि बुधगुप्त शीलादित्यके मगधको जीतनेके समयसे पहलेका चौथा राजा था। शीलादित्यने ई० स० ६०० में मगध विजय किया था।

हम पहले गुप्त संवत् १६५ के एरनके स्तम्भके लेखका उल्लेख कर चुके हैं। इसमें बुधगुप्तके समय महाराज सुरश्मिचन्द्रका मालवेका शासक होना, और इसके अधीनके विषयपति प्रादेशिकशासक मातृविष्णु और उसके छोटे भाईका ध्वजस्तम्भ खड़ा करना लिखा है।

---

(१) फ्लीटका कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं० १९।

इससे प्रकट होता है कि उस समय तक मालवेपर बुधगुप्तका ही अधिकार था। परन्तु वहीं (एरन) से एक लेख तोरमाणके राज्यके पहले वर्षका मिला है। इसमें स्वर्गवासी मातृविष्णुके छोटे भाई दयित-विष्णुके एक मन्दिर बनवानेका उल्लेख है। यह मन्दिर महाराजा-धिराज तोरमाणके राज्य-समय बनाया गया था। यद्यपि इस लेखमें संवत् नहीं है, तथापि बुधगुप्तके उसी स्थानके गु० सं० १६५ (ई० स० ४८४—५=वि० सं० ५४१—२) के लेखमें उल्लिखित मातृ-विष्णुके स्वर्गवास होनेके बाद दयितविष्णुके उक्त मन्दिरके बनवानेका उल्लेख होनेसे स्पष्ट प्रकट होता है कि ई० स० ४८४—५ (वि० सं० ५४१—२) तक मालवेपर गुप्तोंका ही अधिकार था और उसके बाद किसी समय उसपर तोरमाणने कब्ज़ा कर लिया होगा।

उपर्युक्त लेख जहाँसे मिले हैं उस स्थान(एरन)का उल्लेख समुद्रगुप्तके लेखमें ऐरिकिण नामसे आया है और उसीका उल्लेख पूर्वोक्त हूण-वंशी तोरमाणके लेखमें भी है। उस समय इसका विषयपति (हा-किम) मातृविष्णुका छोटा भाई धन्यविष्णु था। इससे प्रकट होता है कि समुद्रगुप्तसे लेकर बुधगुप्तके समय तक इस पश्चिमी प्रदेश (मालवा) पर गुप्तोंका ही अधिकार था और गुप्त सं० १६५ के बाद किसी समय कुछ कालके लिये इस पर तोरमाणका अधिकार हो गया था।

उपर्युक्त प्रमाणों पर विचार करनेसे डाक्टर हॉर्नले, मिस्टर वि-

---

(१) फ्लीटका कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं० ३६।

(२) फ्लीटका कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं० २।

न्सैण्ट स्मिथ और मिस्टर जोहन एलेन आदि विद्वानोंका अनुमान ठीक प्रतीत नहीं होता। उनका अनुमान है कि बुधगुप्तका राज्य केवल यमुना और नर्मदाके बीचके देश पर ही था, या उस समय पूर्वी मालवेके गुप्तोंकी एक अलग ही शाखा थी। क्यों कि बुधगुप्तके लेखोंसे प्रकट होता है कि वह उत्तरी बंगाल, बनारस और मालवेका स्वामी था। अतः स्कन्दगुप्तके बादसे गुप्तोंके हाथसे पश्चिमी प्रदेश (मालवा) का निकल जाना नहीं माना जा सकता।

खोह (बघेलखण्ड) से गुप्त संवत् १६३ (ई० स० ४८२–८३= वि० सं० ५३९–४०) का परिव्राजक महाराजा हस्तीका एक लेख मिला है। इसमें '**गुप्तनृपराज्यभुक्तौ**' लिखा होनेसे प्रकट होता है कि उक्त परिव्राजक राजा हस्ती भी इसी बुधगुप्तका सामन्त था।

कारी तलाई (जबलपुर डिस्ट्रिक्ट) से गु० सं० १७४ (ई० स० ४९३–४=वि० सं० ५५०–१) का एक ताम्रपत्र उच्छकल्पके महाराज जयनाथका मिला है। इसमें गुप्त संवत् लिखा होनेसे श्रीयुत बर्साक इसे भी बुधगुप्तका सामन्त ही अनुमान करते हैं। डा० फ्लीटने भी अपने गुप्त लेखोंकी भूमिकामें लिखा है कि पाँचवीं शताब्दीके चौथे चरणमें भी गुप्तोंका प्रभाव विद्यमान था।

---

(१) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, (१८८९) पृ० १३५।

(२) एलन्स, इण्डियन कौइन्स, गुप्त डाइनेस्टी (इण्ट्रोडक्शन) पृ० ६२।

(३) अर्ली हिस्ट्री ऑफ् इण्डिया, पृ० ३११ और एलन्स गुप्त कौइन्स (इण्ट्रोडक्शन) पृ० ४९।

(४–५) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं० २२ और २६।

(६) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १५, पृ० १२३।

(७) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, (इण्ट्रोडक्शन) पृ० २०–२१।

मि० विन्सैण्ट स्मिथने लिखा है कि ई० स० ४७० (वि० सं० ५२७) के आसपास स्कन्दगुप्तको वैदेशिकोंके लगातार होनेवाले आक्रमणोंके आगे सिर झुकाना पड़ा था और उसकी मृत्यु ई० स० ४८० (वि० सं० ५३७) के आसपास हुई थी। परन्तु ऊपर दिये हुए लेखों आदिके आधार पर अब यह अनुमान ठीक प्रतीत नहीं होता।

श्रीयुत के० पी० पाठकका अनुमान है कि गु० सं० १८० (ई० स० ५००) के आसपास तोरमाणने बुधगुप्तसे मालवा और सुराष्ट्र छीन लिया था। इसी समयसे शायद सुराष्ट्रमें मैत्रकवंशी भटार्कने हूणोंके सामन्तकी हैसियतसे वहाँ पर अपना राज्य कायम किया होगा। परन्तु मझगाँवसे मिले हुए गुप्त संवत् १९१ (ई० स० ५१०-११=वि० सं० ५६७-८) के महाराजा हस्तीके ताम्रपत्रमें और खोहसे मिले इसके पुत्र संक्षोभके गु० सं० २०९ (ई० स० ५२८-९=वि० सं० ५८५-६) के ताम्रपत्रमें 'गुप्तनृपराज्यभुक्तौ' लिखा होनेसे सिद्ध होता है कि गुप्तोंके राज्यके मध्यके प्रान्तों पर उस समय तक भी उन्हींका अधिकार था। हूण केवल इनके पश्चिमी राज्य पर ही अधिकार कर सके थे। मध्यका और पूर्वी प्रदेश गुप्तोंके ही अधिकारमें रहा था। इसीसे रापसन साहबका यह अनुमान भी--कि ईसवी सन्की पाँचवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें इनके सब सामन्त स्वाधीन हो गये थे--ठीक नहीं प्रतीत होता।

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ् इण्डिया, पृ० ३१०-११।

(२-३) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं जिल्द ३, नं० २३ और २५।

(४) रापसन, इण्डियन कौइन्स, पृ० २६, ९२।

उपर्युक्त सब बातों पर विचार करनेसे यही सार निकलता है कि भानुगुप्तके अन्तिम समय हूणोंके आक्रमणोंसे विस्तृत गुप्त राज्य हिल गया था और भानुगुप्तके समय उसका ह्रास प्रारम्भ हो गया था।

गवालियरसे मिला हुआ मिहिरकुलका लेख[1] उसके राज्यके १५ वें वर्षका है। इससे सिद्ध होता है कि उसने कमसे कम १५ वर्ष तो अवश्य ही राज्य किया था। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि वह भानु-गुप्तका समकालीन था और उस समय उसका अधिकार केवल गुप्तोंके पश्चिमी प्रदेश (मालवा) पर ही था।

भानुगुप्त ।

ई० स० ५०५ (वि० सं० ५६२) के निकटसे ई० स० ५३३–४ (वि० सं० ५९०–१) के निकट तक।

यह बुधगुप्तका उत्तराधिकारी था।

एरनसे गुप्त संवत् १९१ (ई० स० ५१०–११=वि० सं० ५६६–६७) का गोपराजका एक लेख मिला है[2]। इसमें प्रतापी राजा भानुगुप्तके साथ गोपराजका इस स्थान पर आना और युद्धमें मारा जाना लिखा है। यद्यपि इसमें शत्रुओंके नामका उल्लेख नहीं है, तथापि सम्भवतः ये हूण लोग ही होंगे।

दामोदरपुरसे मिले हुए पूर्वोल्लिखित पाँच ताम्रपत्रोंमेंसे चारका वर्णन यथास्थान किया जा चुका है। श्रीयुत राधागोविन्द बसाकका अनुमान है कि यह पाँचवाँ ताम्रपत्र[3] इसी भानुगुप्तके समयका है।

---

(१) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं० ३७।

(२) फ्लीट, कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं जिल्द ३, नं० २०।

(३) एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द १५, पृ० १४१–४४।

यद्यपि इस ताम्रपत्रमें राजाके नामके पहले अक्षर टूट गये हैं और केवल पिछले दो अक्षर 'गुप्त' ही रह गये हैं, तथापि उनका अनुमान है कि टूटे हुए स्थानमें केवल दो ही अक्षर समा सकते हैं और सम्भवतः ये दोनों अक्षर 'भानु' ही होंगे। यदि यह अनुमान ठीक हो तो भानुगुप्तका कमसे कम गुप्त संवत् २१४ (ई० स० ५३३–४= वि० सं० ५९०–१) तक उत्तरी बंगालका स्वामी होना मानना पड़ेगा; क्यों कि उक्त ताम्रपत्र गुप्त संवत् २१४ के भाद्रपद मासका है और इसमें पूर्ववर्णित ताम्रपत्रोंके अनुसार ही गुप्त राजाकी उपाधि '**परमदैवतपरमभट्टारकमहाराजाधिराजश्री**' लिखी है। इस ताम्रपत्रमें 'पुण्ड्रवर्धनभुक्ति' (उत्तरी बंगाल) के शासकका नाम व उपाधि '**उपरिकमहाराजाराजपुत्रदेवभट्टारक**' लिखी है। इस राजपुत्र उपाधिसे अनुमान होता है कि उस समय वहाँका शासक शायद बुधगुप्तका पुत्र होगा।

बुधगुप्तके इतिहासमें गु० सं० १९१ के हस्तीके और गु० सं० २०९ के उसके पुत्र संक्षोभके ताम्रपत्रोंका वर्णन कर चुके हैं। उनसे प्रकट होता है कि उस समय भी उक्त प्रदेशपर भानुगुप्तका अधिकार था।

उच्छकल्पके महाराजा सर्वनाथका एक ताम्रपत्र[1] गुप्त संवत् १९३ (ई० स० ५१२–१३=वि० सं० ५६९–७०) का और दो लेख क्रमशः गु० सं० १९७[2] (ई० स० ५१६–१७=वि० सं० ५७३=४) और गु० सं० २१४[3] (ई० स० ५३३–४= वि० सं० ५९०–९१) के मिले हैं। इनसे अनुमान होता है कि

(१-२-३) फ्लीट, कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं० २८, ३०, ३१।

यह भी भानुगुप्तका समकालीन और सामन्त था। श्रीयुत बसाकका अनुमान है कि शायद सर्वनाथका पिता जयनाथ भी कुछ कालतक इसका समकालीन व सामन्त रहा हो, तो आश्चर्य नहीं।

मन्दसोरसे तीन लेख[1] यशोधर्माके समयके मिले हैं। इनमेंका एक मालव संवत् ५८९ (ई० स० ५३२) का है। उपर्युक्त लेखोंमेंसे पहले लेखमें लिखा है:—

ये भुक्ता गुप्तनाथैर्न सकलवसुधाक्रान्तिदृष्टप्रतापै-
र्नाज्ञा हूणाधिपानां क्षितिपतिमुकुटाध्यासिनी यान्प्रविष्टा ॥
...॥
आलौहित्योपकण्ठात्तलवनगहनोपत्यकादामहेन्द्रा-
दागङ्गाश्लिष्टसानोस्तुहिनिशिखरिणः पश्चिमादापयोधेः ॥
सामन्तैर्यस्य बाहुद्रविणहृतमदैः पादयोरानमद्भिः।
...॥
नीचैस्तेनापि यस्य प्रणतिभुजबलावर्जनक्लिष्टमूर्ध्ना-
चूडापुष्पोपहारैर्मिहिरकुलनृपेणार्चितं पादयुग्मं ॥

अर्थात्—प्रबल पराक्रान्त गुप्त राजाओंने भी जिन प्रदेशोंको नहीं भोगा था और न अतिबली हूण राजाओंकी ही आज्ञाका जहाँ प्रवेश हुआ था (ऐसे प्रदेशों पर भी यशोधर्माका अधिकार था।)

(पूर्वमें) लौहित्य नदी (ब्रह्मपुत्रा) से लेकर पश्चिमी समुद्रतक और (उत्तरमें) हिमालयसे (दक्षिणमें) महेन्द्रपर्वत तकके सामन्त लोग जिसके पैरों पर गिरते थे।

जिसके पैरोंपर प्रतापी राजा मिहिरकुलको भी सिर झुकाना पड़ता था।

---

(१) फ्लीटका कौर्पस इन्स० इ० जि० ३, नं० ३३, ३४, ३५।

उपर्युक्त बातोंसे अनुमान होता है कि सम्भवतः ईसवी सन् ५३३–४ (वि० सं० ५९०–९१) के बाद किसी समय यशोधर्माने मिहिरकुलको हरा कर अपनेको उत्तरी भारतका सम्राट् घोषित किया होगा और उसी समयके करीब गुप्तराज्यकी समाप्ति हुई होगी।

चीनी यात्री हुएन्त्संगने लिखा है:—"श्रावस्तिका राजा मिहिरकुल बौद्धोंका बड़ा शत्रु था। उसने बालादित्यके राज्यपर हमला किया। बालादित्यने पहले तो उसको पकड़ लिया, परन्तु अन्तमें छोड़ दिया। इस पर वह भाग कर काश्मीर चला गया और वहाँका राजा बन बैठा।"[1]

विद्वान् लोग इस बालादित्यको और भिटारीसे मिली हुई मुहरमेंके गुप्त राजा नरसिंहगुप्तको एक ही अनुमान करते हैं; क्योंकि इसके सिक्कों पर उक्त उपाधि (बालादित्य) लिखी मिलती है।

उपर्युक्त दो विरुद्ध प्रमाणोंको देखकर मि० विन्सैण्ट स्मिथने अनुमान किया था[2] कि "शायद वैदेशिक शत्रुओंसे लड़नेके लिये उस समय राजा लोग मगधके राजा बालादित्यकी और मध्यभारतके राजा यशोधर्माकी अधिनायकतामें एकत्रित हुए होंगे।" परन्तु डाक्टर फ्लीट[3] लिखते हैं कि "पश्चिममें तो मिहिरकुलको यशोधर्माने हराया था और मगधकी तरफ़ बालादित्यने।" मि० एलनने लिखा[4] है कि "बालादित्यने तो केवल मिहिरकुलके हमलेसे मगधकी रक्षा की होगी; परन्तु अन्तमें यशोधर्माने ही उसे पूर्णतया परास्त करके कैद कर लिया होगा। किन्तु हुएन्त्संग बौद्धधर्मानुयायी था। इसीसे उसने दोनों कथाओंको

(१) वाटर्स–युआनचवंग्स ट्रैवल्स, पृ० २८८–२९९।

(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ३१८।

(३) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी (१८८९) पृ० २२८।

(४) एलन्स–इण्डियन कौइन्स, गुप्त डाइनैस्टी, (इण्ट्रोडक्शन) पृ० ५९।

सुनकर मिहिरकुलको पूर्ण रूपसे पराजित करनेका यश अपने सधर्मी बालादित्यको ही देना उचित समझा हो तो आश्चर्य नहीं।"

इन सब बातोंका तात्पर्य यही निकलता है कि यशोधर्माके प्रताप-विस्तारके साथ ही साथ गुप्तोंका प्रभाव उत्तरी भारतमें अस्त हो गया था।

गुप्त राजाओंका समय।

१ गुप्त—वि० सं० ३३२–३५७ (ई० स० २७५–३००)।

२ घटोत्कच—वि० सं० ३५७–३७७ (ई०स० ३००–३२०)।

३ चन्द्रगुप्त (प्रथम)—वि० सं० ३७७–३९२ (ई० स० ३२०–३३५)।

४ समुद्रगुप्त—वि० सं० ३९२–४३७ (ई० स० ३३५–३८०)।

५ चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य)—वि० सं० ४३७–४७० (ई० स० ३८०–४१३)।

६ कुमारगुप्त प्रथम (महेन्द्रादित्य)—वि० सं० ४७०–५१२ (ई० स० ४१३–४५५)।

७ स्कन्दगुप्त (क्रमादित्य)—वि० सं० ५१२–५२६ (ई० स० ४५५–४६९)।

८ कुमारगुप्त द्वितीय (क्रमादित्य)—वि० सं० ५२६–५३२ (ई० स० ४६९–४७६)।

९ बुधगुप्त—वि० सं० ५३२–५६२ (ई० स० ४७६–५०५)।

१० भानुगुप्त—वि० सं० ५६२–५९० (ई० स० ५०५–५३३)।

गुप्त-राजाओंका वंशवृक्ष।
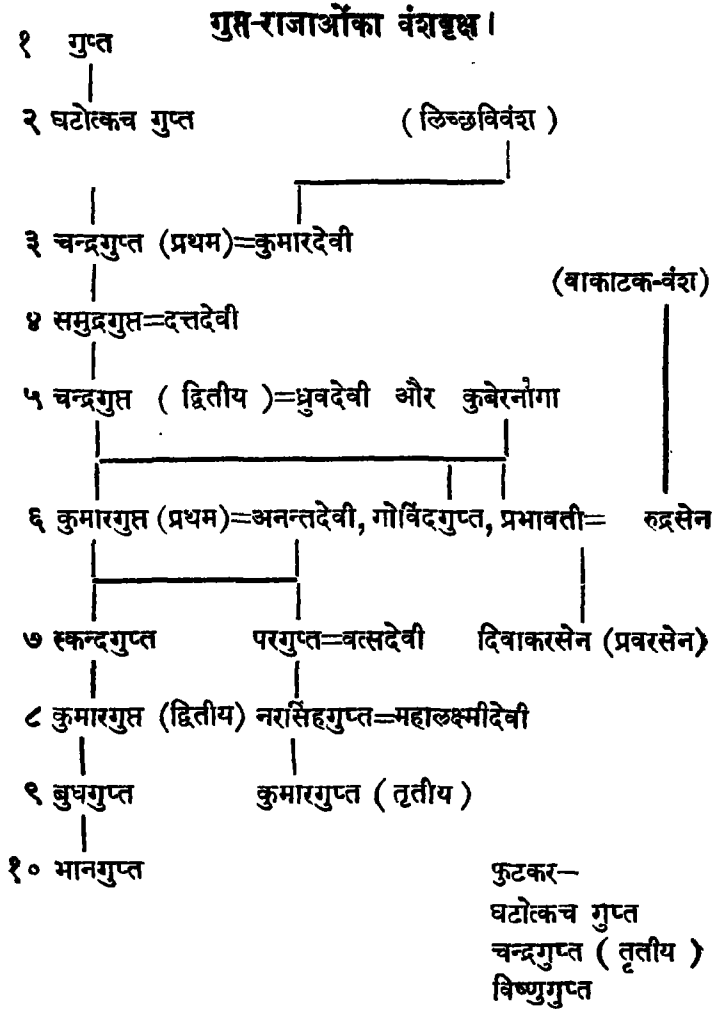
(१) इण्डियन ऐण्टिकेरी (१९१२) पृ० २१४—१५।

गुप्त राजाओंके लेखों और सिक्कोंमें मिले हुए संवत्।

राजाका नाम	गुप्त संवत्	विक्रम संवत्	ईसवी सन्	मिलनेका स्थान	प्रमाण
चन्द्रगुप्त (द्वितीय)	८२	४५७-८	४०१—२	उदयगिरि	कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं. ३
,,	८८	४६३-४	४०७—८	गढवा	,, ,, ,, नं. ७
,,	९०	४६५-६	४०९-१०	चाँदीके सिक्के	एलन केटलॉग ऑफ़ गुप्त डाइनैस्टी कौइन्स नं. १३३
,,	९३	४६८-९	४१२—३	साँची	कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं. ५
कुमारगुप्त (प्रथम)	९६	४७१-२	४१५—६	बिलसद	,, ,, ,, नं. १०
,,	९८	४७३-४	४१७—८	गढ़वा	,, ,, ,, नं. ९
,,	११३	४८८-९	४३२—३	मथुरा	एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द, २ पृ० २१०
,,	११६	४९१-२	४३४—५	तुमेन	इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द ४९, पृ. ११४-१५
,,	११७	४९२-३	४३६—७	करमडांडे	एण्टिक्विटीज़ ऑफ चम्बा, पृ. १२३
		४९३ (माल संवत्)	४३७—८	मन्दसोर	कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं. १८
,,	११९	४९४-५	४३८—९	चाँदीके सिक्के	एलन कैटलॉग ऑफ गुप्त डाइनैस्टी कौइन्स नं. ३८५
,,	१२२	४९७-८	४४१—२	,,	,, ,, ,, नं. ३८८
,,	१२४	५००-१	४४३—४	,,	,, ,, ,, नं. ३९८
,,	१२४	५००-१	४४३—४	दामोदरपुर	एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १५ पृ० १२९-३२
,,	१२९	५०४-५	४४८—९	,,	,, ,, ,, पृ० १३२-३४

राजाका नाम	गुप्त संवत्	विक्रम संवत्	ईसवी सन्	मिलनेका स्थान	प्रमाण
कु. गु. तृ.	१२९	५०४–५	४४८–९	मानकुवार	कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३ नं. ११
,,	१३६	५११–२	४५५–६	चाँदीके सिक्के	जर्नल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल(१८९४)पृ. १७५
स्कन्दगुप्त	१३६	५११–२	४५५–६	जूनागढ	कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३ नं. १४
,,	१३७	५१२–३	४५६–७	,,	,, ,, ,, नं. १४
,,	१३८	५१३–४	४५७–८	,,	,, ,, ,, नं. १४
,,	१४१	५१६–७	४६०–१	कहौम	,, ,, ,, नं. १५
,,	१४१	५१६–७	४६०–१	चाँदीके सिक्के	एलन्स कैटलॉग ऑफ़ गुप्त कौइन्स नं. ५२३
,,	१४५	५२०–१	४६४–५	,,	,, ,, ,, नं. ५२७
,,	१४६	५२१–२	४६५–६	,,	,, ,, ,, नं. ५२८
,,	१४६	५२१–२	४६५–६	इन्दौर	कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं. १६
,,	१४८	५२३–४	४६७–८	गढवा	,, ,, ,, ,, नं. ६६
,,	१४८	५२३–४	४६७–८	चाँदीके सिक्के	जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१८८९) पृ. १३४
कुमारगुप्त (द्वितीय)	१५४	५२९–३०	४७३–४	सारनाथ	इण्डियन ऐण्टिक्केरी, जिल्द ४७, पृ० १६१–२
,,		५२९ (मालव संवत्)	४७३–४	मन्दसोर	कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं. १८
बुधगुप्त	१५७	५३२—३	४७६–७	सारनाथ	इण्डियन ऐण्टिक्केरी, जिल्द ४७, पृ० १६२
,,	१६५	५४०—१	४८४–५	एरन	कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं. १९
,,	१७५	५५०—१	४९४–५	चाँदीके सिक्के	एलन कैटलॉग ऑफ़ गुप्त कोइन्स, नं. ६१७
भानुगुप्त	१९१	५६६—७	५१०–१	एरन	कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं. २०
,,	२१४	५९०—१	५३३–४	दामोदरपुर	एपिग्राफ़िया इण्डिका जिल्द १५, पृ. ४४१–४४

उपर्युक्त गुप्त संवत्के समकालीन वि० सं० और ई० स० मेंसे बहुतसे विद्वानोंके मतानुसार १ वर्ष घटाया जा सकता है।

भिटारीकी मुहरमेंके विशेष राजा।

भिटारी (ज़िला गाज़ीपुर) से कुमारगुप्तकी एक मुहर[1] मिली है। यह मिश्रित चाँदीकी है। इसमें गुप्तसे लेकर कुमारगुप्त प्रथम तकके नाम दिये हैं। उसके बाद कुमारगुप्तके पुत्रका नाम महाराजश्रीपुरगुप्त लिखा है। इसकी माका नाम महादेवी अनन्तदेवी और स्त्रीका नाम वत्सदेवी था। वत्सदेवीसे नरसिंहगुप्तने जन्म लिया और इसकी स्त्री महालक्ष्मी देवीसे कुमारगुप्त उत्पन्न हुआ।

श्रीयुत रमेशचन्द्र मजूमदारका अनुमान[2] है कि कुमारगुप्त प्रथम ई० स० ४५६–७ के पूर्व ही मर गया था और अफसदके लेखानुसार गुप्तवंशकी पिछली शाखाके कुमारगुप्तने ईश्वरवर्माको हराया था; जो हारहासे मिले हुए लेखके अनुसार ईसाकी छठी शताब्दीके मध्यमें विद्यमान था। अतः सारनाथसे मिला बौद्ध मूर्तिके नीचे खुदा हुआ गुप्त संवत् १५४ (ई० स० ४७३–४) का लेख उपर्युक्त दोनों कुमारगुप्तोंके समयका नहीं हो सकता। सम्भवतः वह भिटारीसे मिली हुई मुहरके कुमारगुप्त द्वितीयके समयका ही होना चाहिये। बहुतसे विद्वान् इसे दूसरी शाखाके किसी कुमारगुप्तका अनुमान करते हैं। परन्तु स्कन्दगुप्तकी मृत्युके अनन्तर छः वर्षके भीतर ही गुप्त राज्यमें दूसरी शाखाका प्रादुर्भाव होना नहीं माना जा सकता; क्यों कि दामोदरपुरसे मिले हुए कुमारगुप्तके उत्तराधिकारी बुधगुप्तके ताम्रपत्रसे स्पष्ट प्रकट होता है कि वह भी अपने पूर्वजके समान ही प्रतापी था। अतः यदि भिटारीकी मुहरके कुमारगुप्तके पुत्र पुरगुप्तको और स्कन्दगुप्तको एक

---

(१) जर्नल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल (१८८९) पृ० ८४–१०५।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, (१९१८) पृ० १६१–६७।

ही मान लिया जाय तो यह सब गड़बड़ मिट जाती है। (डाक्टर हार्नलेका भी यही अनुमान है।) अगर यह बात ठीक हो तो इन राजाओंका क्रम इस प्रकार होगा:—

नं०	राजाओंके नाम	ज्ञात समय	आनुमानिक काल
१	स्कन्दगुप्त या पुरगुप्त अथवा स्कन्दगुप्त और पुरगुप्त	ई० स० ४५६–७ से ४६७–८	ई० स० ४५६–४६८
२	नरसिंहगुप्त	×	ई० स० ४६८–४७२
३	कुमारगुप्त द्वितीय	ई० स० ४७३–४	ई० स० ४७२–४७७
४	बुधगुप्त	४७७–८ से ४९४–५	ई० स० ४७८–५००

और बुधगुप्तके बाद ई० स० की छठी शताब्दीके आरम्भसे मगधके पिछले गुप्त राजाओंकी शाखाका राज्य प्रारम्भ हो गया होगा; क्यों कि उस शाखाका चौथा राजा कुमारगुप्त ईश्वरवर्माका समकालीन होनेसे ईसाकी छठी शताब्दीके मध्यमें विद्यमान था। परन्तु श्रीयुत राधा गोविन्द बसाकका अनुमान[1] है कि स्कन्दगुप्तका उत्तराधिकारी गुप्त संवत् १५४ (ई० स० ४७३–४) के सारनाथके लेखवाला कुमारगुप्त ही था और उसके पीछे बुधगुप्त गद्दीपर बैठा। सम्भव है कि जिस प्रकार चन्द्रगुप्त प्रथमके पौत्रका नाम भी चन्द्रगुप्त था, उसी प्रकार कुमारगुप्त प्रथमके पौत्रका नाम भी कुमारगुप्त ही होगा। भरसरसे जो गुप्तोंके सिक्के मिले थे उससे भी इसी बातकी पुष्टि होती

(१) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, (१९०९), पृ० १०२।

(२) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १५, पृ० ११८–२०।

है । उनमें समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त (द्वितीय) कुमारगुप्त (प्रथम) स्कन्दगुप्त और प्रकाशादित्यके सिक्के थे । इन्हींके आधार पर मि० एलनने अनुमान किया था कि "सम्भवत: प्रकाशादित्य ही स्कन्दगुप्तका उत्तराधिकारी था और उसीके समय ये सिक्के गाड़े गये होंगे ।" डाक्टर होर्नलेके अनुमान (स्कन्दगुप्त और पुरगुप्त दोनों एक ही राजाके नाम थे) के खण्डनमें उन्होंने (मि० जोहन एलनने) स्पष्ट ही लिखा है कि "यह बिलकुल असम्भव है कि 'विक्रमादित्य' और 'प्रकाशादित्य' ये दोनों उपाधियाँ एक ही राजाकी हों ।" अत: 'प्रकाशादित्य' उपाधिवाले सिक्के किसी दूसरे ही राजाके होंगे, जो कि ईसाकी पाँचवीं शताब्दीके अन्तिम भागके निकट विद्यमान था और जिसका नाम अब तक प्रकट नहीं हुआ है ।

श्रीयुत बसाक इन्हीं (प्रकाशादित्य उपाधिवाले) सिक्कोंको स्कन्दगुप्तके उत्तराधिकारी कुमारगुप्त द्वितीयके अनुमान करते हैं । दामोदरपुरसे जो गुप्त संवत् २१४ (ई० स० ५३३–३४) का ताम्रपत्र मिला है, उससे प्रकट होता है कि उक्त समय तक भी गुप्तवंशकी प्रधान शाखाका प्रभाव पूर्णतया विद्यमान था । इन्हीं सब बातोंके आधार पर बसाक महाशय भिटारीकी मुहरके पुरगुप्त आदि राजाओंको गुप्तोंकी उपशाखामें अनुमान करते हैं और उनका कहना है कि जिस समय स्कन्दगुप्त हूणों आदिसे लड़नेमें लगा हुआ था, उसी समय इसके भाई पुरगुप्तने अपना राज्य अलग ही कायम कर लिया होगा और अन्तमें प्रधान शाखावालोंने इन्हें अपना कुटुम्बी जान इनसे छेड़ छाड़ करना उचित न समझा होगा ।

---

(१) एलन्स कैटलॉग ऑफ़ गुप्त कौइन्स (इन्ट्रोडकशन), पृ० ५१–५२ ।

नरसिंहगुप्त (बालादित्य) के बनवाये हुए नालन्दके प्रसिद्ध मन्दिरसे प्रकट होता है कि सम्भवतः इस शाखाका राज्य गुप्तराज्यके पूर्वी भाग —दक्षिणी बिहार—में होगा। यदि यह अनुमान ठीक हो तो इनकी वंशावली इस प्रकार होगी:—
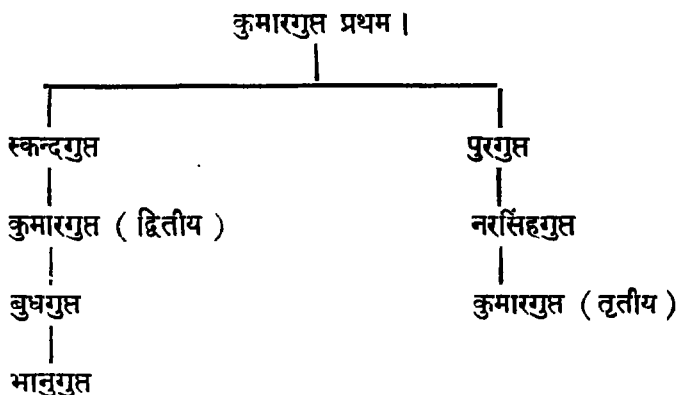
पाठकोंके अवलोकनार्थ ऊपर दोनों मत उद्धृत कर दिये गये हैं; परन्तु जब तक कुछ और प्रमाण न मिल जायँ तब तक इस विषयमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता।

अब आगे इन राजाओंका इतिहास लिखा जाता है:—

पुरगुप्त।

कुछ विद्वान् इसे स्कन्दगुप्तका छोटा भाई अनुमान करते हैं और कुछ इसे स्कन्दगुप्तका ही दूसरा नाम समझते हैं। पहले मतवालोंमें भी दो भेद हैं। एक इसे स्कन्दगुप्तका उत्तराधिकारी और प्रधान शाखाका राजा मानते हैं और दूसरे इसे दूसरी छोटी शाखाका संस्थापक अनुमान करते हैं। इनका खुलासा वर्णन पहले किया जा चुका है।

परमार्थने वसुबन्धुके जीवनचरितमें लिखा है कि "इस (वसुबन्धु) के प्रभावसे अयोध्याका राजा विक्रमादित्य बौद्धमतानुयायी हो गया था और उसने अपनी रानी और (उत्तराधिकारी) पुत्र बालादित्यको इसके पास शिक्षा ग्रहण करनेके लिये भेजा था। जब बालादित्य राज्य-पर बैठा तब उसने अपने गुरु वसुबन्धुको अयोध्यामें बुलवाया।"

मि० होर्नलेका अनुमान है कि पुरगुप्तका ही दूसरा नाम विक्रमादित्य था; क्योंकि उसके पुत्र नरसिंहगुप्तके सिक्कोंपर 'बालादित्य' उपाधि लिखी मिलती है। उनका यह भी अनुमान है कि शायद स्कन्दगुप्त (विक्रमादित्य) ने ही पिछले दिनोंमें हूणोंसे अपनी राजधानीकी रक्षा करके 'पुरगुप्त' की उपाधि ग्रहण की होगी।

मि० विन्सैण्ट ए० स्मिथने लिखा है कि स्कन्दगुप्तके मरनेपर ईसवी सन् ४८० (वि० सं० ५३७) के आसपास उसका भाई पुरगुप्त गद्दीपर बैठा। परन्तु स्कन्दगुप्त, कुमारगुप्त और बुधगुप्तके लेखोंपर विचार करनेसे मि० स्मिथका उपर्युक्त अनुमान ठकि प्रतीत नहीं होता। हम यथास्थान लिख चुके हैं कि स्कन्दगुप्तके लेख ई० स० ४६७-६८ (वि० सं० ५२३-२४) तकके, कुमारगुप्तके ई० स० ४७३-७४ (वि० सं० ५२९-३०) के और बुधगुप्तके ई० स० ४७६-७७ (वि० सं० ५३२-३३) से ई० स० ४९४-९५ (वि० सं० ५५०-५१) तकके मिले हैं। अतः ईसवी सन् ४८० (वि० सं० ५३७) के करीब पुरगुप्तका स्कन्दगुप्तके पीछे गद्दीपर

---

(१) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१९०९), पृ० १०२।

(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ३११।

बैठना असम्भव प्रतीत होता है। इसके धनुर्धराङ्कित सोनेके सिक्के मिले हैं। इन सिक्कोंपर सीधी तरफ़ राजाके हाथके नीचे पु र लिखा होता है और किनारेका लेख स्पष्ट न होनेके कारण पढ़ा नहीं जाता। उलटी तरफ़ '**श्रीविक्रमः**' लिखा रहता है।

नरसिंहगुप्त।

भिटारीकी मुहरमें इसे पुरगुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी लिखा है। इसके सिक्कोंमें इसकी उपाधि 'बालादित्य' लिखी मिलती है। चीनी यात्री हुएन्त्संगने लिखा है:—"श्रावस्तिका राजा मिहिरकुल बौद्धोंका बड़ा शत्रु था। उसने बालादित्यके (मगध) के राज्य पर हमला किया। बालादित्यने पहले तो उसे पकड़ लिया, परन्तु अन्तमें छोड़ दिया। इस पर वह भागकर काश्मीर चला गया और वहाँका राजा बन बैठा।" यह मिहिरकुल हूणवंशका था और ई० स० ५०२ (वि० सं० ५५९) के करीब अपने पिता तोरमाणका उत्तराधिकारी हुआ। बालादित्य नालन्दके प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु वसुबन्धुका शिष्य था और इसीने नालन्द (दक्षिणी बिहार) में एक प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया था। यह ईंटोंका बना था। उस समय उक्त नगर बौद्ध-ग्रन्थोंके पठन पाठनका ख़ास विद्यापीठ था।

मन्दसोरसे एक लेख[2] मिला है। यह दो स्तम्भोंपर खुदा है। इसका उल्लेख भानुगुप्तके इतिहासमें किया जा चुका है। यह यशोधर्माके समयका है। इसमें लिखा है कि राजा मिहिरकुल भी इस (यशोधर्मा) के पैरोंपर सिर झुकाता था। यद्यपि इस लेखमें बहु-

(१) वाटर्स युआनचवंग्स ट्रैवल्स, पृ० २८८—२९९।

(२) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, नं० ३३।

तसी बातें बढ़ावा देकर लिखी गई हैं, फिर भी चीनी यात्री हुएन्त्संगके लेखसे (बालादित्यने मिहिरकुलको भगाया था) यह लेख अधिक विश्वासयोग्य है । डाक्टर फ्लीटका अनुमान[1] है कि बालादित्य (नरसिंहगुप्त) ने तो मिहिरकुलको मगधके पास और यशोधर्माने पश्चिमी भारतमें हराया होगा। मि० जोहन एलनका ख़याल[2] है कि बालादित्य (नरसिंहगुप्त) ने पहले मिहिरकुलके हमलेसे केवल मगधकी रक्षा की होगी, परन्तु अन्तमें यशोधर्माने ही उसे (मिहिरकुलको) क़ैद कर लिया होगा। हुएन्त्संग बौद्धधर्मानुयायी था, अतः उसने उक्त दोनों कथाओंको सुनकर मिहिरकुलको पूर्ण रूपसे पराजित करनेका यश अपने सधर्मी बालादित्यको ही दे दिया होगा ।

हम पहले लिख चुके हैं कि मिहिरकुल ई० स० ५०२ के करीब गद्दीपर बैठा था और मन्दसोरके लेखानुसार ई० स० ५३३–३४ (वि० सं० ५९०–९१) के पूर्व ही यशोधर्मा द्वारा कैद कर लिया गया था। डा० होर्नलेने इस घटनाका समय ई० स० ५२५ (वि० सं० ५८२) के करीब माना[3] है ।

यदि सारनाथसे मिला हुआ गु० सं० १५४ (वि० सं० ५२९–३० =ई० स० ४७३–७४) का कुमारगुप्तका लेख (श्रीयुत मजूमदारके ख़यालके माफ़िक) इस (नरसिंहगुप्त) के उत्तराधिकारीका अनुमान कर लिया जाय तो चीनी यात्री हुएन्त्संगके लेखानुसार बालादित्य (नरसिंहगुप्त) का मिहिरकुलके समय तक जीवित रहना ही सिद्ध न होगा, क्यों कि मिहिरकुल ई० स० ५०२ के करीब गद्दीपर बैठा था।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्केरी (१८८९), पृ० २२८ ।

(२) एलन्स कैटलॉग ऑफ़ गुप्त कौइन्स (इण्ट्रोडक्शन), पृ० ५९–६० ।

(३) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१९०९), पृ० १३१ ।

मि० विन्सैण्ट स्मिथ[1] नरसिंहगुप्तका राज्यारोहण काल ई० स० ४८० के करीब अनुमान करते हैं।

इसकी स्त्रीका नाम महालक्ष्मी देवी और पुत्रका नाम कुमारगुप्त (तृतीय) था। इसके सोनेके कुछ धनुर्धराङ्कित सिक्के मिले हैं जिन पर सीधी तरफ़ राजाके हाथके नीचे न और पैरोंके बीच 'गु' लिखा
र
होता है तथा किनारे पर 'जयति नरसिंहगुप्तः' लिखा रहता है। उलटी तरफ़ 'बालादित्यः' लिखा होता है।

कुमारगुप्त।

यह नरसिंहगुप्तका उत्तराधिकारी था। भिटारीसे जो मुहर[2] मिली है वह इसीके समयकी है। इसका पूरा वर्णन पहले दिया जा चुका है। सम्भवतः इसीके राज्य-समय ई० स० ५३९ (वि० सं० ५९६) में बौद्ध सम्प्रदायके महायान ग्रन्थोंको एकत्रित कर उनका अनुवाद करवानेके लिये चीनसे पहली मण्डली मगधमें आई थी और इसी राजाने उनकी सहायताके लिये परमार्थको नियुक्त किया था। यही परमार्थ कई वर्षोंतक यहाँ पर कार्य करनेके बाद अनेक पुस्तकोंको लेकर चीनदेशको गया था और वहाँ पहुँचकर ई० स० ५४८ (वि० सं० ६०५) में चीनदेशके राजासे मिला था। ई० स० ५६९ (वि० सं० ६२६) में वहीं पर ७० वर्षकी अवस्थामें इस (परमार्थ) का देहान्त हुआ।

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ३११–१२।

(२) इसकी एक धातुनिर्मित प्रतिलिपि (मैटलकास्ट) जोधपुर राज्यके अजायबघरमें भी रक्खी गई है।

श्रीयुत मजूमदारका अनुसरण करनेसे इस कुमारगुप्तका समय सारनाथके लेखानुसार गु० सं० १५४ (ई० स० ४७३–७४= वि० सं० ५२९–३०) के निकट आवेगा। इससे उपर्युक्त चीनी मण्डलीका इसके समय आना और इसका उनकी सहायताके लिये परमार्थको नियुक्त करना आदि बातें असम्भव हो जायँगी। मि० विन्सेण्ट स्मिथने इसका राज्यारोहण समय ई० स० ५३५ (वि० सं० ५९२) के निकट अनुमान किया है।

इसके समयके भी सोनेके कुछ धनुर्धराङ्कित सिक्के मिले हैं जिन पर सीधी तरफ़ राजाके हाथके नीचे 'कु' लिखा होता है और किसी किसीमें पैरोंके बीचमें 'गो' या 'जा' पढ़ा जाता है। किनारे पर 'महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तक्रमादित्यः' लिखा रहता है। उलटी तरफ़ 'क्रमादित्यः' या 'श्रीक्रमादित्यः' लिखा होता है।

इसके बादका इनका कुछ वृत्तान्त नहीं मिलता। मि० स्मिथ गुप्त-वंशमें केवल दो कुमारगुप्तोंका होना ही मानते हैं।

फुटकर।

ई० स० ५३३ (वि० सं० ५९०) से ई० स० ६२५ (वि० सं० ६८२) तक।

कालीघाटसे कुछ सिक्के मिले थे। उनमें नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त (तृतीय) और विष्णुके सिक्के थे। इनमेंके विष्णुसे शायद विष्णु-गुप्तका तात्पर्य होगा और शायद यह कुमारगुप्त तृतीयके उत्तराधि-

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ३१२। (२) ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया (एडिशन एण्ड करैकशन) पृ० १७१ का।

कारियोंमेंसे हो। इसके सिक्कोंकी उलटी तरफ़ 'चन्द्रादित्यः' लिखा होता है। डा० होर्नलेने इन सिक्कोंको विष्णुवर्धनके समझ कर इनपर लिखे हुए 'चन्द्रादित्य' को 'धर्मादित्य' पढ़ा था। परन्तु मि० जोहन एलन इनको गुप्त राजाके ही मानते हैं। इनकी बनावट और अक्षरों आदिसे भी इसी अनुमानकी पुष्टि होती है।

विष्णुगुप्त (चन्द्रादित्य)।

हम ऊपर इसके सिक्कोंका वर्णन कर चुके हैं। इसके धनुर्धराङ्कित सोनेके सिक्कों पर सीधी तरफ़ राजाके हाथके नीचे वि और ष्णु पैरोंके बीच 'रु' लिखा होता है। उलटी तरफ़ 'श्रीचन्द्रादित्यः' लिखा रहता है। अब तक इसका कोई विशेष वृत्तान्त नहीं मिला है। मि० एलन इसका समय ई० स० ५४०–६० (वि० सं० ५९७–६१७) अनुमान करते हैं।

चन्द्रगुप्त (द्वादशादित्य)।

इसके भी सुवर्णके धनुर्धराङ्कित सिक्के मिले[1] हैं। ये तौलमें १४४ ग्रेन (करीब ५८ रत्ती) होनेके कारण स्कन्दगुप्तके पूर्वके सब गुप्त राजाओंके सिक्कोंसे भारी हैं। इन पर सीधी तरफ़ राजाके पैरोंके बीचमें 'भा' लिखा होता है और राजाके हाथके नीचे च न्द्र लिखा रहता है तथा किनारे पर लेखके आदिके अक्षर 'द्वाद' और अन्तके 'आदित्य' पढ़े जाते हैं। उलटी तरफ़ 'श्रीद्वादशादित्यः' लिखा होता है। इनके देखनेसे स्पष्ट प्रकट होता है कि ये सिक्के स्कन्दगुप्तके

(१) एलन्स कैटलॉग ऑफ़ गुप्त कोइन्स, प्लेट २३, नं० ६–८।

पिछले भारी सिक्कोंकी नकल पर ढलवाये गये होंगे। परन्तु इनकी सुवर्णकी उत्तमतासे ये नरसिंहगुप्तके पहलेके प्रतीत होते हैं। रापसन साहबने उपर्युक्त बातों पर विचार कर इन्हें किसी तीसरे ही चन्द्रगुप्तका माना है। वामनने एक स्थान पर लिखा है:—

'सोयं संप्रति चन्द्रगुप्ततनयश्चन्द्रप्रकाशो युवा।
जातो भूपतिराश्रयः कृतधियां दिष्ट्या कृतार्थश्रमः'।

इस श्लोकमें '**चन्द्रगुप्ततनयश्चन्द्रप्रकाशः**' लिखा होनेसे बहुतसे विद्वान् इस चन्द्रगुप्त तृतीयको प्रकाशादित्यका पिता अनुमान करते हैं। परन्तु प्रमाणाभावसे इस विषयमें कोई निश्चित मत नहीं दिया जा सकता।

श्रीयुत बसाकके लेखानुसार[2] हम इन प्रकाशादित्य उपाधिवाले सिक्कोंका वर्णन कुमारगुप्त द्वितीयके इतिहासमें कर चुके हैं।

मि० एलन इनका समय ई० स० ४८०—५६० (वि० सं० ५३७—६१७) के मध्य अनुमान करते हैं। वे[3] उपर्युक्त चन्द्रगुप्त (द्वादशादित्य) को और पूर्ववर्णित घटोत्कचगुप्त (क्रमादित्य) को स्कन्दगुप्तके उत्तराधिकारी अनुमान करते हैं। परन्तु कुमारगुप्त द्वितीयके और बुधगुप्तके लेखों पर विचार करनेसे इस अनुमानमें सन्देह उत्पन्न हो जाता है। अतः जब तक विशेष प्रमाण न मिलें तब तक इस विषय पर विचार करना कठिन है। उलटी तरफ़ '**श्रीनरेन्द्रादित्यः**' लिखा रहता है।

नरेन्द्रादित्य।

धनुर्धरांकित—इसके धनुर्धरांकित सोनेके सिक्कों पर सीधी तरफ़

(१) न्यूमिसमेटिक क्रॉनिकल (१८९१) पृ० ५७।

(२) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १५, पृ० ११८ (३) एलन्स कैटलॉग ऑफ़ गुप्त कौइन्स (इण्ट्रोडकशन) पृ० ५५।

ध्वजापर गरुड़की जगह नन्दी बना होता है और राजाके बायें हाथके नीचे दो अक्षर बने होते हैं तथा पैरोंके बीचमें 'च' लिखा रहता है। उलटी तरफ़ '**श्रीनरेन्द्रादित्यः**' लिखा रहता है।

राजलीलांकित (परिचारिकाद्वयांकित)—इस प्रकारके सुवर्णके सिक्कों पर सीधी तरफ़ राजाके बांयें हाथके ऊपर 'यम' और तख्तके नीचे 'ध' लिखा होता है। उलटी तरफ '**नरेन्द्रादित्यः**' लिखा रहता है।

जयगुप्त।

इसके सुवर्णके सिक्के मिले हैं:—

धनुर्धरांकित—इन सिक्कोंमें सीधी तरफ़ ध्वजा पर गरुड़की जगह चक्र होता है और राजाके बायें हाथके नीचे चीनी लेखप्रणालीमें 'जय' लिखा रहता है। उलटी तरफ़ '**श्रीप्रकाण्डयशाः**' लिखा होता है।

धनुर्धराङ्कित—ये चाँदीके मुलम्मेवाले सिक्के हैं। इन पर सीधी तरफ़ राजाके हाथके नीचे चीनी प्रणालीमें 'जय' लिखा रहता है। उलटी तरफ़ लक्ष्मीके वाम भागमें छोटासा हाथी बना होता है।

गरुडांकित—ये सिक्के ताँबेके हैं। इन पर सीधी तरफ़ राजाका मस्तक होता है। उलटी तरफ़ गरुडके नीचे '**जयगुप्तः**' लिखा रहता है।

हरिगुप्त।

कलशांकित—इन पर सीधी तरफ़ पुष्पसहित कलश रक्खा होता है। उलटी तरफ़ '**श्रीमहाराजहरिगुप्तस्य**' लिखा रहता है। ये ताँबेके हैं।

वीरसेन।

वृषभांकित—इन पर सीधी तरफ़ खड़े हुए बैलके ऊपरको '**श्री-वीरसेनः**' लिखा होता है। उलटी तरफ़ बैठी हुई लक्ष्मीके पास ही '**क्रमादित्यः**' लिखा रहता है। ये सिक्के सुवर्णके हैं।

शशाङ्क।

ई० स० ६००–६२५ (वि० सं० ६५७–६८२)।

इन पर सीधी तरफ़ बैलपर बैठे हुए महादेवकी मूर्ति बनी होती है और इसके दक्षिण पार्श्वमें चन्द्रमाका चिह्न बना होता है। बैलके नीचे 'जय' और किनारे पर 'श्रीश' लिखा रहता है। उलटी तरफ़ कमलासीना लक्ष्मी होती है। इसके एक हाथमें कमल होता है और दूसरा हाथ खाली होता है। लक्ष्मीके दायें बायें अपनी सूँड़से अभिषेक करते हुए दो छोटे छोटे हाथी होते हैं तथा बायें किनारे पर '**श्रीशशांकः**' लिखा रहता है। ये सिक्के गौड (कर्ण–सुवर्ण) के राजाके हैं। यह देश पूर्वी बंगालमें हैं। इस राजाका समय ई० स० ६००–६२५ (वि० सं० ६५७–६८२) तक था।

अन्य प्रमाणोंके सिवाय इसके राज्य-समयका एक ताम्रपत्र भी मिला है[1]। यह गुप्त संवत् ३०० (ई० स० ६१९–६२०=वि० सं० ६७६–६७७) का है। इसमें एक गाँव देनेका वर्णन है। इसी तरह रोहतासगढ़से पत्थरका बना हुआ एक मुहरका साँचा मिला है। इस पर दो पंक्तियाँ खुदी हुई हैं। पहलीमें '**श्रीमहासामन्त**' और दूसरीमें '**शशांकदेवस्य**' लिखा है। यह मुहर भी सम्भवतः इसी शशाङ्कदेवकी होगी। चीनीयात्री हुएन्त्सङ्गके लेखसे पता चलता है कि बौद्धधर्मके शत्रु शशाङ्कने वैसवंशी राजा राज्यवर्धनको धोखा देकर मार

(१) एपिग्रफ़िया इण्डिका, जिल्द ६, पृ० १४३।

(२) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, पृ० २८३, नं० ७०।

डाला था। यह राज्यवर्धन हर्षवर्धनका बड़ा भाई था। बाणभट्टने भी अपने हर्षचरितमें लिखा है कि;—"गौड़के राजाने राज्यवर्धनको धोखा देकर मार डाला था।' बूलरसाहबको हर्षचरितकी एक लिखित प्रति मिली थी। उसमें गौडाधिप शशाङ्कको 'नरेन्द्रगुप्त' लिखा था[1]। मि० हाल भी इस बातसे सहमत हैं। इसके प्रमाणमें वे 'भण्डि' का लेख उद्धृत करते हैं:—**'देवभूयंगते देवे राज्यवर्धने गुप्तनाम्ना च गृहीते कुशस्थले।'** अर्थात् राज्यवर्धनके मरने पर और गुप्त नामवाले राजाके कुशस्थल (कान्यकुब्ज) ले लेने पर[2]।

हम नरेन्द्रादित्यके सिक्कोंका वर्णन ऊपर कर चुके हैं। इनमेंके धनुर्धराङ्कित सिक्कोंपर गरुड़की जगह बैल होता है और इसके राजलीलाङ्कित सिक्के शशाङ्कके सिक्कोंके साथ ही मिले थे। इससे अनुमान होता है कि डाक्टर बुलरके कथनानुसार शायद ये सिक्के भी शशाङ्कके ही हों।

राज्यवर्धन ई० स० ६०६ (वि० सं० ६६३) में मारा गया था और शशाङ्कका पूर्वोक्त ताम्रपत्र गुप्त संवत् ३०० (ई० स० ६१९–६२०=वि० स० ६७६–६७७) का है। अतः शशाङ्कका समय ई० स० ६०० से ६२५ (वि० सं० ६५७ से ६८२) तक मानना ही उचित है।

यद्यपि बाणने हर्षचरितमें लिखा है कि राज्यवर्धनके मारे जानेपर उसके छोटे भाई हर्षवर्धनने शत्रुओंपर शीघ्र ही चढ़ाई की थी और उनसे अपने भाईका बदला ले अपनी विजयवैजयन्ती फहराई थी, तथापि राज्यवर्धनकी मृत्युके १३ वर्ष बादके पूर्वोक्त (शशा-

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १, पृ० ७०।
(२) एलन्स–कैटलॉग ऑफ़ गुप्त कॉइन्स (इन्ट्रोडकशन) पृ० ६४।

ङ्कके राज्य-समयके) ताम्रपत्रको देखकर अनुमान होता है कि इस विजय-यात्रामें हर्षको पूरी सफलता नहीं हुई थी ।

यह राजा शैव था और इसको बौद्ध मतसे बड़ी घृणा थी । वि० स० ६५७ (ई० स० ६००) के करीब इसने बुद्ध गयाके बोधि-वृक्षको--जिस पर अशोककी पूर्ण भक्ति थी--खुदवाकर जलवा दिया, पाटलिपुत्रमेंके बुद्धके पदचिह्नोंवाली शिलाको तुड़वा डाला, और बौद्ध मठोंको तुड़वाकर बौद्ध भिक्षुओंको अनेक प्रकारके कष्ट दिये । (इसके बाद मगधके राजा पूर्णवर्माने उक्त बोधिवृक्षको फिरसे लगाया था । कुछ लोग इसे अशोकके वंशका अन्तिम राजा मानते हैं ।)

हूण-वंश ।

ई० स० ४५५ (वि० सं० ५१२) से ई० स० ५४० (वि० सं० ५९७) तक ।

हूण नामकी एक जाति मध्य एशियामें रहती थी । वहाँसे रवाना होनेपर इस जातिकी दो शाखाएँ हो गईं । उनमेंसे एक औक्सस और दूसरी वोल्गा नदीकी तरफ़ रवाना हुई । बोल्गावाली शाखाने तो ई० स० ३७५ के करीब पूर्वी यूरोपपर आक्रमण कर गोथ लोगोंको खदेड़ दिया और औक्ससवाली शाखाने कुशान राजाओंसे काबुल छीन कर भारतकी तरफ़ चढ़ाई की । ये औक्सस नदीपर बसे हुए हूण श्वेत-हूणके नामसे प्रसिद्ध थे और शायद वोल्गापर बसनेवाली शाखासे भिन्न थे । इनकी भारतपरकी पहली चढ़ाई शायद ई० स० ४५५

(वि० सं० ५१२) के पूर्व हुई होगी जैसा कि स्कन्दगुप्तके भिटारीसे मिले हुए लेखसे प्रकट होता है। उसमें लिखा है:—

'हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता।'

अर्थात्—हूणोंके साथ ऐसा युद्ध हुआ कि पृथ्वी काँप गई।

परन्तु इस युद्धमें इन्हें सफलता नहीं हुई और स्कन्दगुप्तके दबावसे इन्हें रुक जाना पड़ा। इसके १० वर्ष बाद ई० स० ४६५ (वि० सं० ५२२) में इन्होंने गांधार (पश्चिमी पंजाब) पर अधिकार कर लिया और ई० स० ४७० (वि० सं० ५२७) के करीब स्कन्दगुप्तके राज्यपर दुबारा आक्रमण किया। इससे गुप्त राज्यकी नींव हिल गई। तथा उसके पश्चिमी प्रान्तपर हूणोंका अधिकार हो गया।

ईसवी सन् ४८४ (वि० सं० ५४१) में पर्शियाके राजा फ़ीरोज़को मारकर हूणोंने उधरका खटका भी दूर कर दिया। कहते हैं कि इसी समयके आसपास ये लोग पर्शिया (ईरान) का ख़ज़ाना लूट कर लाये थे। इसीसे ससेनियन शैलीके सिक्कोंका भारतमें प्रवेश हुआ। ये सिक्के अठन्नीके बराबर होते हैं। इनकी एक तरफ़ राजाका चेहरा बना होता है और आसपास लेख रहता है। दूसरी तरफ़ अग्निकुण्ड बना होता है; जिसके दोनों तरफ़ दो आदमी खड़े होते हैं। इन सिक्कोंमें एक विशेषता यह होती है कि ये बहुत ही पतले होते हैं।

इस प्रकारके सिक्के पहले पहल भारतमें इसी समयसे प्रचलित हुए और इनका राज्य नष्ट होनेपर भी गुजरात, मालवा और राजपूतानेमें ई० स० की ११ वीं शताब्दी तक प्रचलित थे। परन्तु क्रमशः इनका आकार छोटे होनेके साथ ही साथ इनकी मुटाई बढ़ती गई। और

(१) फ्लीट, कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, भाग ३, पृ० ५२।

होते होते इसमेंका राजाका चेहरा भी ऐसा भद्दा बनता गया कि वह गधेके खुरके समान दिखाई देने लगा। इसीसे लोगोंने इसका नाम गधिया (गधैया) रख दिया। इस प्रकारके सिक्के अब भी गुजरात, मालवा और राजपूतानेमें बहुत मिलते हैं।

भारतपर आक्रमण करनेवाले श्वेत हूणोंका मुखिया तोरमाण था। ई० स० ४९९ (वि० सं० ५५६) के बाद ही यह 'महाराजा' की उपाधि धारण कर मालवेका राजा बन बैठा।

इसके समयके दो लेख मिले हैं। पहला[1] इसके राज्यके प्रथम वर्षका एरन (सागर ज़िले) से और दूसरा[2] कूर (नमककी पहाड़ियोंके पास) से। इस पिछले लेखका संवत् टूट गया है।

इसके चाँदीके सिक्के[3] मिलते हैं। ये गुप्तोंसे मिलते हुए होते हैं। इनपर राजाके मस्तकके पास संवत् ५२ लिखा रहता है। यह संवत् शायद हूण संवत् होगा; जो ई० स० ४४८ (वि० सं० ५०५) के क़रीब प्रारम्भ हुआ था[4]। दूसरी तरफ़ '**विजितावनिरवनिपति-श्रीतोरमाणदेवजयति**' लेख और पर खोले हुए मोर होता है।

उपर्युक्त बातोंपर विचार करनेसे अनुमान होता है कि उस समय हूणोंका प्रताप बढ़ती पर था (और आश्चर्य नहीं कि भानुगुप्त और वलभीके राजा भी उस समय इनके अधीन रहे हों।)

ई० स० ५०२ (वि० सं० ५५९) के करीब तोरमाणके मरने-

---

(१) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, भाग ३, पृ० ३६।

(२) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १, पृ० २३८।

(३) रापसन्स इण्डियन कौइन्स, प्लेट, नं० ४, नं० १६।

(४) जर्नल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, जिल्द ६३, पृ० १, पृ० १९५

पर इसका पुत्र मिहिरगुल[1] इसका उत्तराधिकारी हुआ। राजतरङ्गिणी (प्रथमस्तरंग) में लिखा है:—

अथ म्लेच्छगणाकीर्णे मण्डले चण्डचेष्टितः
तस्यात्मजोभून्मिहिरकुलः कालोपमो नृपः ॥ २८९ ॥

अर्थात्—काश्मीर मण्डलके म्लेच्छोंसे भरजानेपर यमराजके समान उद्दण्ड मिहिरकुल नामका राजा हुआ। इसीके आगे इस राजाका वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है:—" यह बड़ा निर्दयी और हिंसक था। इसने लंकाविजयकर लौटते हुए मार्गमें कर्णाट, चोल आदि देशोंको जीता। इसके काश्मीर पहुँचनेपर अकस्मात् एक हाथी पहाड़परसे फिसल गया और चिंघाड़ता हुआ नीचे गिरकर मर गया। मिहिरकुलको इसकी चिंघाड़ बहुत पसंद आई, इस कारण उसने सौ हाथियोंको उसी प्रकार लुढ़कवा दिया[2]। इसने श्रीनगरमें मिहिरेश्वर महादेव स्थापन किया, मिहिरपुर नामक नगर बसाया, कंदहारके ब्राह्मणोंको बहुतसा दान दिया और इस प्रकार ७० वर्ष राज्यकर अन्तमें रोगग्रस्त होकर इसने अग्नि प्रवेश किया।"

यह वर्णन कल्हणने इधर उधरसे संग्रह कर लिखा है, क्यों कि इसके आगे ही उसने लिखा है कि " बहुतसे लेखक लिखते हैं कि इसने म्लेच्छोंको मार कर धर्मको प्रतिष्ठित करनेके लिये ही यह क्रूरता ग्रहण की थी। जो कुछ भी हो, इसका चरित्र बड़ा ही क्रूर था। इसके समयका एक लेख ग्वालियरसे मिला[3] है। यह इसके १५ वें वर्षका है। इसकी राजधानी साकल (स्यालकोट—पंजाबमें) थी। काश्मीर-

(१) इसका संस्कृतरूप 'मिहिरकुल' मिलता है।
(२) यह स्थान 'हस्तिवंचक' नामसे प्रसिद्ध है।
(३) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३ नं० ३७।

विजयमें इसे तीन वर्ष लगे थे। ई० स० ५२० (वि० सं० ५७७) में जब संगयून इससे मिला था उस समय यह इसी युद्धमें लगा हुआ था। चीनीयात्री हुएन्त्संगने लिखा है कि 'श्रावस्तिका राजा मिहिर कुल बौद्धोंका बड़ा शत्रु था। इसने बालादित्यके राज्यपर हमला किया। बालादित्यने पहले तो इसे पकड़कर कैद कर दिया, परन्तु अन्तमें छोड़ दिया। इस पर यह भागकर काश्मीर चला गया।" परन्तु मन्दसोरसे मिले हुए यशोधर्माके लेखमें लिखा है:—

'चूडापुष्पोपहारैर्मिहिरकुलनृपेणार्चितं पादयुग्मं'

अर्थात्—मिहिरकुलने यशोधर्माके पैरोंपर सिर रक्खा था।

यद्यपि उपर्युक्त दोनों प्रमाण एक दूसरेके विरुद्ध हैं, तथापि इनसे उक्त दोनों राजाओंके समय इसका परास्त होना तो निर्विवाद सिद्ध होता है। इसका विशद विवरण भानुगुप्त और नरसिंह गुप्तके इतिहासमें दिया जा चुका है। यह घटना ई० स० ५२५ (वि० सं० ५८२) से ई० स० ५२८ (वि० सं० ५८५) के मध्य हुई होगी।

मि० विन्सैण्ट स्मिथने लिखा है कि "जिस समय मिहिरगुल (मिहिरकुल) कैद किया गया था उस समय मौका पाकर इसके छोटे भाईने साकल (स्यालकोट) पर अधिकार कर लिया था। अतः छुटेनपर लाचार हो मिहिरकुलको काश्मीरमें जाकर पनाह लेनी पड़ी। वहाँके राजाने इसकी इज्ज़त कर इसे निर्वाहार्थ कुछ जागीर दे दी। परन्तु कुछ समय बाद मिहिरगुलने शरण देनेवाले वहाँके राजाको मार काश्मीरपर ही अधिकार कर लिया। इसके बाद इसने गांधारपर अधि-

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ३१८–३१९।

कार कर लिया और वहाँके हूण राजाके परिवारको मय बहुतसे प्रजा जनोंके कत्ल करवा दिया।" परन्तु यह बात सुंगयुनके और राजतरङ्गिणीके लेखसे सिद्ध नहीं होती।

इसके सिक्कों[1] पर एक तरफ़ राजाकी तसबीर बनी होती है। उसके पीछे त्रिशूल और आगे बैल बना होता है तथा ऊपरकी तरफ़ 'जयतु मिहिरकुल' लिखा रहता है। दूसरी तरफ़ ससेनियन सिक्कोंके समान अग्निकुण्ड बना होता है जिसके दोनों तरफ़ दो आदमी खड़े होते हैं। मि० स्मिथका अनुमान है कि 'कोसमस' की लिखी पुस्तकमें भारतके हूण राजा गोलससे इसी मिहिरगुलका तात्पर्य होगा। यह पुस्तक ई० स० ५४७ (वि० सं० ६०४) में लिखी गई थी[2]। मिहिरगुल शैव मतानुयायी था। यह बौद्ध स्तूपोंको नष्ट कर मठोंको लूट लेता था और बौद्ध भिक्षुओंको हर तरहसे तंग करता था। ई० स० ५४२ (वि० सं० ५९९) में इसकी मृत्यु हो गई।

इसके पीछेके किसी हूण राजाका इतिहास नहीं मिला है। ई० स० ५६५ (वि० सं० ६२२) के करीब तुर्कोंने पर्शियाके ससेनियन शासकोंसे मैत्री स्थापित कर श्वेत हूणोंको नष्ट कर दिया और इसके बाद जब ससेनियन राज्य शक्तिहीन हो गया तब उन्होंने हूणोंके समग्र राज्यको ही अधिकारभुक्त कर लिया। इस प्रकार नष्ट होनेसे बचे हुए भारतके हूण धीरे धीरे यहाँके लोगोंमें मिल गये। अब भी राजपूतोंकी ३६ शाखाओंमें एक शाखा इसी (हूण) नामसे प्रसिद्ध है।

ऐतिहासिक लोग गुर्जरोंका भी हूणोंके साथ ही आना मानते हैं।

---

(१) रापसन्स–इण्डियन कौइन्स, प्लेट ४, नं० २०।

(२) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ३१७।

इन्होंने राजपूतानेमें अपना राज्य स्थापन किया था। इनकी राजधानी भीनमाल (श्रीमाल) थी। यह प्रदेश आजकल जोधपुर राज्यमें है। यहींसे इनकी एक शाखा भड़ोचकी तरफ़ गई थी।

मिहिरगुलके परास्त होनेके (ई० स० ५२४ से ५२८=वि० सं० ५८१ से ५८५) बादसे महमूद गज़नीके पंजाब पर अधिकार करने (ई० स० १०२३=वि० सं० १०८०) तक, अर्थात् ५०० वर्ष तक, भारतवर्ष बाहरी आक्रमणोंसे बचा रहा था। यद्यपि ईसवी सन्‌की आठवीं शताब्दीमें अरबोंने सिंध विजय किया था, तथापि उस प्रदेशके एक तरफ़को होनेके कारण शेष भारतपर इसका प्रभाव बहुत ही कम पड़ा था।

मिहिरगुलके परास्त होनेके बाद ईसवी सन्‌की छठी शताब्दीके उत्तरार्धका हाल बहुत ही कम मिलता है। अनुमान होता है कि हूणों-के आक्रमणके कारण भारतकी दशा चलविचल हो गई थी। इसीसे शायद उस समय एक भी ऐसा राजा नहीं रहा होगा जिसका प्रताप विशेष उल्लेखयोग्य हो।

यशोधर्मा ।

इसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं[1]। इसके तीन लेख मन्दसोरसे मिले हैं। इनमेंसे केवल एक लेख पर ही मालव संवत् ५८९ (ई० स० ५३२) लिखा है। इनमेंका एक लेख दो स्तम्भों पर खुदा है। विद्वानोंका अनुमान है कि इसने ये स्तम्भ अपनी मिहिरगुलकी विजयकी यादगारमें खड़े किये थे।

इनमें इसके राज्यका विस्तार इस प्रकार लिखा है:—

'ये भुक्ता गुप्तनाथैर्नसकलवसुधाक्कान्तिदृष्टप्रतापै-
र्नाज्ञा हूणाधिपानां क्षितिपतिमुकुटाध्यासिनीयान्प्रविष्टा'

...

आलौहित्योपकण्ठात्तलवनगहनोपत्यकादामहेन्द्रा—
दागङ्गाश्लिष्टसानोस्तुहिनशिखरिणः पश्चिमादापयोधेः ॥

अर्थात्—जिन प्रदेशोंपर गुप्तों और हूणोंका अधिकार नहीं हुआ था उनपर इसने दख़ल जमा लिया था। इसके राज्यकी सीमा (पूर्वमें) ब्रह्मपुत्रा नदीसे (पश्चिममें) समुद्र तक और (उत्तरमें) हिमालयसे (दक्षिणमें) महेन्द्र पर्वत तक थी। सम्भव है, इसके राजकवियोंने बहुत कुछ बढ़ावा देकर उपर्युक्त वृत्तान्त लिखा हो। इसके पूर्वजों या उत्तराधिकारियोंका अब तक कुछ भी पता नहीं लगा है।

---

(१) भानुगुप्त, नरसिंहगुप्त और मिहिरगुलके इतिहासमें इसका वर्णन आ चुका है।

वैस-वंश।

वि० स० ५५७ (ई० स० ५००) के निकटसे वि० सं० ७०४ (ई० स० ६४७) तक।

इस वंशके राजा शैव थे और इनका राज्य थानेश्वरके आसपास था।

१ पुष्पभूति।

इस वंशका सबसे पहला नाम यही मिला है। यह राजा शिवभक्त था और इसकी राजधानी श्रीकण्ठ (थानेश्वर) थी। इसकी उपाधि 'महाराज' मिलती है।

२ नरवर्धन।

यह राजा पुष्पभूतिका वंशज था। इसकी रानीका नाम वज्रिणी-देवी मिला है।

३ राज्यवर्धन।

यह नरवर्धनका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसको सूर्यका इष्ट था। इसकी रानीका नाम अप्सरादेवी था।

४ आदित्यवर्धन।

यह राज्यवर्धनका पुत्र था और उसके पीछे गद्दी पर बैठा। यह भी सूर्यका भक्त था। इसकी रानीका नाम महासेनगुप्ता था। यह शायद गुप्तवंशकी थी। (सम्भव है, यह मालवेके राजा महासेनगुप्त-की बहन हो।)

उपर्युक्त राजाओंकी उपाधि केवल 'महाराज' ही मिलती है। इससे प्रकट होता है कि ये गुप्तराजाओंके सामन्त होंगे।

५ प्रभाकरवर्धन।

यय आदित्यवर्धनका पुत्र था और उसके पीछे राज्यका स्वामी हुआ। श्रीहर्षचरितसे प्रकट होता है कि इसने सिन्ध और गुजरातके राजाओंको तथा गुर्जर और उत्तरपश्चिमी पंजाबके हूणोंको परास्त किया था। इसकी उपाधि 'परमभट्टारकमहाराजाधिराज' मिलती है। इससे सिद्ध होता है कि पहले पहल इसीने स्वाधीनता प्राप्त की होगी। यह भी सूर्यका उपासक था। इसकी रानीका नाम यशोमती था। इससे दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। इनके नाम क्रमशः—राज्यवर्धन, हर्षवर्धन और राज्यश्री थे। प्रभाकरवर्धनने मालवराजके पुत्र कुमार और माधवको क्रमशः राज्यवर्धन और हर्षके अनुयायी नियत किये थे। कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि सम्भवतः ये महासेनगुप्तके छोटे पुत्र थे और इन्हींके बड़े भाई देवगुप्तने मौखरी ग्रहवर्माको मारा था। इसीसे हर्षने इनके बड़े भाईको मार कर मालवेके राज्यकी समाप्ति कर दी और अन्तमें हर्षका अनुयायी माधवगुप्त मगधका अधिकारी नियत किया गया।

राज्यश्रीका विवाह मौखरी-वंशी राजा अवन्तिवर्माके पुत्र ग्रहवर्मासे हुआ था। ग्रहवर्मा कन्नौजका राजा था। इसे मार कर मालवेके राजाने इसके राज्य पर अधिकार करनेके साथ ही राज्यश्रीको भी कैद कर लिया। यह घटना प्रभाकरवर्धनके देहान्त समय हुई थी। इसका देहान्त वि० सं० ६६१ (ई० स० ६०४) के करीब हुआ था।

कुछ चाँदीके सिक्के[2] ऐसे मिले हैं जो गुप्तोंके सिक्कोंसे मिलते हुए हैं। इन

---

(१) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, पृ० २१५। (२) कैटलॉग ऑफ् दि कौइन्स ऑफ् गुप्त एण्ड मौखरी किंग्ज़ एक्सैट्रा, पृ० ४१।

पर एक तरफ़ राजाका मस्तक बना होता है और उसपर चन्द्रमाकी आ-कृति बनी रहती है तथा पासमें संवत्का 'स' पढ़ा जाता है। परन्तु अङ्क स्पष्ट नहीं पढ़े जाते। दूसरी तरफ़ '**बिजितावनिरवनिपतिश्रीप्रता-पशील दिवं जयति**' लिखा रहता है। मि०बर्न इनको प्रभाकरवर्धनके अनुमान करते हैं।

६ राज्यवर्धन।

यह प्रभाकरवर्धनका ज्येष्ठ पुत्र था और उसके पीछे राज्य सिंहासन पर बैठा। ई० स० ६०४ (वि० सं० ६६१) के करीब पिताकी आ-ज्ञासे राज्यवर्धन हूणोंको जीतनेके लिये उत्तर-पश्चिमी-सीमान्तकी तरफ़ गया था। उस समय इसकी अवस्था १८ वर्षके करीब थी। इसने वीरतासे युद्ध कर हूणोंको परास्त किया और स्वयं भी उस युद्धमें घायल हुआ। इसके इसी अवस्थामें वापिस लौट कर आनेके पूर्व ही इसके पिताका देहान्त हो गया। इससे इसको इतना दुःख हुआ कि इसने राज्याधिकार ग्रहण करनेसे अनिच्छा और अपने छोटे भाई हर्षवर्ध-नको राज्य सौंप बौद्ध भिक्षुक होनेकी इच्छा प्रकट की। इसी अवसरमें मालवराज द्वारा ग्रहवर्माके मारे जाने और राज्यश्रीके कैद होनेकी ख़बर मिली। यह खबर पाते ही बहनका बदला लेनेके लिये राज्यवर्धनको भिक्षुक होनेका विचार छोड़कर राज्यभार ग्रहण करना पड़ा। यह घटना ई० स० ६०४ (वि० सं० ६६१) के करीब की है। इसके बाद शीघ्र ही इसने १०००० सवारोंकी सेना लेकर मालवेके राजापर च-ढ़ाई कर दी और थोड़े ही परिश्रमसे उसे परास्त कर उसका सारा सामान लूट लिया। परन्तु उसी समय गौड (मध्य बंगाल) के राजा शशाङ्कने अपनी कन्याका विवाह इसके साथ करनेका वादा किया

और फिर विश्वासघात करके इसे मार डाला। सम्भव है कि बौद्ध-विरोधी शैव शशाङ्कसे एक बौद्धधर्मावलम्बी राजाकी विजय सहन न हुई हो और इसीसे उसने ऐसा किया हो।

हर्षवर्धनके ताम्रपत्रमें राज्यवर्धनका बौद्ध होना और देवगुप्त आदि अनेक राजाओंका जीतना लिखा है। उसीमें लिखा है कि इसने अपने वचन पर दृढ रह कर शत्रुके घरमें प्राण दिये थे।

यह घटना ई० स० ६०६ (वि० स० ६६३) की है। शशाङ्कका विशेष हाल पहले गुप्त राजाओंके इतिहासके साथ लिखा जा चुका है। कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि हर्षके लेखमें लिखा हुआ देवगुप्त ही ग्रहवर्माको मारनेवाला मालवराज होगा।

७ हर्षवर्धन।

यह राज्यवर्धनका छोटा भाई था और उसके मारे जाने पर उसका उत्तराधिकारी हुआ। प्रोफ़ेसर आपटेके मतानुसार इसका जन्म श० सं० ५१२ (ई० स० ५९०=वि० सं० ६४७) ज्येष्ठ कृष्णा १२ के १० बजे रातको हुआ था। यहाँ पर मास अमान्त मानना चाहिये। (**प्राप्ते ज्येष्ठामूलीये मासि बहुलासु बहुलपक्षद्वादश्यां व्यतीते प्रदोषसमये क्षपायौवने**)—हर्षचरित, चतुर्थ उछ्वास पृ० २६३)।

जिस समय राज्यवर्धन पिताकी आज्ञासे उत्तर-पश्चिममें हूणोंसे लड़ने गया था, उस समय हर्ष भी उसे पहुँचानेके लिये कुछ दूर तक उसके साथ गया था और मार्गमें शिकारके लिये ठहर गया था। वहाँपर इसे पिताके बीमार होनेका समाचार मिला। समाचार पाते ही यह लौट कर राजधानीमें पहुँचा। उस समय तक इसके पिताकी अवस्था दाह-

ज्वरके कारण बहुत शोचनीय हो चुकी थी और राज्यवर्धनके लौट कर आनेके पूर्व ही वह (प्रभाकरवर्धन) इस असार संसारसे बिदा हो गया था। और इसके पूर्व ही हर्षकी माता यशोवतीने भी सरस्वतीके तट पर चिता-प्रवेश कर लिया था। हर्षको इस घटनासे बहुत ही दुःख हुआ। उस समय इसकी अवस्था करीब १६ वर्षके थी। इसके बाद उपर्युक्त प्रकारसे राज्यवर्धनकी मृत्यु होनेपर हर्षको राज्यभार ग्रहण करना पड़ा। यह घटना वि० सं० ६६३ (ई० स० ६०६ के अक्टूबर) में हुई थी।
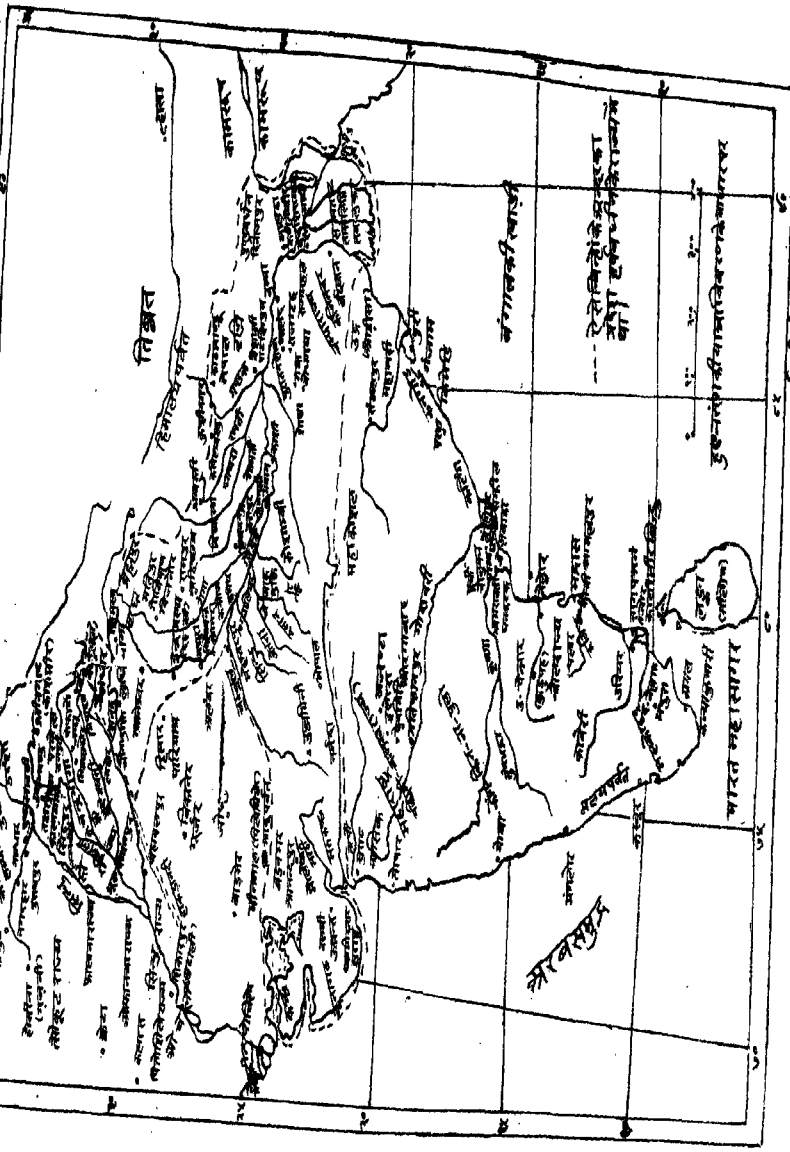
राज्यपर बैठते ही हर्षने सेना लेकर दिग्विजयके लिये प्रयाण करनेका विचार किया और सब राजाओंके पास पत्रोंद्वारा सूचना भेज दी कि या तो आप लोग अधीनता ग्रहण करें या युद्धके लिये तैयार हो जावें। इसके बाद विजययात्रा प्रारम्भ हुई और पहला पड़ाव राजधानीसे थोड़ीसी दूर चल कर सरस्वतीके तीरपर पड़ा। यहाँपर प्राग्ज्योतिष (बंगाल, राजशाही ज़िलेमें) के राजा भास्करवर्माके दूतने आकर एक छत्र भेटकर अपने राजाकी तरफ़से मैत्रीकी प्रार्थना की। वहाँसे कुछ दूर आगे बढ़नेपर भण्डि नामक सेनापति भी आ मिला। इसने मालवराजके यहाँकी लूट भेंट करके राज्यश्रीका कैदखानेसे मौका पाकर विन्ध्याचलके जंगलमें भाग जानेका समाचार सुनाया। यह सुन राजाने भण्डिको सेना लेकर गङ्गाके किनारे ठहरनेकी आज्ञा दी और स्वयं बहनको ढूँढ़नेके लिये विन्ध्याटवीकी तरफ़ रवाना हुआ। वहाँ पर एक बौद्ध भिक्षुककी सहायतासे उसका पता लगाकर और उसे साथ लेकर गंगाके तट पर पड़ी अपनी सेनामें आ मिला। यहीं पर बाण कविरचित 'हर्षचरित' की

कथा समाप्त होती है। राज्य पर बैठते समय हर्षके लिये दो ज़िम्मेदारियाँ मुख्य थीं, एक तो अपने भाईका बदला लेना और दूसरा अपनी बहनका पता लगाना। यद्यपि हर्षचरितमें राज्यश्रीके मिलनेका तो वर्णन दिया है, तथापि उसमें इसकी चढ़ाईके नतीजेका कुछ भी हाल नहीं लिखा है। अन्य प्रमाणोंसे पता चलता है कि यद्यपि गौडाधिप शशाङ्क (नरेन्द्रगुप्त) के राज्यपर हर्षने अधिकार कर लिया था तथापि वह स्वयं किसी न किसी तरह बच गया। यह बात उसके गुप्त संवत् ३०० (ई० स० ६१९=वि० सं० ६७६) के ताम्रपत्रसे प्रकट होती है। इसमें एक गाँवके दानका वर्णन है। आगे हम हुएन्त्सांगके यात्रावर्णनसे हर्षका कुछ वृत्तान्त उद्धृत करते हैं:—

"कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा प्रभाकरवर्धनका बड़ा पुत्र राज्यवर्धन उसका उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु कर्ण-सुवर्ण (बंगाल) के राजा शशाङ्क (नरेन्द्रगुप्त) ने उसे मार डाला। इसपर उसके मन्त्रियोंने उसके छोटे भाई हर्षवर्धनको शीलादित्यके नामसे गद्दीपर बिठाया। इसकी सेनामें ५,००० हाथी, २०,००० सवार और ५०,००० पैदल सिपाही थे। करीब ६ वर्षोंमें (वि० सं० ६६९=ई० स० ६१२ तक) उसने पंजाबको छोड़ सारे उत्तरी हिन्दुस्तानको अपने अधीन कर लिया। इसीमें बिहार और बंगालका बड़ा हिस्सा भी था। यह राजा बौद्ध धर्मको माननेवाला था। इस लिये इसने जीवहिंसाका निषेध कर दिया, फाँसीकी सजा उठा दी, अनेक स्तूप

---

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द, ६, पृ० १४४।

(२) यह यात्री वि० सं० ६८६ (ई० स० ६२९) में चीनसे रवाना होकर भारतमें आया था और वि० सं० ७०२ (ई० स० ६४५) में वापिस चीनको लौट गया था।

बनवाये, सड़कोंपर चिकित्सालय खोले, उनमें वैद्योंको नियत किया, तथा वहाँपर ओषधियों और अन्न-पानका भी प्रबन्ध किया। यह राजा हर पाँचवें वर्ष बौद्धोंके त्योहारपर 'मोक्षमहापरिषद्' कर दूर दूर-के विद्वानोंका समूह एकत्रित करता था और उस समय बहुत दान-दक्षिणा देता था।

"जब हुएन्त्सांग कामरूपके राजा कुमारके साथ नालन्दके संघाराममें ठहरा हुआ था, तब शीलादित्यने उक्त राजाको मय हुएन्त्सांगके बुलवा भेजा। (उस समय हर्ष बंगालमें था) और वहाँ पहुँचनेपर हर्षने उस (हुएन्त्सांग) की बहुत खातिर की। उस समय शीलादित्य कान्यकुब्ज लौटनेवाला था। अतः वहाँसे धार्मिक लोगोंको एकत्रित कर लाखों मनुष्योंके साथ उसने गंगाके दक्षिणी किनारेसे यात्रा की और कामरूपके राजाने उत्तरी किनारेसे साथ दिया। ९० दिनमें ये लोग कन्नौज पहुँचे। इसके बाद शीलादित्यकी आज्ञानुसार २० देशोंके राजा अपने अपने देशोंके प्रसिद्ध प्रसिद्ध श्रमणों, ब्राह्मणों, प्रबन्धकर्ताओं और सैनिकोंसहित एकत्रित हुए। इनमें ४,००० बौद्धभिक्षु और ३,००० जैन और ब्राह्मण आदि थे। (इन २० राजाओंमें सुदूर पूर्वका आसामका और सुदूर पश्चिमका वलभीका राजा भी था)। शीलादित्यने भी इस राजकीय धार्मिक समूहके लिये गंगाके पश्चिमकी तरफ़ एक संघाराम और १०० फ़ीट ऊँचा एक बुर्ज बनवाया। इसके बीचमें मनुष्यके आकार प्रकारकी सुवर्णकी एक बुद्धप्रतिमा स्थापन की गई। तथा उस महीनेकी (वसन्त ऋतुके तीसरे महीनेकी) पहली तिथिसे २१ दिन तक श्रमणों और ब्राह्मणोंको राजाकी तरफ़से बराबर भोजन करवाया गया। संघारामसे राजमहल तकका स्थान तम्बुओं और गाने-

वाले लोगोंके खेमोंसे भरा हुआ था। इन दिनों नित्यबुद्धकी एक छोटी ३ फीटकी मूर्तिकी सजे हुए हाथीपर सवारी निकाली जाती थी। इसकी बाईं तरफ़ इन्द्रकी तरह शीलादित्य और दाईं तरफ़ ब्रह्माकी तरह कामरूपका राजा पाँच पाँच सौ सुसज्जित हाथियोंकी रक्षामें चलता था। शीलादित्य चारों तरफ़ मोती आदि बहुमूल्य वस्तुएँ और सोने चाँदीके बने हुए फूल उछालता चलता था। मूर्तिको नित्य स्नान कराया जाता था और स्वयं शीलादित्य उसे अपने कंधेपर रखकर पश्चिमी बुर्जपर ले जाता और वस्त्राभूषण पहनाता था। इसके उपरान्त भोजन होता था। तदनन्तर विद्वन्मण्डली एकत्र हो शास्त्रार्थ करती थी। सन्ध्या होनेपर राजा अपने महलमें जाता था। अन्तमें २१ वें दिन सब लोग अपने अपने स्थानको रवाना हुए। उस दिन बुर्जमें आग लग गई थी। (यह घटना शायद वि० सं० ७०० (ई० स० ६४३) के निकटकी होगी। इस घटनाके बाद हर्षने प्रयागमें होनेवाले धर्मसमाजमें हुएन्त्सांगको भी चलनेको कहा। यह समाज हर्षके राज्यमें तीस वर्षसे हर पाँचवें वर्ष नियमानुसार होता चला आता था और अबकी छठी बार होनेवाला था। इसका समय ई० स० ६४४ (वि० सं० ७००) माना गया है। (इससे प्रतीत होता है कि उत्तरी भारतके जीतनेमें लगे हुए हर्षके राज्यके पहले छः वर्ष यहाँपर नहीं गिने गये हैं और ई० स० ६१२ से जब कि उसने उक्त विजय कार्य समाप्त कर लिया था राज्यवर्षकी गणना की गई है। सम्भव है, उस समय इसने अपने विजयकी खुशीमें पहली सभी की होगी)। इस अवसरपर राज्यका सारा खज़ाना गरीबोंको बाँट दिया जाता था।

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ३४८।

यद्यपि चीनी यात्रीका इरादा वापिस घरकी तरफ़ लौटनेका था परन्तु राजाके कहनेपर उसे साथ जाना पड़ा । इस समाजमें उत्तरी भारतके विद्वान्, गुणी, साधु, ग़रीब, भिक्षुक सब मिलाकर कोई ५,००,००० मनुष्य एकत्रित हुए थे । यह समाज ७५ दिन तक रहा । पहले दिन गंगाकी रेतीमें बने हुए एक गृहमें बुद्धकी मूर्ति रक्खी गई और बहुतसे कीमती वस्त्र आदि बाँटे गये । दूसरे और तीसरे दिन क्रमशः सूर्य और शिवकी मूर्तियोंकी भी इसी प्रकार पूजा की गई । चौथे दिन १०,००० बौद्ध भिक्षुओंमेसे प्रत्येकको दक्षिणामें १०० मुहर, एक मोती और एक सूती वस्त्र दिया गया और इच्छानुसार भोजन आदिसे उनका सत्कार किया गया । इसके बाद २० दिन तक ब्राह्मणोंको विविध दान दक्षिणा दी गई । तदनन्तर १० दिन तक जैन आदि साधु-ओंको दान दिया गया । इसके बाद भिन्नभिन्न प्रदेशके भिक्षुओंकी बारी आई और १० दिन तक उन्हें दान आदि मिला । तदनन्तर एक महीने तक भूखों नंगोंको वस्त्र आदिकी सहायता दी गई ।

"इस प्रकार दान दक्षिणामें सिवाय हाथी घोड़े आदि पशुओंके और सैनिक सामानके—जो कि राज्य प्रबन्धके लिये अत्यावश्यक था—बाकी ख़ज़ानेका सब सामान बाँट दिया गया । यहाँ तक कि राजाने अपने ज़ेवर कपड़े आदि भी दे दिये । अपनी बहनका दिया हुआ केवल एक पुराना वस्त्र ही राजाके पहननेको रह गया । इसके बाद राजाने दश बुद्धोंकी पूजा की और राज्यका सर्वस्व अच्छे कार्यमें लगानेके कारण अपनेको धन्य माना ।

"इसके बाद इस समाजका कार्य समाप्त हुआ और सब लोग अपने अपने स्थानको रवाना हुए । इसके दस दिन बाद हुएन्त्सांगको श्रीहर्ष-

वर्धनने जानेकी अनुमति दी। तथा हर्षने और कुमारने बहुतसी सुवर्ण-मुद्राएँ और अन्यवस्तुएँ उसे भेंट की। परन्तु उसने कामरूपके राजाकी भेंटस्वरूप पोस्तीनके एक गुलूबन्दके सिवाय बाकी सब वस्तुओंके लेनेसे इनकार किया। इसके बाद उसके चीन तक पहुँचनेके मार्ग-व्यय-स्वरूप तीन हज़ार सुवर्ण मुद्राएँ और दस हज़ार रौप्य मुद्राएँ एक हाथीपर लादकर साथ की गईं और राजा उधितको कुछ रक्षक सेनाके साथ हुएन्सांगको राज्यकी सीमा तक सकुशल पहुँचानेका भार सौंपा गया। मार्गमें अनेक स्थानोंमें ठहरते हुए करीब ६ महीनेमें ये लोग जालन्धर पहुँचे। यहाँपर हुएन्त्सांग एक महीने तक रहा। यहाँसे उसने नमककी पहाड़ियोंको लाँघकर सिन्धु नदी पार की और वहाँसे पामीर और खोतानके रास्तेसे वि० सं० ७०२ (ई० स० ६४५) के वसन्तमें चीनमें अपने स्थानपर पहुँच गया।

"यद्यपि इसकी इस भारतयात्रामें इसे कईबार लुटेरोंसे भी पाला पड़ा, फिर भी यह बुद्धके भस्मावशेषके करीब १५० टुकड़े, सोने चाँदी और चन्दनकी बुद्धकी मूर्तियाँ तथा करीब ६५७ लिखित पुस्तकें लेकर घर पहुँचा। यह सब सामान २० घोड़ोंपर लादा गया था। इसके बाद इसने अपनी उमरका शेष भाग उक्त ग्रन्थोंको चीनी भाषामें अनुवादित करनेमें लगाया और वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) के पहले तक यह ७४ ग्रन्थोंका अनुवाद करनेमें कृतकार्य हुआ।

"इसके बाद ३ वर्ष शान्तिके साथ बिताकर और अपने यशरूपी शरीरको इस संसारमें छोड़ कर वह परलोकको सिधारा।"

अब हम हर्षका अन्य वृत्तान्त लिखते हैं:—

हर्षने काश्मीरकी पहाड़ियोंसे लेकर आसाम और नेपालसे नर्मदा

तकका देश अपने अधिकारमें कर लिया था और यद्यपि सिंध, काश्मीर और पंजाबके प्रदेश पूरे तौरसे इसके अधीन नहीं हुए थे तथापि वहाँवाले भी इसके प्रतापके आगे थोड़ा बहुत अवश्य झुक गये थे। इससे यह सारे उत्तरी हिन्दुस्तानका एकाधिपत्य भोग करने लगा था। आसाम (कामरूप) के राजा कुमारराजने भी भेंट दे कर इससे मित्रता करना ही उचित समझा। इससे इसकी सेनाकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी और यह ६०,००० हाथी और १,००,००० सवार तक एकत्रित कर सकता था।

उपर्युक्त विजयके बाद हर्षने दक्षिणपर भी अपना अधिकार करना चाहा। परन्तु वि० सं० ६७७ (ई० स० ६२०) के करीब बादामीके चौलुक्य (सोलंकी) राजा पुलकेशी द्वितीयसे नर्मदाके घाटपर इसे हारना पड़ा। उस समयसे नर्मदा ही इन दोनों उत्तर और दाक्षिणके प्रतापी राजाओंकी राज्यकी सीमा हुई।

वि० सं० ६९० (ई० स० ६३३) के आसपास हर्षने वलभी (पश्चिममें) के राजा ध्रुवसेन द्वितीयको हराया। इस पर वह भाग कर भड़ोचके राजा (दद्द द्वितीय) के यहाँ चला गया। परन्तु अन्तमें ध्रुवसेन द्वितीय (ध्रुवभट) को हर्षवर्धनकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इसपर हर्षने उसे अपनी कन्या ब्याह दी। इसका इतिहास वलभीके राजाओंके वर्णनमें लिखा जायगा।

इसी चढ़ाईके समय हर्षने आनन्दपुर, कच्छ और सुराष्ट्रपर भी अधिकार कर लिया था[1]। इसके राज्यमें मालवा, आसाम, नेपाल, गङ्गा और यमुनाकी घाटीके देश तथा गुजरात सम्मिलित थे।

---

(१) इण्डियन एण्टिकेरी, जिल्द १३, पृ० ७०।

अपने इस इतने बड़े राज्यकी रक्षाके लिये हर्षवर्धन स्वयं बरसातकी मौसमको छोड़ बराबर दौरा किया करता था और दुष्टोंके दण्ड और शिष्टोंके सत्कार द्वारा प्रजाकी रक्षा करता था।

इस यात्रामें इसके साथ नक्कारे रहा करते थे। राजाके रवाना होनेपर ये बजने लगते थे। मार्गमें रहनेके लिये बाँस या लकड़ीके स्थान बनाये जाते थे जो वहाँसे रवाना होते समय नष्ट कर दिये जाते थे

राज्यका प्रबन्ध बहुत ही अच्छा था। पृथ्वीकी आयका छठा हिस्सा लगानके रूपमें लिया जाता था। अधिकारियोंको जीविकार्थ पृथ्वी दी जाती थी। कर बहुत हलके थे। धार्मिक कार्योंमें उदारताके साथ द्रव्य खर्च किया जाता था। छोटे छोटे अपराधोंकी सज़ा केवल जुर्माना मात्र थी। परन्तु बड़े अपराधियोंको कठोर दण्ड दिया जाता था। कुछ अपराधोंमें नाक, कान अथवा हाथ पैर भी काट दिये जाते थे। प्रत्येक प्रान्तमें कुछ ऐसे अधिकारी रहते थे जो सार्वजनिक बातोंको लिख लिया करते थे। विद्याका खूब प्रचार था। खास कर ब्राह्मण और बौद्ध भिक्षुओंने इसके समयमें खूब उन्नति की थी। राज्यकी तरफ़से भी विद्वानोंको बराबर प्रोत्साहन मिलता रहता था। यह राजा विद्वानोंका आश्रयदाता होनेके साथ ही साथ स्वयं भी बड़ा विद्वान् था। इसके प्रमाणस्वरूप इसके रचे हुए रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द नाटक अब तक विद्यमान हैं।

---

(१) बाणभट्ट, (उसका पुत्र) पुलिन्दभट्ट, दण्डी, मयूर और मातङ्गदिवाकर इसकी सभाके पण्डित थे। यह बात राजशेखरकी सूक्तिमुक्तावलीसे प्रकट होती है। विद्वान् लोग जैन कवि मानतुंगाचार्यका भी उसी समय होना मानते हैं।

यह राजा चित्रविद्यामें भी बड़ा निपुण था। बंसखेड़ासे इसके समयका एक ताम्रपत्र[1] मिला है। इसमें इस राजाके हस्ताक्षर खुदे हुए हैं। इससे इसकी चित्रण-कलाकी निपुणता प्रकट होती है। उसमें लिखा है:—'**स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य।**'

वि० सं० ७०० (ई० स० ६४३) के करीब इसने गंजामपर हमला किया और यही इसका अन्तिम युद्ध था। इस प्रकार ३७ वर्ष तक विजयमें लगे रहकर अन्तमें इसने युद्धसे हाथ खींच लिया और अपनी आयुके बाकी बचे समयको अशोककी तरह धार्मिक विधानोंमें लगा दिया। यह ब्राह्मणों और बौद्धोंका बड़ा आदर करता था। इसने अपने अन्तिम समयमें अनेक मठ और गंगाके किनारे सहस्राधिक स्तूप बनवाये थे। प्रत्येक स्तूप १०० फ़ीट ऊँचा होता था। परन्तु इनके चिह्न अब नहीं मिलते हैं। विन्सैण्ट स्मिथका अनुमान है कि शायद ये लकड़ी और बाँसके बने होंगे।

यद्यपि राज्यवर्धन और राज्यश्री बौद्धमतके हीनयान संप्रदायके अनुयायी थे, तथापि हर्षवर्धन बौद्धमतके साथ ही साथ अपने वंश-परम्परागत शिव और सूर्यका भी उपासक था। परन्तु वृद्धावस्थामें इसका अनुराग बौद्धधर्मके महायान सम्प्रदायपर विशेषतर हो गया था, तथा इसने अपने राज्यमें हिंसा रोक दी थी। हिंसा करनेवालेको प्राणदण्ड दिया जाता था। प्रत्येक पुरुष अपनी इच्छानुसार धर्म ग्रहण कर सकता था। इसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाली

---

(१) प्रोग्रैस रिपोर्ट ऑफ़ एशियाटिक सोसाइटी (१९११-१९१२) पैरा १०९।

जाती थी। राजा और उसकी बहनें स्वयं अन्य मतावलम्बियोंकी उक्तियोंको सुना करते थे।

वि० सं० ६९८ (ई० स० ६४१) में हर्षने एक ब्राह्मणको अपना दूत बनाकर चीनके बादशाहके पास भेजा। वह वि० सं० ७०२ (ई० स० ६४५) में लौटकर आया। उसीके साथ वहाँके बादशाहका भेजा एक दूतदल भी इसके दरबारमें आया था। हर्षकी मृत्युके समय (ई० स० ६४६–६४७ में) वेगहिउएन्त्सेकी अध्यक्षतामें एक पार्टी चीनसे और भी आई थी। परन्तु इसके मगधमें पहुँचनेके पूर्व ही हर्षका देहान्त हो गया।

हर्षकी मृत्यु वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) के अन्तमें या वि० सं० ७०४ (ई० स० ६४७) के आदिमें करीब ५६ वर्षकी अवस्थामें हुई। इसके पीछे कोई उत्तराधिकारी न होनेके कारण देशमें बड़ी गड़बड़ मच गई तथा ऊपरसे दुर्भिक्षके कारण उसने और भी उग्र रूप धारण कर लिया।

चाँदीके एक प्रकारके सिक्के[3] मिले हैं। ये भी गुप्तोंके सिक्कोंसे मिलते हुए ही होते हैं। इन पर एक तरफ़ राजाका मस्तक होता है

---

(१) फांगम्चिनने लिखा है कि हर्षकी बहन उसे राज्यकार्यमें भी सहायता दिया करती थी। (२) मि० स्मिथने हर्षका ४७ या ४८ वर्षकी अवस्थामें मरना लिखा है; परन्तु यह बात उन्हींके लेखोंसे विरुद्ध प्रतीत होती है। क्योंकि जब राज्यपर बैठनेके समय (ई० स० ६०६ में) उन्होंने भी इसकी अवस्था १६ वर्षके करीब मानी है तब स्पष्ट है कि (ई० स० ६४६ के करीब) मृत्यु-समय वह ५६ वर्षके करीब था।—(ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० १६५–१६७।)

(३) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स ऑफ़ गुप्त, मौखरी एक्सैट्रा, पृ० ४१–४४।

और उस पर चन्द्रमा बना रहता है। सिरकी बाईं तरफ़ संवत्‌का 'स' पढ़ा जाता है और उसके आगे १ से ३३ तकके भिन्न भिन्न अङ्क बने मिले हैं। दूसरी तरफ़ '**विजितावनिरवनिपति श्रीशीलादित्य दिवं जयति**' लेख और पर खोले मोर होता है।

कुछ सिक्के उपर्युक्त प्रकारके ही हैं, परन्तु वे ताँबेके हैं और उन पर चाँदीका मुलम्मा चढ़ा रहता है। कुछ सिक्के साधारण सिक्कोंसे बड़े भी मिले हैं। इन पर राजाका पूरा छाती तकका चित्र बना होता है। मि० बर्न इन सिक्कोंको हर्षवर्धनके अनुमान करते हैं।

कुछ सिक्के[२] ऐसे मिले हैं जो उपर्युक्त सिक्कोंके समान ही होते हैं। इन पर '**विजितावनिरवनिपति श्रीहर्ष.........**' पढ़ा जाता है।

इस (हर्ष) के तीन दानपत्रोंमेंसे सोनपतसे मिले हुए पर संवत् नहीं है। बाकीके दोमेंसे एक हर्ष-संवत् २२ (ई० स० ६२७ वि० सं० ४८४) का और दूसरा हर्ष संवत् २५ (ई० स० ६३०=वि० सं० ६८७) का है। ये क्रमशः बाँसखेड़ा और मधुबनसे मिले हैं।

हर्षके पीछे उसके मन्त्री अर्जुन (अरुणाश्व) ने उसके राज्य पर कब्ज़ा कर लिया और जंगली कौमोंकी फ़ौज लेकर उपर्युक्त चीनवालों-की पार्टी पर हमला कर दिया। इस हमलेमें उस (पार्टी) के साथकी

---

(१) हर्षने कन्नौज विजय कर वहाँका अधिकार अपनी बहन राज्यश्रीको सौंप दिया और आप उसकी आज्ञानुसार वहाँका प्रबन्ध करने लगा। इसीसे इसके लेखोंमें इसकी उपाधि 'राजपुत्र शीलादित्य' मात्र मिलती है।

(२) कैटलॉग ऑफ दि गुप्त कौइन्स, पृ० ४५।

(३) गुप्त इन्सक्रिपशन्स (फ़्लीट), पृ० २३२।

(४-५) एपिग्राफ़िया इण्डिका जिल्द ४, पृ० २१०, जिल्द १, पृ० ७२।

रक्षक सेनाके सवार—जो कि ३० के करीब थे—मारे या कैद कर लिये गये और उसका सब माल असबाब लूट लिया गया । परन्तु भाग्यवश वेङ्गहिउएन्त्से और उसके साथी रातमें भागकर नेपाल पहुँच गये । उस समय तिब्बत पर स्रोंगत्सानगम्पोका राज्य था । इसका एक विवाह नेपालके ठाकुरीवंशके प्रतिष्ठापक अंशुवर्माकी कन्यासे और दूसरा विवाह चीनकी एक राजकुमारीसे हुआ था । इसने १,२०० वीर योद्धा देकर इनकी मदद की । उस समय नेपालवालोंने भी—जो कि तिब्बतवालोंके अधीन थे—अपनी तरफ़से सात हज़ार सवारोंकी सेना सहायतार्थ भेजी । इस प्रकार ७,००० सवार और १,२०० योद्धा लेकर वेङ्गहिउएन्त्से मैदानकी तरफ़ बढ़ा और तीन दिनके घेरेके बाद उसने तिरहुतको ध्वंस कर दिया । वहाँकी सेनामेंसे ३,००० योद्धा मार डाले गये और १०,००० आदमी बागमती नदीमें डुबा दिये गये । अर्जुन वहाँसे निकल भागा और नई सेना एकत्र कर फिर युद्धके लिये चढ़ दौड़ा । इस बार वह हराया जाकर कैद कर लिया गया । इसके बाद चीनवालोंकी सेनाने १,००० आदमियोंको कत्ल कर राजवंशके सब लोगोंको पकड़ लिया और साथ ही १२,००० कैदी पकड़े । इसमें विजय लाभ करनेसे ५८० शहरपनाहसे रक्षित नगरोंपर इनका कब्ज़ा हो गया, तथा कामरूप (पूर्वी भारत) के राजा कुमारने इनके लिये बहुतसा साज-सामान भेजा ।

इसके बाद कैदी अर्जुनको लेकर वेङ्गहिउएन्त्से चीन पहुँचा और वहाँ पर उसके उक्त कार्योंके लिये उसकी पदवृद्धि की गई । जब चीनका उस समयका बादशाह ‘ त—इत्सङ्ग ’ मर गया तब उसके समाधिमन्दिरमें अनेक मूर्तियोंके साथ साथ तिब्बतके राजा स्रोंगत्सन-

गम्पो और अर्जुनकी मूर्तियाँ भी बनवाकर रक्खी गई। उपर्युक्त युद्धके बाद ई० स० ७०३ (वि० स० ७६०) तक तिरहुत तिब्बत-वालोंके ही अधिकारमें रहा।

हर्षवर्धनकी राजधानी कन्नौज थी। यह करीब ४ मील लंबी और १ मील चौड़ी थी। इसमें बहुतसे मठ और मन्दिर थे। समृद्धिमें भी यह उस समय किसीसे कम न थी। इसे शायद शेरशाहने ईसवी सन्‌की १६ वीं शताब्दीमें नष्ट कर दिया होगा। आज कल बैसवाड़ा (अवधमें) इन बैसवंशियोंका मुख्यस्थान माना जाता है और उनमें तलकचंदी बैस सबमें मुख्य गिने जाते हैं।

हर्ष संवत्।

इस राजा (हर्षवर्धन) ने अपना संवत् भी चलाया था; जो हर्ष संवत्‌के नामसे प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि इसके मिले हुए दोनों दानपत्रोंमें और अन्य किसी भी लेखमें इस संवत्‌का नाम न लिखा होकर केवल संवत् ही लिखा है, तथापि काश्मीरके पंचाङ्गोंके अनुसार पाश्चात्य विद्वानोंने इसका प्रारम्भ विक्रम संवत् ६६४ (ई० स० ६०६) से माना है। अलबेरुनीने लिखा है कि काश्मीरके पञ्चाङ्गोंके अनुसार श्रीहर्ष विक्रमादित्यसे ६६४ वर्ष पीछे हुआ था[1]। प्रोफेसर एडम्स और डाक्टर श्रामके गणितानुसार भी हर्षसंवत्‌का और विक्रम संवत्‌का अन्तर ६६३ तथा हर्ष संवत्‌का और ईसवीसन्‌का अन्तर ६०६ आता है। यह गणना नेपालके राजा अंशुवर्माके संवत् ३४ प्रथम पौष शुक्ला २ के लेख[2]के आधार पर की गई थी। (अतः यह लेख वि० सं० ६९७ का सिद्ध होता है।)

(१) एडवर्ड सॉचोकृत अलबेरुनीज़ इण्डियाका अनुवाद, जिल्द २, पृ० ५।

(२) कीलहार्न्स लिस्ट ऑफ़ नौदर्न इन्सक्रिपशन्स, पृ० ७३, नं० ५३०।

यह संवत् हर्षके राज्यारोहणके समय (ईसवी सन् ६०६ के अक्टूबर माससे) प्रारम्भ हुआ था[1] और संयुक्त प्रदेश और नेपालमें करीब ३०० वर्ष तक प्रचलित रहा था। अब तक करीब २० लेखोंमें इस संवत्का लिखा होना माना गया[2] है।

अलबेरूनीने जिस हर्ष संवत् १४८८ का विक्रम संवत् १०८८ में होना लिखा[3] है वह उपर्युक्त हर्ष संवत्से भिन्न ही होगा। परन्तु अब तक उसका उल्लेख किसी लेख आदिमें नहीं मिला है।

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द २६, पृ० ३२।

(२) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ५, ऐपैण्डिक्स नं० ५२८–५४७।

(३) एडवर्ड सौचोकृत अलबेरूनीज़ इण्डियाका अनुवाद, जिल्द, २, पृ० ७, और फ़्लीटके गुप्त इन्सक्रिपशन्स, भूमिका पृ० ३०–३१।

परिशिष्ट ।

मगधके पिछले गुप्तराजा ।

ई० स० ५३३ (वि० सं० ५९०) के निकटसे ई० स० ८२० (वि० सं० ८७७) के निकट तक ।

गुप्तवंशकी मुख्य शाखावाले राज्यके नष्ट हो जानेपर भी कुछ दिन तक इस वंशकी एक शाखाका अधिकार मगधपर रहा था। विद्वान् लोग इनको मगधके पिछले गुप्तराजा कहते हैं। इस शाखामें ११ राजा हुए थे। शायद ये अन्य राजाओंके सामन्त हों। इनकी वंशावली नीचे दी जाती है:—

१ कृष्णगुप्त—यह सम्भवतः गुप्तराज्यके हिल जानेपर स्वाधीन बन बैठा होगा। यह मौखरी हरिवर्माका समकालीन था और शायद उसका सामन्त रहा हो तो आश्चर्य नहीं। इसके पुत्रका नाम हर्षगुप्त था।

२ हर्षगुप्त—यह कृष्णगुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके पुत्रका नाम जीवितगुप्त था। शायद इसीकी बहन हर्षगुप्तासे मौखरी आदित्यवर्माका विवाह हुआ था।

३ जीवितगुप्त (प्रथम)—यह अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ।

४ कुमारगुप्त—यह जीवितगुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी था तथा मौखरीवंशी राजा ईशानवर्मासे लड़ा था। यह राजा वि० सं० ६११ (ई० स० ५५४ में विद्यमान था।) इसने प्रयाग तीर्थपर

शुष्क गोमय (कंडों) में अग्नि प्रज्वलित करके जीतेजी उसमें प्रवेश-कर लिया था[1]।

५ दामोदरगुप्त—यह कुमारगुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी था और मौखरी राजाद्वारा युद्धमें मारा गया[2]।

६ महासनगुप्त—यह दामोदरगुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसने मौखरी वंशके राजा सुस्थिरवर्माको हराया था[3]। इसके पुत्रका नाम माधवगुप्त था। कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि पहले, कृष्ण-गुप्त आदि इन पिछले गुप्तराजाओंका राज्य उज्जैनके आसपास था और इस वंशके और कन्नौजके मौखरियोंके आपसमें अनबन चली आती थी। कृष्णगुप्तसे छठे राजा महासेन गुप्तके शायद ३ पुत्र थे—देवगुप्त, कुमार और माधव। इनमेंसे छोटे दो पुत्रोंको महासेनने अपने भानजे प्रभाकरवर्धन (थानेश्वरके राजा) के यहाँ भेज दिया था। इनमेंसे कुमार तो राज्यवर्धनका और माधव हर्षका अनुयायी नियत हुआ। महासेनके मरने पर उसका बड़ा पुत्र देवगुप्त मालवेकी गद्दी पर बैठा और उसने मौका पाकर कन्नौजके मौखरी राजा ग्रहवर्माको मार डाला। इसीके बदले राज्यवर्धनने चढ़ाई कर उसे मारा। जब राज्यवर्धन मार्गमें धोखेसे मारा गया तब हर्षवर्धनने मालवेको अपने राज्यमें मिला लिया और अपने अनुयायी माधवगुप्तको मगधका सामन्त नियुक्त किया। परन्तु अन्य विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं। उनका अनुमान है कि ये कृष्णगुप्त आदि पिछले गुप्त राजा मालवेके न हो-कर मगधके ही थे और मालवेमें गुप्तोंकी एक दूसरी शाखा थी जिसमेंका भवगुप्त (ई० स० ५८० में) एक था। क्यों कि कृष्ण-

(१-२-३) कौर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, पृ० २००।

हर्षवर्धनके समयके ख़ास ख़ास अक्षरों के आकार

नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर	नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर
ए		षु	
च		ह्रा	
ज		धि	
ट		ःप्र	
थ		प्स	
ध		रा	
म		स्तो	
ह		स्व	
को		श्री	
जा		हा	

हर्षवर्धनके इतिहाससे

गुप्तसे माधवगुप्त तककी वंशावलीमें देवगुप्तका नाम कहीं नहीं मिलता है। अत: यदि यह ठीक हो तो हर्षचरितवाले कुमार और माधव भी इसी (मालवेकी) शाखाके होंगे और यह माधव मगधकी शाखावाले माधवसे भिन्न होगा। परन्तु अभी तक इस विषयमें निश्चित मत नहीं दिया जा सकता। होर्नले देवगुप्तको और यशोधर्माके पुत्र शीलादित्यको एक ही अनुमान करते हैं और हर्षकी माता यशोमतीको शीलादित्यकी बहन मानते हैं, परन्तु यह अनुमान ठीक प्रतीत नहीं होता।

७ माधवगुप्त—यह महासेन गुप्तका उत्तराधिकारी पुत्र और वैस-वंशी राजा हर्षवर्धनका सामन्त था[1]। इसकी रानीका नाम श्रीमती देवी और पुत्रका नाम आदित्यसेन था।

८ आदित्यसेन—यह अपने पिताका उत्तराधिकारी था और उपर्युक्त वैसवंशी राजा हर्षवर्धनके देहान्त होनेपर स्वतन्त्र बन गया था। इसके समयके तीन लेख मिले हैं। पहला हर्ष संवत् ६६ मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी (ई० स० ६७२–७३=वि० सं० ७२९–३०) का है[2]। इसमें नालन्दमें किये गये धर्मकार्यका वर्णन है। यह लेख शाहपुर (बिहार) से मिला है।

दूसरा लेख अफसन्द (जाफ़रपुर—गया) से मिला[3] है। यह बिना संवत्का है। इसमें आदित्यसेन द्वारा विष्णुमन्दिर आदिके बनवानेका वर्णन है। इसकी माताका नाम श्रीमती और स्त्रीका नाम कोणदेवी लिखा है।

तीसरा लेख मन्दार पर्वत परसे मिला[4] है। इसमें भी संवत् नहीं है। इसमें इसके नामके आगे 'परम भट्टारक महाराजाधिराज' की

(१) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द २, पृ० २००।
(२–३–४) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, पृ० २०८, २००, २११।

उपाधि लगी है। इससे अनुमान होता है कि थानेश्वरके प्रतापी राजा हर्षवर्धनके मरनेपर आदित्यसेन स्वतंत्र राजा बन गया था। सम्भवतः यह लेख उसी समयका है। इसमें इसकी स्त्री द्वारा एक तालाव बनवाये जानेका वर्णन है।

काठमांडूसे एक लेख हर्षसंवत् (?) १५३ (ई० स० ७५८–५९=वि० सं० ८१५–८१६) कार्तिक शुक्ला नवमीका मिला है। इससे प्रकट होता है कि लिच्छवि वंशके शिवदेव द्वितीयने, आदित्यसेनकी नवासीके साथ विवाह किया था[1]। यह मौखरी राजा भोगवर्माकी कन्या थी।

९ देवगुप्त—यह आदित्यसेनका पुत्र और उत्तराधिकारी था। कीलहार्नने लिखा है कि इसकी कन्याका नाम प्रभावती गुप्ता था; और उसका विवाह वाकाटकवंशी राजा रुद्रसेन द्वितीयके साथ हुआ था, जिससे महाराजा प्रवरसेन दूसरा उत्पन्न हुआ[2]। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि यह प्रभावती गुप्ता चन्द्रगुप्त द्वितीयकी कन्या थी। देवगुप्तकी रानीका नाम कमलादेवी और पुत्रका नाम विष्णुगुप्त था। इसकी उपाधि 'महाराजाधिराज' थी।

१० विष्णुगुप्त—यह अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ। इसकी रानीका नाम इज्जादेवी और पुत्रका नाम जीवित गुप्त था। इसकी उपाधि 'महाराजाधिराज' थी।

११ जीवितगुप्त (द्वितीय)—यह अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ। इसके समयका एक लेख देववरणार्क (आरा) से मि-

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द, ९, पृ० १७८,।

(२) लिस्ट ऑफ़ नौर्दर्न इन्सक्रिपशन्स, पृ० ८४, नोट ७।

है[1]। इसमें मगधके तीन प्राचीन राजाओंके नाम हैं। पहला बाला-दित्यका, दूसरा शर्ववर्माका और तीसरा अवन्तिवर्माका।

इनमेंसे बालादित्यको हुएन्त्सांगने मिहिरकुलको जीतनेवाला लिखा है। शर्ववर्मा शायद मौखरी राजा था; जिसकी एक मुहर (Seal) असीरगढ़से मिली है। और अवन्तिवर्मा शायद राज्यश्रीके पति मौखरी ग्रहवर्माका पिता था। यह राज्यश्री कन्नौजके राजा हर्षवर्धनकी बहन थी। इसका वर्णन बाणने अपने हर्षचरितमें किया है। इसकी उपाधि भी 'महाराजाधिराज' थी।

इसके बादके इस वंशके किसी राजाका वृत्तान्त न मिलनेसे अनुमान होता है कि सम्भवत: जीवितगुप्त द्वितीयके अन्तिम समयमें पालवं-शियोंने मगध पर अधिकार कर लिया होगा।

सारनाथसे प्रकटादित्य नामक किसी राजाका एक लेख मिला है। परन्तु यह अपूर्ण है। अत: इस विषयमें कोई निश्चित मत नहीं दिया जा सकता। शायद यह भी गुप्तोंसे ही सम्बन्ध रखता हो।

गुत्तलके गुप्तराजा।

ई० स० ११०० (वि० सं० ११५७) के निकटसे ई० स० १२७० (वि० सं० १३२७) के निकट तक।

बंबईके गज़टियरसे पता चलता है कि विक्रम संवत्‌की १३ वीं शताब्दीके मध्य तक धारवाड़ ज़िलेमें गुप्तोंका राज्य था। इन राजा-ओंने अपनेको उज्जैनके महाराजा विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय) के वंशज और गुप्तवंशी लिखा है। इनके लेखोंसे पाया जाता है कि ये चन्द्रवंशी थे और इनकी उपाधि 'उज्जयिनीपुरवराधीश्वर'

(१–२) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, पृ० २१३, २१९।

थी। तथा ये अपना इष्टदेव उज्जयिनीके महाकालेश्वर महादेवको सम-झते थे। इनकी राजधानीका नाम गुत्तल था और इनका राज्य बन-वासी (उत्तरी कनाड़ा प्रदेशमें) तक था। इनकी वंशावली इस प्रकार मिलती है:—

१ महागुप्त (मागुत्त)—इस वंशमें सबसे पहला नाम यही मिलता है। यह गुप्तवंशी विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय) का वंशज था।

२ गुत्त प्रथम—यह महागुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

३ मल्लिदेव (मल्लुदेव)—यह गुत्तका पुत्र और उत्तराधिकारी था। यह पश्चिमी चौलुक्य (सोलंकी) विक्रमादित्य छठेके महा सामन्ताधिपति गोविन्दरसका सामन्त था और ई० स० १११५ (वि० स० ११७२) में विद्यमान था। इसकी उपाधि महासामन्त थी।

४ वीर विक्रमादित्य प्रथम—यह मल्लिदेवका पुत्र और उत्तराधि-कारी था।

५ जोम (जोइदेव प्रथम या जोम्म)—यह वीर विक्रमादित्यका पुत्र और उत्तराधिकारी था। श० सं० ११०३ (वि० सं० १२३८= ई० स० ११८१) का इसका एक लेख मिला है[२]। यह कलचुरी आहवमल्लका सामन्त था। इसकी उपाधि महामण्डलेश्वर थी।

६ गुत्त द्वितीय—यह वीर विक्रमादित्य प्रथमका पुत्र और जोमका छोटा भाई था। तथा उसके बाद राज्यका अधिकारी हुआ।

७ वीर विक्रमादित्य द्वितीय (आहवादित्य)—यह गुत्त दूसरेका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके लेख श० सं० ११०४ से ११३६ (वि० सं० १२३९ से १२७१=ई० स० ११८२ से १२१४)

(१-२) बॉम्बे गज़टियर, पृ० ५८०, ५८१।

तकके मिले हैं । उनसे प्रकट होता है कि सम्भवतः पहले यह कल-चुरी राजा आहवमल्लका सामन्त था और पीछे या तो यह स्वाधीन हो गया था या इसने यादवोंकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। इसकी उपाधि ' महामण्डलेश्वर ' थी ।

८ जोइदेव द्वितीय (जोविदेव)—यह वीर विक्रमादित्य द्वितीयका पुत्र और उत्तराधिकारी था। श० सं० ११६० (वि० सं० १२९५= ई० स० १२३८) का इसके समयका एक ताम्रपत्र मिला है[2] । यह यादव राजा सिंघणका सामन्त था । यह पट्टमदेवीका पुत्र था और इसकी उपाधि ' महामण्डलेश्वर ' थी ।

९ विक्रमादित्य तृतीय—यह वीर विक्रमादित्य द्वितीयका पुत्र और जोइदेव द्वितीयका छोटा भाई था, तथा उसके पीछे राज्यका स्वामी हुआ । इसकी स्त्रीका नाम मैलल देवी था ।

१० गुत्त तृतीय—यह विक्रमादित्य तृतीयका पुत्र और उत्तराधि-कारी था । शक संवत् ११८९, ११८६ (वि० सं० १३१९, १३२०=ई० स० १२६२, १२६३) के इसके समयके दो लेख मिले हैं[3] । उनसे प्रकट होता है कि यह देवगिरिके यादव राजा महा-देवका सामन्त था, तथा इसका दूसरा नाम गुत्तरस था । इसके दो छोटे भाई और भी थे । इनमेंसे एकका नाम हरियदेव और दूसरेका जोइदेव (तृतीय) था। गुत्त तृतीयके बादका इनका वृत्तान्त अब तक नहीं मिला है ।

(१-२-३) बॉम्बे गज़टियर, पृ० ५८१-८२, ८३ ।

वलभीका राजवंश।

ई० स० ४७० (वि० सं० ५२७) से ई० स० ७७० (वि० सं० ८२७) तक।

वंश।

हम पहले लिख चुके हैं कि वि० सं० ५२७ (ई० स० ४७०) के आसपास स्कन्दगुप्तके राज्यपर हूणोंका हमला हुआ था और इससे गुप्तराज्य हिल गया था। इसी समयके निकट इन (गुप्तों) के सेनापति भटार्कने अथवा उसके पुत्रोंने स्वामीके राज्यको पतनोन्मुख देखकर वलभीपुर (काठियावाड़) में अपना राज्य स्थापन कर लिया। बहुतसे लोग इस वंशके राजाओंको सूर्यवंशी समझते हैं। परन्तु इनके ताम्रपत्रोंसे इस बातकी पुष्टि नहीं होती। शायद पहले कुछ काल तक ये हूणोंके अधीन रहे हों।

वलभी संवत् २५२ (वि० सं० ६२८=ई० स० ५७१) का वलभीके राजा धरसेन द्वितीयका एक दानपत्र मिला है[1]। इसमें लिखा है:—

"**स्वस्ति वलभि (भी) तः प्रसभप्रणतामित्राणां मैत्रकाणामतुलबलसम्पन्नमण्डलाभोगसंसक्तसंप्रहारशतलब्धप्रतापः**"

इस लेखके आधारपर यद्यपि बहुतसे विद्वान् इनको मैत्रक वंशका मानते हैं और साथ ही इस मैत्रक वंशको आजकलकी मेर या मेहर जातिका शुद्ध संस्कृत रूप अनुमान करते हैं, तथापि कुछ विद्वान् मैत्रक वंशियोंको उक्त वलभीके राजाओंका शत्रु समझते हैं। इसका

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, जिल्द ८, पृ० ३०२।

कारण उक्त लेखके संस्कृत पदोंके विन्यासकी विशेषता है; जिससे उक्त दोनों अर्थ निकल सकते हैं । अतः जब तक इस विषयके अन्य प्रमाण न मिलें तब तक इनके वंशका निश्चय करना कठिन है । मि० स्मिथ मैत्रकोंको ईरेनियन अनुमान करते हैं ।

राज्य-विस्तार ।

उक्त वंशके राजाओंका राज्य पहले पहल गुजरातमें माही नदी तक ही था, परन्तु अन्तमें नर्मदा तक भी पहुँच गया था । तथा कुछ समयके लिये मालवेके पश्चिमी भाग और भड़ोच पर भी इन्होंने अधिकार कर लिया था । बहुतसे विद्वान् कच्छ, सुराष्ट्र और राजपूतानेके कुछ भाग पर भी इनका अधिकार होना मानते हैं । यद्यपि इनमेंसे कुछ राजाओंने 'महाराजाधिराज' की उपाधि भी धारण कर ली थी, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि ये अन्य राजाओंके सामन्त ही थे ।

धर्म ।

इनके ताम्रपत्रोंपर बैलकी मुहर लगी होनेसे और इनके राज्यमें बड़े बड़े शिवलिङ्ग और पत्थरकी नन्दीकी मूर्तियोंके मिलनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये राजा शैव थे । परन्तु इनमेंसे कुछ राजाओंका अनुराग बौद्ध धर्मपर भी था । इस वंशके ध्रुवसेन प्रथमकी भानजी दुद्दाने एक बौद्ध मठ बनवाया था; जिसके खर्चके लिये ध्रुवसेन प्रथमने एक गाँव और गुहसेनने चार गाँव दिये थे । इनके ताम्रपत्रोंसे प्रकट होता है कि यह दुद्दा बुद्धकी परम उपासिका थी ।

कला-कौशल और विद्या ।

इन राजाओंने अपनी राजधानीमें अनेक सुन्दर मन्दिर बनवाये थे, तथा इनका ध्यान हमेशा कला कौशल और विद्याकी उन्नतिकी तरफ़

रहता था। इनके दानपत्रोंसे प्रकट होता है कि ये लोग आजीविका रूपसे गाँव आदि दान देकर विद्वानोंकी सहायता किया करते थे। ईसाकी सातवीं शताब्दीके चीनी यात्री हुएन्त्सांगके लेखसे प्रकट होता है कि यह (वलभी) नगर धन और विद्याका घर[1] था। यहाँ पर अनेक बौद्ध मठ थे; जिनमें हीनयान मतके संमतीय संम्प्रदायके ६,००० भिक्षु रहते थे। तथा (ईसाकी छठी शताब्दीके) प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् गुणमति और स्थिरमति भी यहीं हुए थे। अतः यह नगर बौद्धोंके लिये और भी प्रसिद्ध था।

चीनीयात्री इत्सिंगके लेखसे भी उपर्युक्त बातोंकी पुष्टि होती है। उसने लिखा है कि:—"उस समय भारतमें नालन्द (दक्षिणी बिहारमें) और वल्लभी (पश्चिमी मालवेमें) दो ही विद्याके घर समझे जाते थे।" (ईसाकी सातवीं शताब्दीमें मालवेका पश्चिमी भाग और वलभी दोनों ही ध्रुवसेन द्वितीय (ध्रुवभट) के अधिकारमें होंगे। इसी लिये इत्सिगने वलभीको पश्चिमी मालवेमें लिख दिया है।) वलभीके राजाओंके चाँदी और ताँबेके सिक्के मिलते हैं। इन पर एक तरफ़ क्षत्रपोंके सिक्कोंके समान ही राजाका चहरा बना होता है और दूसरी तरफ़ त्रिशूल बना होता है। परन्तु इधरका लेख अबतक नहीं पढ़ा गया है। इन सिक्कोंकी कारीगरी भद्दी होती है।

इतिहास।

१ भटार्क।

इस वंशके राजाओंके ताम्रपत्रोंमें यही सबसे पहला नाम मिलता है। इसकी उपाधि केवल सेनापति ही थी। इसके चार पुत्र थे—धरसेन, द्रोणसिंह, ध्रुवसेन, और धरपट्ट।

---

(१) हुएन्त्सांग शायद ई० स० ६४१ के करीब उक्त स्थानपर गया था।

२ धरसेन।

यह भटार्कका बड़ा पुत्र था। इसकी भी उपाधि सेनापति ही मिलती है।

३ द्रोणसिंह।

यह भटार्कका पुत्र और धरसेनका छोटा भाई था। गुप्त संवत् १८३ (वि० सं० ५५९=ई० स० ५०२) का इसका एक ताम्रपत्र मालियासे मिला है[1]। इससे प्रकट होता है कि द्रोणसिंहका राज्याभिषेक एक बड़े नरपतिने किया था। परन्तु इसमें नाम न होनेसे इस विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। द्रोणसिंहकी उपाधि 'महाराज' थी। उपर्युक्त बातोंसे प्रकट होता है कि सम्भवतः इसीके समयसे वलभीके राज्यकी पूरी तौरसे स्थापना हुई होगी। महामहोपाध्याय श्रीयुत हरप्रसाद शास्त्रीने अपने भारतके इतिहास (History of India) में वलभीके राजाओंका ई० स० ४२६ के पूर्व महाराजकी उपाधि ग्रहण करना लिखा है[2]। परन्तु इनके ताम्रपत्रोंसे इस बातकी पुष्टि नहीं होती। इनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि भटार्क और धरसेनकी उपाधियाँ केवल सेनापति ही थीं और पहले पहल द्रोणसिंहने ही महाराजकी उपाधि ग्रहण की थी। यह राजा शैव था।

४ ध्रुवसेन (प्रथम)।

यह भटार्कका पुत्र और द्रोणसिंहका छोटा भाई था, तथा उस (द्रोणसिंह) के पीछे राज्यका अधिकारी हुआ। इसके समयके ५ ताम्रपत्र मिले हैं। इनमेंसे पहले दो गुप्त संवत् २०७ (वि० सं०

---

(१) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, जिल्द ३, पृ० १६८।

(२) शास्त्रीजीकी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ० ३४।

५८३=ई० स० ५२६) के हैं[1]। जिनमेंसे पहले वैशाख मासवालेमें इस राजाकी उपाधि 'महासामन्त महाराज' लिखी है। तीसरा ताम्रपत्र गुप्तसंवत् २१६ (वि० सं० ५९२=ई० स० ५३५) का है[2]। इसमें इसकी उपाधि 'महासामन्त महाप्रतिहार महादण्डनायक महाकार्ताकृतिक महाराज' लिखी है। चौथा गुप्त संवत् २१७ (वि० सं० ५९३=ई० स० ५३६) का है[3]। इसमें भी उपर्युक्त उपाधियाँ ही लिखी हैं। पाँचवाँ ताम्रपत्र गुप्त संवत् २२१ (वि० सं० ५९७=ई० स० ५४०) का है[4]।

इसके लेखोंसे पता चलता है कि इसकी भानजीका नाम दुद्दा था। यह बुद्धकी उपासिका थी और इसने वलभीपुरमें एक बौद्ध मठ बनवाया था, जिसके निर्वाहार्थ इस ध्रुवसेन प्रथमने एक गाँव दिया था।

५ धरपट्ट।

यह भी भटार्कका पुत्र और ध्रुवसेन (प्रथम) का छोटा भाई था, तथा उसके पीछे राज्यका स्वामी हुआ। इसकी उपाधि महाराज थी। इसके पुत्रका नाम गुहसेन था।

६ गुहसेन।

यह धरपट्टका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इस वंशके पिछले राजाओंके ताम्रपत्रोंमें गुहसेनसे ही वंशावली दी होती है। अतः सम्भव है कि यह विशेष प्रतापी हुआ हो। यद्यपि यह राजा शिवका उपा-

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ३, पृ० ३२० और इण्डियन ऐण्टिक्वेरी जिल्द ५, पृ० २०५।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ६, पृ० १०५।

(३) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१८९५) पृ० ३८२।

(४) वीनर, जीट्स्क्रिफ्ट, जिल्द ७, पृ० २९७।

सक था, तथापि बौद्धधर्म पर भी इसकी श्रद्धा रहती थी। इसने पूर्वोक्त दुद्दाके बनवाये बौद्ध मठके निर्वाहार्थ चार गाँव दिये थे। इसके समयके ४ ताम्रपत्र मिले हैं:—

पहला गुप्तसंवत् २४० (वि० सं० ६१६=ई० स० ५५९) का है[1]। इसमें इसके पिता धरपट्टका नाम नहीं दिया है और इसकी उपाधि महाराज लिखी है। दूसरा गुप्त संवत् २४६ (वि० सं० ६२२=ई० स० ५६५) का[2], तीसरा गुप्त संवत् २४७ (वि० सं० ६२३=ई० स० ५६६) का[3] और चौथा गुप्त संवत् २४८ (वि० सं० ६२४=ई० स० ५६७) का है[4]। विना संवत्का एक ताम्रपत्र बांकोडीसे और भी मिला है[5]। यह टूटा हुआ है। इसमें भी गुहसेनका नाम लिखा है।

७ धरसेन (द्वितीय)।

यह गुहसेनका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके समयके ८ ताम्रपत्र मिले हैं। इनमेंसे पहले पाँच गुप्त संवत् २५२ (वि० सं० ६२८=ई० स० ५७१) के हैं[6]। इनमें इसकी उपाधि 'सामन्त महाराज' लिखी है। छठा गुप्त संवत् २६९ (वि० सं० ६४५=ई० स० ५८८) का है[7]। इसका दूतक सामन्त शीलादित्य है। सातवाँ ताम्रपत्र गुप्त संवत् २७० (वि० सं० ६४६=ई० स० ५८९) का है[8]।

(१–२–३–४) इण्डियन ऐण्टिक्करी, जिल्द ७, पृ० ६७, जिल्द ४, पृ० १७५, जिल्द १४, पृ० ७५, जिल्द ५, पृ० २०७।

(५–६) भावनगर इन्सक्रिपशन्स, पृ० ३०, ३१, ३५, गुप्त इन्सक्रिपशन्स, पृ० १६५, इण्डियन ऐण्टिकेरी, जिल्द ७ पृ० ६८, तथा इण्डियन ऐण्टिकेरी, जिल्द ८, पृ० ३०१।

(७–८) इण्डियन ऐण्टिकेरी, जिल्द ६, पृ० ११ और जिल्द ७, पृ० ७१।

इसका दूतक भी वही शीलादित्य है। आठवाँ ताम्रपत्र गुप्त संवत् २७२ (वि० सं० ६४८=ई० स० ५९१) का है[1]।

शक संवत् ४०० (वि० सं० ५३५=ई० स० ४७८) का एक लेख मिला है। यह धरसेनदेवका है। इसमें इसके पिताका नाम भट्टार्क लिखा है, तथा उक्त धरसेनकी उपाधि 'महाराजाधिराज' लिखी है। परन्तु यह बनावटी प्रतीत होता है; क्योंकि भटार्कके पुत्र धरसेन प्रथमकी उपाधि केवल 'सेनापति' ही मिलती है। उसके वंशजोंके किसी भी लेखमें उसे 'महाराजाधिराज' नहीं लिखा है। इसका कारण यह है कि उसके पुत्र द्रोणसिंहने ही पहले पहल 'महाराज'की उपाधि ग्रहण की थी। इस विषयका खुलासा हाल हम द्रोणसिंहके वर्णनमें लिख चुके हैं। प्रोफेसर कीलहार्न साहबने भी इसे बनावटी-ही माना है और साथ ही इसे गुहसेनके पुत्र धरसेन द्वितीयका अनुमान किया है। परन्तु इस (धरसेन द्वितीय) के समयके वि० सं० ६२८ (ई० स० ५७१) से वि० सं० ६४८ (ई० स० ५९१) तकके ताम्रपत्र मिले हैं। अतः यह ताम्रपत्र इसके समयका भी नहीं हो सकता। इसी राजाके समय भारतसे एक संघ चीनकी बनी वस्तुएँ लानेको भेजा गया था। इस राजाके दो पुत्र थे—शीलादित्य और खरग्रह।

८ शीलादित्य (प्रथम)।

यह धरसेन द्वितीयका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके समयके तीन ताम्रपत्र मिले हैं। पहले दो गुप्त संवत् २८६ (वि० सं० ६६२=ई० स० ६०५) के हैं[2] और तीसरा गुप्त संवत् २९० (वि० स० ६६६=ई० स० ६०९) का है[3]। इसके एक लेखमें

(१) सी. माबेल डफ़की क्रोनोलौजी ऑफ़ इण्डिया, पृ० ४२ (वर्ष ५७१)।
(२-३-४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द १०, पृ० २८३, जिल्द १, पृ० ४६ तथा जिल्द १४, पृ० ३२९ और जिल्द ९, पृ० २३८।

बुद्धोपासिका दुद्दाका भी वर्णन है। तथा इसके अन्तिम लेखका दूतक इसका छोटा भाई खरग्रह है। इस राजा (शीलादित्य प्रथम) का दूसरा नाम धर्मादित्य था। इसके एक देरभट नामका पुत्र भी था। परन्तु वह किसी अज्ञात कारणसे पिताके राज्यका अधिकारी न हो सका। शायद इनके यहाँ भी क्षत्रपोंकी तरह भाईकी विद्यमानतामें पुत्रको राज्य न मिलता होगा; जैसा कि भटार्कके पुत्रोंके इतिहाससे अनुमान होता है।

९ खरग्रह (प्रथम)।

यह धरसेन द्वितीयका पुत्र और शीलादित्य प्रथमका छोटा भाई था, तथा उसके बाद राज्यपर बैठा। इसके दो पुत्र थे—धरसेन और ध्रुवसेन।

१० धरसेन (तृतीय)।

यह खरग्रह प्रथमका ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी था। गोपनाथसे ताम्रपत्रका एक पत्र मिला है[1]। इसमें इसका नाम लिखा है।

११ ध्रुवसेन (द्वितीय)।

यह खरग्रह प्रथमका पुत्र और धरसेन तृतीयका छोटा भाई था, तथा अपने बड़े भाईका उत्तराधिकारी हुआ। इसके समयका गुप्त संवत् ३१० (वि० सं० ६८६=ई० स० ६२९) का एक ताम्रपत्र मिला है[2]। इसमें भी ध्रुवसेन प्रथमकी भानजी दुद्दाका वर्णन है और इस लेखमें दूतकका नाम सामन्त शीलादित्य लिखा है। इस राजाका दूसरा नाम बालादित्य भी था। इसी समय चीनी यात्री हुएन्त्सांग ई० स० ६४१ (वि० सं० ६९८) के करीब वलभीपुरमें

(१-२) इण्डियन ऐण्टिकेरी, जिल्द १२, पृ० १४८, जिल्द ६, पृ० १२।

गया था। उसने इस राजाके विषयमें लिखा है कि:—"यहाँका राजा तु-लु-प 'ओ-प-च' अ (ध्रुवभट=ध्रुवसेनका रूपान्तर) मालवेके राजा शीलादित्यका भतीजा और कन्नौजके वर्तमान राजा शीलादित्य (हर्षवर्धन) का जामाता (दामाद) है। यह आज कल बौद्धमतानुयायी हो गया है और इसका राज्य भारतके दक्षिणी प्रांतपर है।" इस लेखसे अनुमान होता है कि शायद ध्रुवसेन द्वितीयके पूर्व ही मालवेका पश्चिमी प्रान्त भी वलभीके राजाओंके अधिकारमें आ गया था। सम्भवतः इसीसे हुएन्त्सांगने खरग्रहके बड़े भाई शीलादित्य प्रथमको मालवेका राजा लिखा होगा। परन्तु अभी इस विषयमें कुछ निश्चित नहीं हुआ है।

राजतरङ्गिणीमें भी एक शीलादित्यका उल्लेख है:—

> वैरिनिर्वासितं राज्ये विक्रमादित्यजं न्यधात्।
> पित्र्ये प्रतापशीलं स शीलादित्यापराभिधं ॥

अर्थात् काश्मीरके राजा प्रवरसेन द्वितीयने उज्जयनीके राजा शीलादित्य उपनामवाले प्रतापशीलको अपने पिताका राज्य वापस दिलवाया।

कन्नौज (थानेश्वर) के राजा हर्षने ई० स० ६३३ और ६४१ (वि० सं० ६९० और ६९८) के बीच हमला कर वलभीके राजाको हराया था। उस समय भड़ोंचके गुर्जरवंशी राजा दद्द (द्वितीय) ने वलभीके राजाकी सहायता की थी। इससे विदित होता है कि श्रीहर्षने वलभीके राजा इस ध्रुवसेन द्वितीयको ही हराया होगा और शायद पुनः सन्धि हो जानेपर ही अपनी कन्याका विवाह इसके साथ कर दिया होगा। हुएन्त्सांगके लेखसे यह भी प्रकट होता है कि उक्त

ध्रुवसेन द्वितीय राजा श्रीहर्ष द्वारा की हुई ई० स० ६४३ (वि० सं० ७००) की प्रयागवाली धार्मिक सभामें भी गया था।

१२ धरसेन (चतुर्थ)।

यह ध्रुवसेन द्वितीयका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके समयके ४ ताम्रपत्र मिले हैं:—

पहले दो गुप्त संवत् ३२६ (वि० सं० ७०२=ई० स० ६४५) के हैं[1] और बाकीके दो गुप्त संवत् ३३० (वि० सं० ७०५=ई० स० ६४८ के[2]। इनमें इसकी उपाधि 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वरचक्रवर्ती' लिखी है। अतः सम्भव है कि यह विशेष प्रतापी हुआ हो। इसकी कन्याका नाम भूपा (भूवा) था। उपर्युक्त चार ताम्रपत्रोंमेंसे पहले दोका दूतक राजपुत्र ध्रुवसेन है और पिछले दोकी दूतक राजकन्या भूपा (भूवा) है। इस राजाके पिछले दानपत्र भरुकच्छ (भड़ोच) से दिये गये हैं। इससे अनुमान होता है कि उस समय भड़ोच भी इसके अधिकारमें था। अथवा यह भी सम्भव है कि वहाँके गुर्जर राजा इन वलभीके राजाओंके सामन्त हों।

भट्टि काव्यके कर्ता महाकवि भट्टिने अपना उक्त काव्य वलभीके राजा धरसेनके समय लिखा था; ऐसा उक्त ग्रन्थके अन्तिम श्लोक (**काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां श्रीधरसेननरेन्द्रपालितायाम्**) से प्रकट होता है। अतः सम्भव है कि उक्त काव्य इसी धरसेन चतुर्थके समय लिखा गया हो। उक्त ग्रन्थके टीकाकार जयमङ्गलने इस

(१) जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, जिल्द १०, पृ० ७७, और इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द १, पृ० ४५।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ७, पृ० ७३ और जिल्द १५, पृ० ३३९।

श्लोकमेंके ' श्रीधरसेननरेन्द्र ' का अर्थ ' श्रीधरसूनुनरेन्द्र ' करके गड़-बड़ कर दी है।

१३ ध्रुवसेन (तृतीय)।

हम पहले शीलादित्य प्रथमके वर्णनमें लिख चुके हैं कि उसका पुत्र देरभट राज्यका अधिकारी न हो सका था। उसी देरभटका पुत्र यह ध्रुवसेन तृतीय धरसेन चतुर्थका उत्तराधिकारी हुआ। सम्भव है कि धरसेनके कोई पुत्र न हो और इसी लिये इस ध्रुवसेनको अधिकार मिला हो। यह ध्रुवसेन देरभटका सबसे छोटा पुत्र था। इसके दो बड़े भाई भी थे; जिनका नाम शीलादित्य[1] द्वितीय और खरग्रह (द्वितीय) था। परन्तु पहले सबसे छोटा भाई और उसके बाद उसका बड़ा भाई राज्यका स्वामी क्यों हुआ, यह पूरी तौरसे समझमें नहीं आता। शायद धरसेन चतुर्थने छोटा देखकर ध्रुवसेन तृतीयको गोद लिया हो और इसके भी विना पुत्र मरनेपर इसका बड़ा भाई राज्यका स्वामी हुआ हो, अथवा हमारे पूर्व लेखानुसार इनके यहाँ भाईके रहते दूसरेको अधिकार न मिलता हो। इसीसे छोटे भाईके बाद इसकी बारी आई हो।

इसके समयका पहला ताम्रपत्र गुप्त संवत् ३३२ (वि० सं० ७०६=ई० स० ६४९) का मिला है[2] और दूसरा गुप्त संवत् ३३४ (वि० सं० ७०८=ई० स० ६५१) का।

(१) शीलादित्य द्वितीयको राज्याधिकार प्राप्त नहीं हुआ था। कैप्टिन बेल ध्रुवसेन तृतीय और खरग्रह द्वितीयकी राज्यप्राप्तिमें भी इसके छोटे भाई होनेके कारण शंका करते हैं। पर यह शंका ठीक प्रतीत नहीं होती।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द १७, पृ० १९७, नोट, ५०।

(३) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १, पृ० ८६।

१४ खरग्रह (द्वितीय)।

यह भी देरभटका पुत्र और ध्रुवसेन तृतीयका बड़ा भाई था तथा अपने छोटे भाईके बाद राज्यका स्वामी हुआ। इसका दूसरा नाम धर्मादित्य भी था। गुप्त संवत् ३३७ (वि० सं० ७१३=ई० स० ६५६) का इसका एक ताम्रपत्र मिला है[१]।

१५ शीलादित्य (तृतीय)।

यह देरभटके सबसे बड़े पुत्र और खरग्रह दूसरेके ज्येष्ठ भ्राता शीलादित्य द्वितीयका पुत्र था, तथा अपने चचा खरग्रहके बाद राज्यका अधिकारी हुआ। (यह शीलादित्य द्वितीय राज्यका स्वामी न हो सका था। शायद यह समयके पूर्व ही मर गया हो।)

इसके समयके ४ ताम्रपत्र मिले हैं:—पहला गुप्त संवत् ३४८ (वि० सं० ७२४=ई० स० ६६७) का[२], दूसरा गु० सं० ३५० (वि० सं० ७२६=ई० स० ६६९) का[३], तीसरा गु० सं० ३५२ (वि० सं० ७२८=ई० स० ६७१) का और चौथा गु० सं० ३६५ (वि० सं० ७४१=ई० स० ६८४) का है[५]। इसके इन लेखोंका दूतक राजपुत्र ध्रुवसेन है।

१६ शीलादित्य (चतुर्थ)।

यह शीलादित्य तृतीयका पुत्र और उत्तराधिकारी था। शायद

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ७, पृ० ७६।
(२) सी. माबेल डफ्स क्रौनौलौजी ऑफ़ इण्डिया, पृ० ५६ (वर्ष ६६७)
(३) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द ४, पृ० ७६।
(४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ११, पृ० ३०६।
(५) जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, जिल्द ७, पृ० ९६८।

शीलादित्य तृतीयके लेखोंके दूतक राजपुत्र ध्रुवसेनने ही राज्यपर बैठते समय यह नाम धारण कर लिया होगा।

इसके समयके ४ ताम्रपत्र मिले हैं:—पहला गु० सं० ३७२ (वि० सं० ७४८=ई० स० ६९१) का[1], दूसरा गु० सं० ३७५ (वि० सं० ७५१=ई० स० ६९४) का[2], तीसरा गु० सं० ३७६ (वि० सं० ७५२=ई० स० ६९५) का[3] और चौथा गु० सं० ३८२ (वि० सं० ७५८=ई० स० ७०१) का है[4]।

इनमेंसे पहले ताम्रपत्रमें इसकी उपाधि 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' लिखी है और बाकीके तीनोंमें केवल 'महाराजाधिराज' ही है। इसके पूर्वके तीन ताम्रपत्रोंमें राजपुत्र खरग्रहको और चौथेमें राजपुत्र धरसेनको दूतक लिखा है।

१७ शीलादित्य (पंचम)।

यह शीलादित्य चतुर्थका पुत्र और उत्तराधिकारी था। सम्भव है कि शीलादित्य चतुर्थके लेखोंके दूतक राजपुत्र खरग्रह और धरसेनमेंसे एक भाईने राज्यपर बैठते समय उक्त उपाधि धारण की हो और दूसरा भाई अपने राज्य प्राप्तिके पूर्व ही मर गया हो। क्योंकि इस राजा शीलादित्य पंचमके पीछे इसका पुत्र शीलादित्य षष्ठ राज्यका स्वामी हुआ था। बहुत सम्भव है कि यदि दूसरा भाई जीवित रहता तो पहले वही अपने भ्राताका उत्तराधिकारी होता, जैसा कि हम शीला-

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ५, पृ० २०९।

(२) वीनर जीट्सक्रिफ्ट, जिल्द १, पृ० २५३।

(३–४) लिस्ट ऑफ् इन्सक्रिपशन्स ऑफ नौदर्न इण्डिया, नं० ४९२, ४९३।

दित्य प्रथमके वर्णनमें देरभटके विषयमें लिख चुके हैं। परन्तु जब तक इस विषयके पोषक अन्य प्रमाण न मिलें तब तक इस अनुमानको निश्चयका रूप नहीं दिया जा सकता।

शीलादित्य पंचमके समयके दो ताम्रपत्र मिले हैं। ये दोनो गु० सं० ४०३ (वि० सं० ७७९=ई० स० ७२२) के हैं[1]। इनमेंसे पहलेमें इसकी उपाधि 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' लिखी है। इसके लेखोंका दूतक राजपुत्र शीलादित्य है।

१८ शीलादित्य (षष्ठ)।

यह शीलादित्य पंचमका पुत्र और उत्तराधिकारी था। गुप्त संवत् ४४१ (वि० सं० ८१७=ई० स० ७६०) का इसका एक ताम्रपत्र मिला है[2]। इसमें इसके पिताके समान ही इसकी उपाधि लिखी है।

१९ शीलादित्य (सप्तम)।

यह शीलादित्य षष्ठका पुत्र और उत्तराधिकारी था। गुप्त संवत् ४४७ (वि० सं० ८२३=ई० स० ७६६) का इसका एक ताम्रपत्र मिला है। इसमें इसकी उपाधि भी वही 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' लिखी है। इसका असली नाम ध्रूभट (ध्रुवभट) था।

समाप्ति।

शीलादित्य सप्तम (ध्रुवभट) के बादके वलभीके किसी राजाका दानपत्र आदि न मिलनेसे अनुमान होता है कि इसी राजाके समय

(१) जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी; जिल्द ११, पृ० ३३५।
(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ६, पृ० १७।
(३) गुप्त इन्सक्रिपशन्स, पृ० १७३।

अमरु बिन जमाल द्वारा इस राज्यकी समाप्ति हो गई होगी । यह अमरु बिन जमाल ख़लीफ़ा अलमन्सूर द्वारा नियत किये हुए सिन्धके अरब-शासक 'हशाम इब्न अमरु अल तघलबी' का सेनापति था और उसी (हशाम इब्न अमरु अल तघलबी) की आज्ञासे ई० स० ७५७ (हि० स० १४०=वि० सं० ८१४) के करीब इस (अमरु बिन जमाल) ने काठियावाड़पर चढ़ाई की थी ।

मौखरी-वंश ।

ई० स० ४७५ (वि० सं० ५३२) के निकटसे ई० स० ७४१ (वि० सं० ७९८) के निकट तक ।

गयासे मिली हुई मिट्टीकी एक मुहरमें 'मोखलीणां' (मोखरीणां) लिखा है । इसके अक्षरोंके अशोक लिपिसे मिलते हुए होनेके कारण इस वंशका बहुत प्राचीन होना सिद्ध होता है । परन्तु उक्त समयका इनका इतिहास अब तक नहीं मिला है । ये लोग अपनेको (मद्र-राज) अश्वपतिके वंशज मानते थे । महाभारतमें लिखा है कि 'सावित्रीने यमको प्रसन्न कर अपने पति सत्यवान्के प्राण बचाये और पिता अश्वपति (उपर्युक्त) को सौ पुत्रोंकी प्राप्ति करवाई थी ।' परन्तु वहाँ पर इन सौ पुत्रोंको 'मालव' लिखा है । इससे सम्भवतः मौखरी लोगोंका भी मालव जातिमें ही होना सिद्ध होता है ।

इस (मौखरी) वंशके राज्यके पूर्वमें मगध, दक्षिणमें मध्यप्रान्त और आन्ध्र, उत्तरमें नेपाल और पश्चिममें थानेश्वर और मालवा था ।

इनकी राजधानी कन्नौज थी। परन्तु बीचमें उस पर बैसवंशी राजा हर्षने अपना अधिकार कर लिया था।

असीरगढ़से इस वंशके राजा शर्ववर्माकी एक मुद्रा मिली है। उसमें नन्दिके बने होनेसे इनका शैव होना प्रकट होता है।

१ हरिवर्मा।

इस वंशका सबसे प्रथम नाम यही मिला है। इसकी उपाधि 'महाराज' थी। इसकी स्त्रीका नाम जयस्वामिनी था। हरिवर्माको ज्वालामुख भी कहते थे। यह मगधके पिछले गुप्त राजा कृष्णगुप्तका समकालीन था। सम्भव है, वह इसका सामन्त हो।

२ आदित्यवर्मा।

यह हरिवर्माका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसकी उपाधि 'महाराज' थी। इसकी रानीका नाम हर्षगुप्ता था। यह शायद मगधके पिछले गुप्तराजा हर्षगुप्तकी बहन होगी।

३ ईश्वरवर्मा।

यह आदित्यवर्माका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसकी उपाधि 'महाराज' थी। जौनपुरसे इसके समयका एक लेख मिला है। इसकी रानीका नाम उपगुप्ता था।

४ ईशानवर्मा।

यह ईश्वरवर्माका पुत्र था और उसके पीछे राज्यपर बैठा। इसकी उपाधि 'महाराजाधिराज' मिलनेसे अनुमान होता है कि यह विशेष प्रतापी था। मगधके पिछले गुप्त राजाओंके इतिहासमें लिखा जा चुका है कि इसके और कुमारगुप्तके आपसमें युद्ध हुआ था; क्योंकि

---

(१) कॉर्पस इन्स्क्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, पृ० २२९।

इसने उसके राज्यपर हमला किया था। परन्तु इस युद्धमें ईशानवर्माकी हार हुई। इसकी रानीका नाम लक्ष्मीवती था।

हरहासे इसके समयका वि० सं० ६११ (ई० स० ५५४) का एक लेख मिला है[1]। यह इसके पुत्र सूर्यवर्माका है। इसमें राजा अश्वपतिसे मौखरी वंशकी उत्पत्ति लिखी है और ईशानवर्माका आंध्राधिपतिको, मूलिकोंको और गौड़ोंको जीतना लिखा है।

इसके कुछ चाँदीके सिक्के मिले[2] हैं। ये गुप्तोंके चाँदीके सिक्कोंसे मिलते हुए होते हैं। इनके एक तरफ़ राजाका मस्तक और संवत् होता है। इनमेंसे एक ८, ५५ पढ़ा गया है। दूसरी तरफ पर खोले मोरका चित्र और 'विजितावनिरवनिपति श्रीशानवर्मा दिवं जयति' लेख होता है। उपर्युक्त सिक्कोंपरके संवत्को कुछ विद्वानोंने कलियुगादि संवत् माना है। परन्तु नये मिले हुए शर्ववर्मा और अवन्तिवर्माके संवत् २३४ और २५० तो निर्विवाद गुप्त संवत् ही हैं।

५ शर्ववर्मा।

यह ईशानवर्माका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसका एक ताम्रपत्र[3] असीरगढ़से मिला है। इसमें इसकी उपाधि 'परममाहेश्वर महाराजाधिराज' लिखी है। मगधके पिछले गुप्त राजा दामोदर गुप्तसे लड़नेवाला शायद यही मौखरी राजा था। इसके भी ईशानवर्माके समान ही चाँदीके सिक्के मिले[4] हैं। इनमेंके कुछ सिक्कोंपर एक तरफ़

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका (१९१७) जुलाई, पृ० ११३।
(२) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स ऑफ गुप्त, मौखरी ऐक्सैट्रा, पृ० ३९।
(३) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, पृ० २२०।
(४) कैटलॉग ऑफ़ दि कौइन्स ऑफ गुप्त एण्ड मौखरी किंग्स, पृ०३९।

संवत् २३४[1], ५८, ६७, ७१, पढ़ा जाता है। इनमें राजाके मस्तकपर चन्द्रमा बना होता है। दूसरी तरफ़ '**विजितावनिरवनिपति श्रीशर्ववर्मा दिवं जयति**' लिखा रहता है।

६ सुस्थिरवर्मा।

यह शायद शर्ववर्माका उत्तराधिकारी होगा। मगधके पिछले गुप्तराजा महासेन गुप्तने इसे हराया था।

७ अवंतिवर्मा।

यह कन्नौजका शासक था। इसके चाँदीके सिक्कोंपर[2] '**विजितावनिरवनिपति श्रीअवन्तिवर्मा दिवं जयति**' लेख होता है। तथा संवत् २५० पढ़ा गया है। (यह भी शायद गुप्त संवत् ही होगा।)

८ ग्रहवर्मा।

हर्षचरितसे ज्ञात होता है कि इसका विवाह थानेश्वरके वैसवंशी राजा प्रभाकरवर्धनकी कन्यासे हुआ था; जिसका नाम राज्यश्री था। प्रभाकरवर्धनके मरनेपर मालवेके राजा (देवगुप्त) ने हमलाकर इस ग्रहवर्माको मार डाला और इसकी स्त्री राज्यश्रीको कन्नौजमें कैद कर दिया। इसीका बदला लेनेके लिये हर्षवर्धनके बड़े भाई राज्यवर्धनने मालव-राजपर चढ़ाई कर उसे परास्त किया। परन्तु इस विजयके बाद ही उसे (राज्यवर्धनको) गौडके राजा (शशाङ्क) ने विश्वास

(१) विद्वान् लोग इसे गुप्त संवत् मानते हैं। अतः इसका वि० सं० ६१२ में होना सिद्ध होता है; क्योंकि गुप्त संवत् २३४ का वि० सं० ६१२ में ही होना पाया जाता है। गुप्त संवत्के प्रयोग करनेसे इसका उस समय गुप्तोंके अधीन होना भी प्रकट होता है।

(२) कैटलाग ऑफ़ दि गुप्त एण्ड मौखरी कौइन्स, पृ० ४०।

घात कर मार डाला। इसका खुलासा हाल शशाङ्कके इतिहासमें लिखा जा चुका है।

९ भोगवर्मा।

मगधके पिछले गुप्त राजा आदित्यसेनके इतिहासमें लिखा जा चुका है कि इसकी कन्यासे मौखरीवंशी भोगवर्माका विवाह हुआ था। वह यही होगा। इसकी कन्या वत्सदेवीका विवाह लिच्छविवंशी शिवदेव द्वितीयके साथ हुआ था।

१० यशोवर्मा।

इसकी राजधानी कन्नौज थी। 'गौडवहो' काव्यमें इसका वृत्तान्त मिलता है। वीरचरित, उत्तररामचरित और मालतीमाधवके कर्ता महाकवि भवभूति और गौड़वहो काव्यके कर्ता वाक्पतिराज दोनों इसकी सभामें थे। इसने ई० स० ७३१ में एक दल (पार्टी) चीनको भेजा था। काश्मीरनरेश ललितादित्य (मुक्तापीड़) ने जिस समय ई० स० ७४१ के निकट कन्नौज पर चढ़ाई की उस समय युद्धमें यह मारा गया।

इसके बाद इनका इतिहास अब तक नहीं मिला है।

नागार्जुनी पहाड़ीकी गुफासे एक लेख[1] मिला है। उसमें मौखरी-वंशके निम्न लिखित तीन नाम दिये हैं:—

१ यज्ञवर्मा।

उक्त लेखमें सबसे पहला नाम यही है।

२ शार्दूलवर्मा।

यह यज्ञवर्माका पुत्र था।

---

(१) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं जिल्द ३, पृ० २२४ और २२७।

३ अनन्तवर्मा ।

यह शार्दूलवर्माका पुत्र था। उपर्युक्त लेख इसीके समयका है। गयाके पासकी बराबर पहाड़ीकी गुफासे इसके समयका एक लेख[1] और भी मिला है। इसमें इसका और इसके पिता (शार्दूल) का ही नाम लिखा है।

हम ईशानवर्माके पुत्र सूर्यवर्माके वि० स० ६११ के लेखका उल्लेख पहले कर चुके हैं; परन्तु इस (सूर्यवर्मा) का उल्लेख अन्यत्र न मिलनेसे कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि ईशानवर्मासे मौखरी वंशकी दो शाखाएँ हो गई होंगी और उपर्युक्त यज्ञवर्मा आदि सूर्यवर्माकी शाखामें होंगे। परन्तु इस विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

लिच्छवि-वंश ।

ई० स० से ५३० (वि० सं० से ४७३) वर्ष पूर्वसे ई० स० ७५८ (वि० सं० ८१५) के बाद तक।

इनके लेखोंसे पता लगता है कि ये राजा सूर्यवंशी थे। ईसवी सन्से ५३० वर्ष पूर्व इस वंशके राजाओंका राज्य वैशाली (मुजफ्फ़रपुर जिला) में था और उक्त समयके आसपास ही शिशुनागवंशी राजा बिम्बिसारने इस वंशकी एक कन्यासे विवाह किया था। इसी कन्याके गर्भसे अजातशत्रु (कुनिक) का जन्म हुआ। कहते हैं कि यह अजातशत्रु अपने पिताको मारकर राज्यका स्वामी बन बैठा था। उस समय शिशुनागवंशका राज्य राजगृह, अङ्गदेश (भागलपुर और मुंगेर ज़िला) और मगध देश पर था।

---

(१) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, पृ० २२२।

उक्त समयके बादसे करीब आठसौ वर्ष तकका इन लिच्छवि-वंशियोंका कुछ भी हाल नहीं मिलता है। प्रसिद्ध जैन तीर्थङ्कर महावीरकी माता भी इसी वंशकी थी। ईसवी सन् ३०८ के निकट गुप्तवंशी राजा चन्द्रगुप्त प्रथमने इस वंशकी कन्या कुमारदेवीसे अपना विवाह किया था। उसके पुत्र समुद्रगुप्तके सिक्कों और लेखोंमें फिर इस वंशका नाम दिया गया है। उक्त लेखों आदिसे प्रकट होता है कि उस समय भी लिच्छविवंश प्राचीन और श्रेष्ठतम राजवंशोंमें गिना जाता था।

इसके बाद फिर ई० स० ६३५ के करीब इस वंशके राजाओंके राज्यका पूर्वी नेपालमें होना पाया जाता है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह नेपालवाले राजा वैशालीवाली शाखामेंके ही थे, या उसी वंशकी किसी अन्य शाखाके थे।

हर्ष संवत् १५३ (ई० स० ७५९) के एक लेखसे पुष्पपुर (पाटलिपुत्र—पटना) में भी इनका राज्य होना प्रकट होता है।[1] परन्तु अब तक इस विषयका कोई अन्य प्रमाण नहीं मिला है।

कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि लिच्छवि वंशकी नेपालवाली शाखाने ई० स० १११ (वि० सं० १६८) से अपना संवत् भी प्रचलित किया थो। जिस समय इस वंशके राजाओंका अधिकार पूर्वी नेपाल पर था, उस समय पश्चिमी नेपाल पर ठाकुरी वंशके राजाओंका प्रभुत्व था।

लिच्छवि वंशवाले अपने लेख मानगृहसे और ठाकुरी वंशवाले कैलासकूट भवनसे लिखवाते थे। ये दोनों स्थान काठमांडूके आस-

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ९, पृ० १७८।

(२) लेवी, ली नेपाल, जिल्द १, पृ० १४ और जिल्द २, पृ० १५३।

पास ही थे। तथा पहले वंशवालोंके लेखोंमें गुप्त संवत् और दूसरे वंशवालोंके लेखोंमें हर्ष संवत् लिखा जाता था।

इन दोनों वंशोंके लेखोंमें दी हुई उपाधियोंसे अनुमान होता है कि कभी लिच्छवि वंशवालोंका और कभी ठाकुरी वंशवालोंका प्रभाव घटता बढ़ता रहता था।

कुछ विद्वानोंका यह भी अनुमान है कि नेपाल उस समय थानेश्वर (कन्नौज) के राजा श्रीहर्षका सामन्त राज्य था। पश्चिमी नेपालके ठाकुरी वंशियोंके लेखोंमें हर्षसंवत् लिखा होनेसे भी इस अनुमानकी पुष्टि होती है।

काठमांडू (नेपाल) में पशुपतिका एक मन्दिर है। उसके पश्चिमी द्वारके सामने एक नन्दी रक्खा हुआ है। इसीके पास पूर्वोल्लिखित हर्ष संवत् १५३ (वि० सं० ८१६=ई० स० ७५९) का लेख लगा है। यह राजा जयदेव (परचक्रकाम) के समयका है। इसमें उक्त राजाओंकी वंशावली इस प्रकार दी है:—

" सूर्यके वंशमें मनु आदिके बाद राजा दशरथ हुआ। उससे नवाँ राजा लिच्छवि था। उसके वंशमें राजा सुपुष्प हुआ। इसका जन्मस्थान पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) था। इसके बाद चौबीसवाँ राजा जयदेव हुआ। इसकी बारहवीं पीढ़ीमें राजा वृषदेव हुआ। यह बुद्धका भक्त था। इसके बाद क्रमशः शङ्करदेव, धर्मदेव, मानदेव, महीदेव और वसन्तदेव राजा हुए। इनके बाद फिर क्रमशः उदयदेव, नरेन्द्रदेव, शिवदेव (द्वितीय) के नाम लिखे हैं। इस शिवदेव (द्वितीय) का विवाह मौखरी राजा भोगवर्माकी कन्या वत्सदेवीसे हुआ था। यह वत्सदेवी मगधके राजा आदित्यसेनकी नवासी थी। इसीके

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ९ पृ० १७८।

गर्भसे जयदेव उत्पन्न हुआ था। इसकी उपाधि 'परचक्रकाम' थी। इसने गौड़, ओड्र, कलिङ्ग और कोशलके राजा हर्षदेवकी कन्या राज्यमतीसे विवाह किया था। यह हर्षदेव भगदत्तके वंशमें था।"

इस लेखमें वर्णित जयदेव (वृषदेवका पूर्वज) और नेपालसे मिली हुई इन राजाओंकी वंशावलीमें दिया हुआ जयवर्मा शायद एक ही होगा।

डाक्टर भगवानलाल इन्द्रजीने उपर्युक्त लेखमें वर्णित वसन्तदेवके बादके उदयदेवको वसन्तदेवका उत्तराधिकारी मानकर इसके और नरेन्द्रदेवके बीच १३ राजाओंका होना अनुमान किया था। परन्तु इस अनुमानके लिये उनको मानदेव और वसन्तदेवके लेखोंके संवतोंको विक्रम संवत् मानना पड़ा था।

इस प्रकार माननेसे मानदेवके पहले लेखके (विक्रम) संवत् ३८६ [(मानदेवका समय विक्रम संवत् ३८६ के अनुसार ईसवी सन् ३२९) (वसन्तदेवका समय विक्रम संवत् ४३९ के अनुसार ईसवी सन् ३७८)] से जयदेव द्वितीयके हर्ष संवत् १५३ (विक्रम संवत् ८१५ = ई० स० ७५८) के लेखके बीच ४२९ वर्षका अन्तर आया। इस अन्तरको मानदेवसे शिवदेव द्वितीय तककी १९ पीढ़ियोंमें बाँटा तो प्रत्येक पीढ़ीके लिये २२ वर्ष और ७ महीनेके करीब समय आया। परन्तु फ्लीटसाहब इस मतको नहीं मानते। उनका कहना है कि उदयदेव वसन्तदेवका उत्तराधिकारी नहीं था, किन्तु अंशुवर्माका वंशज था। ऐसा माननेसे हमको मानदेवके और वसन्तसेन (देव) के लेखोंके संवतोंको विक्रम संवत् मानकर उक्त राजाओंको इतना पीछे ढकलनेकी आवश्यकता न रहेगी।

(१) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, एपैण्डिक्स ४, पृ० १८७।

शिवदेव प्रथम।

इस वंशके राजाओंमें सबसे पहले इसीके समयके दो लेख मिले हैं। इनमेंसे एक गुप्त संवत् ३१६ (३१८) (वि० सं० ६९२= ई० स० ६३५) का है[1] और दूसरा विना संवत्का[2]। यह टूटा हुआ है तथा काठमांडूसे पाँच मील उत्तरकी शिवपुरी पहाड़ीसे मिला है। इन दोनों लेखोंमें शिवदेवकी उपाधि 'महाराज' लिखी है और साथ ही इनमें 'महासामन्त' अंशुवर्माका भी वर्णन है। यह अंशुवर्मा ठाकुरीवंशका था। उक्त दोनों लेख मानगृहसे लिखवाये गये थे।

ध्रुवदेव।

हर्ष संवत् ४८ (वि० सं० ७११=ई० स० ६५४) का जिष्णुगुप्तका एक लेख मिला[3] है। यह कैलासकूट भवनसे लिखवाया गया था। इसमें मानगृहके लिच्छविवंशी महाराज ध्रुवदेवका भी वर्णन है। तथा उपर्युक्त अंशुवर्माकी उपाधि 'महाराजाधिराज' लिखी है। इस लेखका दूतक युवराज विष्णुगुप्त है।

विना संवत्के दो लेख जिष्णुगुप्तके समयके और भी मिले हैं। ये टूटे हुए हैं। इनमेंसे एकमें इस ध्रुवदेवकी उपाधि 'भट्टारक महाराज' लिखी है[4]। ये लेख भी कैलासकूट भवनसे ही लिखवाये गये थे।

शायद ध्रुवदेवके बाद इसके वंशजोंके हाथसे राज्याधिकार निकल गया होगा और इन्हींके कुटुम्बकी किसी दूसरी शाखाके वृषदेवने पूर्वी नेपालपर अपना अधिकार जमा लिया होगा। यह वृषदेव शिवदेव प्रथमका समकालीन और जयदेवका वंशज था।

(१-२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द १४, पृ० ९८, जिल्द ९, पृ० १६८।
(३-४) इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द ९, पृ० १७१, १७३।

वृषदेव।

पहले लिखे हुए हर्ष संवत् १५३ के लेखके अनुसार यह जयदेवकी बारहवीं पीढ़ीमें था।

शङ्करदेव।

यह वृषदेवका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

धर्मदेव।

यह शङ्करदेवका पुत्र था और उसके पीछे राज्यका स्वामी हुआ। इसकी स्त्रीका नाम राज्यवती थी[1]।

मानदेव।

यह धर्मदेवका पुत्र था और उसके पीछे गद्दी पर बैठा। इसके समयके दो शिलालेख मिले हैं। पहला गुप्त संवत् ३८६ (वि० सं० ७६२=ई० स० ७०५) का है[2]। इसमें वृषदेवसे मानदेव तककी वंशावली लिखी है। दूसरा लेख गुप्त संवत् ४१३ (वि० सं० ७८९=ई० स० ७३२–३३) का है[3]। यह टूटा हुआ है।

महीदेव।

यह मानदेवका पुत्र था और उसके पीछे उसका उत्तराधिकारी हुआ।

वसन्तदेव।

यह महीदेवका पुत्र था और इसके बाद राज्यका उत्तराधिकारी हुआ। गुप्त संवत् ४३५ (वि० सं० ८११=ई० स० ७५४) का इसका एक लेख मिला है[4]। यह टूटा हुआ है। इसमें इसका नाम वसन्तसेन और उपाधि 'महाराज' लिखी है। इस लेखका दूतक सर्वडण्डनायक महाप्रतिहार रविगुप्त है। यह लेख भी मानगृहसे लिखवाया गया था।

(१-२-३-४) इंडियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ९, पृ० १६३ और १६७।

डाक्टर फ्लीटके मतानुसार इस वंशका राज्य यहीं समाप्त हो गया था। उक्त साहब हर्ष संवत् १५३ के लेखमें वर्णित वसन्तदेवके बादके उदयदेवको अंशुवर्माके वंशमें मानते हैं। हमारे मतसे भी यही बात ठीक प्रतीत होती है।

इनसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य राजा और उनके लेख।

अंशुवर्मा।

यह ठाकुरी वंशका था और इसका अधिकार पश्चिम नेपाल पर था। इसके लेखोंमें हर्ष संवत्का प्रयोग होनेसे अनुमान होता है कि यह पहले थानेश्वर (कन्नौज) के राजा हर्षका सामन्त था। इसके समयके ४ लेख मिले हैं। इनमें पहले दो हर्ष संवत् ३४ (वि० सं० ६९६=ई० स० ६३९) के हैं[1]। इनमें इसकी उपाधि 'महासामन्त' लिखी है। तीसरा हर्ष संवत् ३९ (वि० सं० ७०१=ई० सं० ६४४) का है[2]। इसमें इसके नामके आगे कोई उपाधि नहीं लगी है। इसी लेखमें अंशुवर्माकी बहिन भोगदेवीका भी वर्णन है। यह राजपुत्र सूरसेनकी स्त्री और भोगवर्मा और भाग्यदेवीकी माता थी। इस लेखका दूतक युवराज उदयदेव है। यह उदयदेव और उपर्युक्त हर्ष संवत् १५३ के लेखका उदयदेव शायद एक ही था। इससे डा० फ्लीटके अनुमानकी पुष्टि होती है। चौथा लेख हर्ष संवत् ४५ (वि० सं० ७०७=ई० स० ६५०) का है[3]। इसमें भी इसके नामके आगे कोई उपाधि नहीं लगी है। परन्तु इसके उतराधिकारी जिष्णुगुप्तके लेखोंमें इसके नामके आगे 'महा-राजाधिराज' की उपाधि लगी होनेसे अनुमान होता है कि राजा श्री-

---

(१) प्रोफेसर बैण्डाल्स जरनी, पृ० ७४, और इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ९, पृ० १६९। (२-३) इंडियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ९, पृ० १७०, १७१।

हर्षके मरने पर यह स्वाधीन हो गया था और इसी कारणसे इसके पिछले लेखोंमें ' महासामन्त ' की उपाधि नहीं मिलती है। तथा उनमें नई स्वाधीनताद्योतक उपाधिके न मिलनेका कारण यह प्रतीत होता है कि उस समय तक भी यह अपने स्वाधीन अधिकारको पूरी तौरसे स्थिर न कर सका होगा। यह लिच्छवि शिवदेव प्रथमका समकालीन था।

इसके ये चारों लेख कैलासकूट भवनसे लिखवाये गये थे। इस अंशुवर्माकी कन्याका विवाह तिब्बतके राजा स्रोंगत्सनगम्पोसे हुआ था। इस (विवाह) का समय ई० स० ६३९ के करीब होना चाहिये[1]।

जिष्णुगुप्त।

यह अंशुवर्माका उत्तराधिकारी था। इसके समयके तीन लेख मिले हैं। इनमेंसे एक हर्ष संवत् ४८ (वि० सं० ७१०=ई० स० ६५३) का है[2]। इसमें उपर्युक्त लिच्छविवंशी ध्रुवदेवका भी वर्णन है और उसकी उपाधि ' महाराज ' लिखी है। तथा इसीमें अंशुवर्माको ' महाराजाधिराज ' लिखा है। इस लेखका दूतक युवराज विष्णुगुप्त है। बाकीके दो लेख टूटे हुए हैं[3]। इनमेंसे एकमें लिच्छवि ध्रुवदेवकी उपाधि ' भट्टारक महाराज ' मिलती है। यह जिष्णुगुप्त ध्रुवदेवका समकालीन था और इसके उक्त तीनों लेख भी कैलासकूट भवनसे लिखवाये गये थे।

उदयदेव।

यह शायद लिच्छविवंशी धर्मदेवका समकालीन होगा। इसके पीछेके ठाकुरीवंशी राजाओंके लेखोंमें अंशुवर्मा आदिका नाम न

---

(१) अर्ली हिस्ट्री आफ् इंडिया, पृ० ३६६।

(२-३) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ९, पृ० १७१ और १७३ तथा ७४।

होनेसे अनुमान होता है कि यह उक्त वंशकी किसी दूसरी शाखाका था।

नरेन्द्रदेव।

यह उदयदेवका वंशज था।

शिवदेव (द्वितीय)।

यह नरेन्द्रदेवका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके दो लेख मिले हैं। पहला हर्ष संवत् ११९ (वि० सं० ७८२=ई० स० ७२५) का और दूसरा हर्ष संवत् १४३ (वि० सं० ८०५=ई० स० ७४८) का है[२]। इनमें इसकी उपाधि, 'महाराजाधिराज' लिखी है। इसके ये लेख भी कैलासकूट भवनसे ही लिखवाये गये थे। इनमेंके पहले लेखका दूतक राजपुत्र जयदेव है।

यह शिवदेव द्वितीय बड़ा पराक्रमी था। इसका विवाह मौखरी-वंशी राजा भोगवर्माकी पुत्री वत्सदेवीसे हुआ था। यह वत्सदेवी मगधके राजा आदित्यसेनकी नवासी थी[३]।

जयदेव।

यह शिवदेवका पुत्र और उत्तराधिकारी था। पूर्वोल्लिखित हर्ष संवत् १५३ (वि० सं० ८१५=ई० स० ७५८) वाला लेख[४] इसीके समयका है। इससे प्रकट होता है कि इसने हर्षदेवकी कन्या राज्यमतीसे विवाह किया था। यह हर्षदेव भगदत्तवंशी था और इसका राज्य गौड़, ओड्र, कलिङ्ग, कोशल आदि देशोंमें था। यह जयदेव बड़ा विद्वान्, पराक्रमी और दाता था, तथा इसकी उपाधि 'परचक्रकाम' थी। जयदेवके बादके किसी राजाके लेखादिके न मिलनेसे इसके आगेके इतिहासका कुछ भी पता नहीं चलता।

(१-२-३-४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द ९, पृ० १७४, १७६, १७८।

दो लेख नेपालसे और भी मिले हैं। इनमेंका पहला लेख हर्ष संवत् ८२ (वि० सं० ७४४=ई० स० ६८७) का और दूसरा हर्ष संवत् १४५ (वि० सं० ८०७=ई० स० ७५०) का है। इनके टूटे हुए होनेके कारण इनमें राजा आदिका नाम नहीं है। इनमेंसे पहलेका दूतक युवराज स्कन्ददेव है और दूसरेका युवराज विजयदेव।

गुप्त संवत् ५३५ (वि० सं० ९११=ई० स० ८५४) का एक लेख वहाँसे और मिला है। इसमें भी राजाका नाम टूटा हुआ है। इसका दूतक राजपुत्र विक्रमसेन है।

विक्रमादित्य और विक्रम संवत्।

कथाओंमें विक्रमादित्यका हाल इस प्रकार मिलता है कि यह मालवेका प्रतापी राजा था और शक—सीदियन—लोगोंको हरानेके कारण इसकी उपाधि 'शकारि' हो गई थी। इसी विजयकी यादगारमें इसने अपना 'विक्रम संवत्' प्रचलित किया था। यह राजा स्वयं विद्वान् और कवि था तथा इसकी सभामें अनेक प्रसिद्ध विद्वान् और कवि रहा करते थे। इसकी राजधानी धारानगरी थी। परन्तु डाक्टर कीलहार्नकी कल्पनाके अनुसार पाश्चात्य विद्वान् और उनके मतानुयायी इन बातोंको स्वीकार करनेमें संकोच करते हैं। उनका कहना है कि विक्रमादित्य नामका कोई राजा ही नहीं हुआ है और न उसका चलाया हुआ कोई संवत् ही है। आजकल जो संवत् विक्रमके नामसे प्रसिद्ध है वह पहले 'मालव संवत्'के नामसे प्रचलित था और पहले पहल विक्रमका नाम इस संवत्के साथ धौलपुरसे मिले हुए

चाहमान चण्डमहासेनके वि० सं० ८९८ (ई० स० ८४१) के लेखमें जुड़ा मिला है। इसमें लिखा है:—

'वसु नव अष्टौ वर्षा गतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य'

इससे पूर्वके जितने लेख और ताम्रपत्र इस संवत्के मिले हैं उनमें इसका नाम 'विक्रम संवत्' के बजाय 'मालव संवत्' लिखा है। जैसे:—

'श्रीर्म्मालवगणाम्नाते प्रशस्तकृतसंज्ञिते
एकषष्ट्यधिके प्राप्ते समाशतचतुष्टये।'

अर्थात्—मालव संवत् ४६१ में।

'कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वेकाशीत्युत्तरेष्वस्यां मालवपूर्वायां'

अर्थात्—मालव संवत् ४८१ में।

'मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये त्रिनवत्यधिकेऽब्दानां'

अर्थात्—मालव संवत् ४९३ में।

'पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवतिसहितेषु'
'मालवगणस्थितिवशात्कालज्ञानाय लिखितेषु।'

अर्थात्—मालव संवत् ५८९।

'संवत्सरशतैर्यातैः सपंचनवत्यर्ग्गलैः सप्तभिर्म्मालवेशानां'

अर्थात्—मालव संवत् ७९५ बीतने पर।

इस प्रकार भिन्न भिन्न स्थानोंसे मिले हुए उपर्युक्त लेखोंके अवतरणोंसे पाठकोंको विदित हो गया होगा कि उस समय यह संवत् विक्रम संवत्के बजाय मालव संवत् कहलाता था।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द १९, पृ० ३५। (२) एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १२, पृ० ३२०। (३) यह लेख अजमेरके अजायबघरमें रक्खा है। (४-५) कॉर्पस इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरं, जिल्द ३, पृ० ८३, १५४। (६) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी जिल्द १९, पृ० ५९।

यद्यपि काठियावाड़से मिले हुए ७९४ के लेखमें संवत्के साथ विक्रमका नाम जुड़ा मिला है, तथापि उसमें लिखी हुई तिथि, वार, नक्षत्र आदिके ठीक न मिलनेसे डाकटर फ्लीट और कीलहार्न उसे जाली लेख सिद्ध करते हैं।

कर्कोटक (जयपुर)से कुछ सिक्के मिले हैं। उनपर '**मालवानां जय**' पढ़ा गया है। विद्वान् लोग उन सिक्कोंको ई० स० पूर्व २५० से इ० स० २५० के बीचके ख़याल करते हैं। उनसे अनुमान होता है कि शायद मालव जातिवालोंने ये सिक्के अपनी अवन्ति देशकी जीतकी यादगारमें चलाये होंगे और उसी समय उक्त संवत् भी प्रचलित किया होगा, तथा इन्हीं लोगोंके अधिकारमें आनेसे उक्त देश मालव-देश कहलाया होगा। समुद्रगुप्तके इलाहाबादवाले लेखमें अन्य जातियोंके साथ साथ मालव जातिके जीतनेका भी उल्लेख है।

इन्हीं सब बातोंके आधार पर डाकटर कीलहार्नने कल्पना की है कि ईसवी सन् ५४४ में मालवेके प्रतापी राजा यशोधर्माने करूर (मुलतानके पास) में हूण राजा मिहिरकुलको हराकर विक्रमादित्यकी उपाधि धारण की थी और उसी समयसे उसने प्रचलितमालव संवत्का नाम बदल कर 'विक्रम संवत्' कर दिया था और इसमें ५६ वर्ष जोड़ कर इसे ६०० वर्षका पुराना घोषित कर दिया था। परन्तु इस कल्पनाका कोई आधार नहीं दिखाई देता। क्यों कि एक तो यशोधर्माके 'विक्रमादित्य' उपाधि ग्रहण करनेका उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है। दूसरे, एक प्रतापी राजाका अपना निजका संवत् न चला कर दूसरेके चलाये संवत्का नाम बदलना और उसे ६००

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी जिल्द, १९ पृ० ३५।

वर्षका पुराना सिद्ध करनेकी चेष्टा करना भी सम्भव प्रतीत नहीं होता। तीसरे श्रीयुत सी० वी० वैद्यका कहना है कि डाक्टर हार्नले और कीलहार्नने जो लिखा है कि ई० स० ५४४ में करूरमें यशोधर्माने ही मिहिरकूलको हराया था, यह ठीक नहीं है; क्योंकि उन्होंने जो अल-बेरूनीके लेखोंका प्रमाण दिया है उसके ऊपर विचार करनेसे यही मालूम होता है कि उक्त करूरका युद्ध ५४४ ईसवीके बहुत पहले हुआ था।

डाक्टर फ्लीट राजा कनिष्कको विक्रम संवत्का चलानेवाला मानते हैं। परन्तु यह भी अनुमान ही है।

मि० स्मिथ और सर भाण्डारकरका अनुमान है कि मालव संवत्का नाम बदलनेवाला गुप्तवंशी राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय था; जिसकी उपाधि 'विक्रमादित्य' मिलती है। परन्तु यह अनुमान भी ठीक नहीं जँचता; क्योंकि एक तो जब गुप्तोंका खुदका चलाया हुआ संवत् मौजूद था तब फिर अपने पूर्वजोंके संवत्को छोड़ कर दूसरोंके चलाये संवत्को अपनानेकी उसे क्या आवश्यकता थी? दूसरे चन्द्रगुप्त द्वितीयके सौ वर्ष बादके ताम्रपत्रोंमें भी मालव संवत्का उल्लेख मिलता है।

हम आन्ध्रवंशके १७ वें राजा हालके वर्णनमें लिख चुके हैं कि उसके समयमें 'गाथासप्तशती' नामकी पुस्तक बनी थी। इसकी भाषा प्राचीन मराठी है। इसके ६५ वें श्लोकमें विक्रमादित्यकी दान-शीलताका उल्लेख इस प्रकार है:—

संवाहणसुहरसतोसिएण देन्तेण तुहकरे लक्खं।
चलणेण विक्कमाइच्च चरिअमणुसिक्खिअं तिस्सा॥

---

(१) गाथा ४६४, वेबरका संस्करण।

(उक्त गाथाका संस्कृतानुवाद ।)

संवाहन-सुखरसतोषितेन ददता तव करे लक्षम् ।
चरणेन विक्रमादित्यचरितमनुशिक्षितं तस्याः ॥

मि० विन्सैण्ट स्मिथ हालका समय ईसवी सन् ६८ (वि० सं० १२५) अनुमान करते हैं । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि उक्त समयके पहले ही विक्रमादित्य हो चुका था और उस समय भी कवियोंमें वह अपने दानके लिये प्रसिद्ध था ।

यद्यपि कल्हणकी राजतरंगिणीमें विक्रमादित्य उपाधिवाले दो राजाओंको आपसमें मिला दिया है, तथापि उसमेंके शकारि विक्रमादित्यसे इसी विक्रमादित्यका तात्पर्य है । इसको प्रतापादित्यका सम्बन्धी लिखा है ।

इसी प्रकार सातवाहन (हाल) के समयके महाकवि गुणाढ्य-रचित पैशाची भाषाके 'बृहत्कथा' नामक ग्रन्थसे भी उक्त समयसे पूर्व ही विक्रमादित्यका होना पाया जाता है । यद्यपि यह ग्रन्थ अब तक नहीं मिला है, तथापि सोमदेवभट्टरचित इसके संस्कृतानुवादरूप बृहत्कथा (लंबक ६, तरंग १) में उज्जैनके राजा विक्रमादित्यका वर्णन मिलता है ।

ईसवी सन्‌से करीब १५० वर्ष पूर्व उत्तर-पश्चिमसे शक लोग भारतमें आये थे । यहाँ पर उनकी दो शाखाएँ हो गईं । एक शाखाके लोगोंने मथुरामें अपना अधिकार कायम किया और वहाँ पर वे 'सत्रप' नामसे प्रसिद्ध हुए । उनके सिक्कोंसे ईसवी सन्‌से १०० वर्ष पूर्व तकका उनका पता चलता है । दूसरी शाखाके लोग काठियावाड़की तरफ़ गये और वहाँके 'क्षत्रप' कहलाये । उनका इतिहास हम इस

इतिहासके पहले भागमें 'पश्चिमी क्षत्रपोंके इतिहास' के नामसे दे चुके हैं। इन्हें चन्द्रगुप्त द्वितीयने पूरी तौरसे परास्त कर दिया था। परन्तु इन शकोंकी पहली शाखाका—जो कि मथुराकी तरफ गई थी—ईसाके पूर्वकी पहली शताब्दीके प्रारम्भके बाद क्या हुआ, इसका कुछ भी पता नहीं लगता। सम्भवतः इन्हें ईसवी सन्से ५८ वर्ष पूर्वके निकट इसी शकारि विक्रमादित्यने हराया होगा और इसी घटनाकी यादगारमें उसने अपना संवत् प्रचलित किया होगा।

पेशावरके पास तख़्तेबाही नामक स्थानसे पार्थियन राजा गुडूफर्स (गोण्डोफरस) के समयका एक लेख मिला है। यह राजा भारतके उत्तर-पश्चिमाञ्चलका स्वामी था। इस लेखमें १०३ का अङ्क है, पर संवत्का नाम नहीं है। डा० फ्लीट और मि० विन्सैन्ट स्मिथने इस १०३ को विक्रम संवत् सिद्ध किया है। ईसाकी तीसरी शताब्दीमें लिखी गई यहूदियोंकी एक पुस्तकमें राजा गुड्फर्सका नाम आया है। इससे भी प्रतीत होता है कि उस समय भी यह संवत् बहुत प्रसिद्ध हो चुका था और इसका प्रचार मालवेसे पेशावर तक हो गया था। अतः विक्रमादित्यका इस समयसे बहुत पहले होना स्वतः सिद्ध होता है। परन्तु अभी तक यह विषय विवादास्पद ही है।

विक्रम संवत्का प्रारम्भ कलियुग संवत्के ३०४४ वर्ष बाद हुआ था। इसमेंसे (५६ या) ५७ घटानेसे ईसवी सन् और १३५ घटानेसे शक संवत् आजाता है। उत्तरी हिन्दुस्तानवाले इसका प्रारम्भ चैत्र शुक्ला १ से और दक्षिणी हिन्दुस्तानवाले कार्तिक शुक्ला १ से मानते हैं। अतः उत्तरमें इस संवत्का प्रारम्भ दक्षिणसे सात महीने पहले ही हो जाता है।

इसके महीनोंमें भी विभिन्नता है। उत्तरी भारतमें महीनोंका प्रारम्भ कृष्णपक्षकी १ को और अन्त शुक्लपक्षकी १५ को होता है। परन्तु दक्षिणी भारतमें महीनोंका प्रारम्भ शुक्लपक्षकी १ को और अन्त कृष्णपक्षकी ३० को होता है। इसी लिये उत्तरमें विक्रम संवत्‌के महीने पूर्णिमान्त और दक्षिणमें अमान्त कहलाते हैं। इससे यद्यपि उत्तर और दक्षिणमें प्रत्येक मासका शुक्लपक्ष तो एक ही रहता है, तथापि उत्तरी भारतका कृष्णपक्ष दक्षिणी भारतके कृष्णपक्षसे एक मास पूर्व होता है, अर्थात् जब हमारा वैशाख कृष्ण होता है तो दक्षिणवालोंका चैत्र कृष्ण समझा जाता है, परन्तु उनका महीना शुक्लपक्षकी १ से प्रारम्भ होनेके कारण शुक्लपक्षमें दोनोंका वैशाख शुक्ल हो जाता है।

पहले काठियावाड़, गुजरात और राजपूतानेके कुछ भागमें इस संवत्‌का प्रारम्भ आषाढ़ शुक्ला १ से भी माना जाता था। जैसा कि निम्न लिखित प्रमाणोंसे सिद्ध होगा।

अडालिज (अहमदाबाद) से मिले लेखमें लिखा है:—

"**श्रीमन्नृपविक्रमसमयातीत आषाढादि संवत् १५५५ वर्षे शाके १४२० माघमासे पंचम्यां।**"

इसी प्रकार डूंगरपुरके डेसा गाँवके पाससे मिले हुए लेखमें लिखा है:—

"**श्रीमन्नृपविक्रमार्कराज्यसमयातीत संवत् १६ आषाढादि २३ वर्षे (१६२३) शाके १४८८।**"

अब भी जोधपुर आदिमें सेठ लोग इस संवत्‌का प्रारम्भ श्रावण कृष्णा १ से मानते हैं।

कालिदास ।

कथाओंमें प्रसिद्ध है कि उज्जयिनीके राजा विक्रमादित्यकी सभामें नौ बड़े प्रसिद्ध विद्वान् रहते थे और वे उसकी सभाके 'नवरत्न' कहलाते थेः—

धन्वन्तरिः क्षपणकामरसिंहशंकु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेस्सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

अर्थात्—राजा विक्रमादित्यकी सभामें (१) धन्वतरि, (२) क्षपणक, (३) अमरसिंह, (४) शङ्कु, (५) वेताल भट्ट (६) घटखर्पर, (७) कालिदास, (८) वराहमिहिर और (९) वररुचि ये नौ विद्वद्रत्न रहते थे।

परन्तु इतिहाससे पता चलता है कि ये सब विद्वान् समकालिक न थे। उदाहरणार्थ वराहमिहिरको ही लीजिये। इन्होंने अपनी 'पञ्च-सिद्धान्तिका' नामक पुस्तकमें स्पष्ट लिखा है कि "यह पुस्तक मैंने शक संवत् ४२७ में समाप्त की।" इससे इनका वि० सं० ५६२ (ई० स० ५०५) में होना सिद्ध होता है। अस्तु, यहाँ पर हम केवल कालिदासके विषयमें विद्वानोंकी सम्मतियाँ उद्धृत करेंगे।

जैन विद्वान् पण्डिताचार्य योगिराट्ने अपनी बनाई हुई 'पार्श्वा-भ्युदय' की टीकाके अन्तमें लिखा है कि कालिदास नामक एक कविने 'मेघदूत' नामक काव्य बनाया और दूसरे कवियोंका अपमान करनेके लिये उसने अपने उस काव्यको दक्षिणके राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष

(१) शिलालेखोंके आधार पर इस अमोघवर्षका समय ईसवी सन् ८१४ से ८७७ (वि० सं० ८७२ से ९३४) तक माना गया है। 'प्रश्नोत्तर-रत्नमाला' इसीकी बनाई हुई है।

(प्रथम) की सभामें आकर सुनाया। यह बात विनयसेनको अच्छी न लगी, अतः उसकी प्रेरणासे जिनसेनाचार्यने कालिदासका परिहास करते हुए कहा कि "आपके काव्यमें प्राचीन काव्यकी चोरी करनेसे सुन्दरता आ गई है।" इस पर कालिदासने उक्त काव्य देखनेकी इच्छा प्रकट की। परन्तु जिनसेनने उत्तर दिया कि वह काव्य एक दूसरे नगरमें है। अतः उसके आनेमें ८ दिन लगेंगे। इन्हीं ८ दिनोंके अवकाशमें जिनसेनने 'मेघदूत' के श्लोकोंके एक एक दो दो पदोंको लेकर उक्त 'पार्श्वाभ्युदय' नामक काव्य बना डाला और समय पर सभामें ला सुनाया।

इससे सिद्ध होता है कि कालिदास वि० सं० ८७२ से ९३४ (ई० स० ८१४ से ८७७) के मध्य विद्यमान् थे। परन्तु यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती; क्योंकि एक तो 'पार्श्वाभ्युदय' के उक्त-टीकाकार योगिराट् विजयनगरनरेश हरिहरके समकालीन—अर्थात् जिनसेनसे करीब ५०० वर्ष बाद हुए थे। अतः उनका लेख प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। दूसरे सातवीं शताब्दीके बाणभट्टरचित हर्षचरितमें निम्नलिखित श्लोक दिया है:—

---

(१) विनयसेन और जिनसेन दोनों ही वीरसेनके शिष्य थे। इनमेंसे जिनसेन अमोघवर्ष (प्रथम) के गुरु थे।

(२) श्रीमन्मूर्त्या मरकतमयस्तम्भलक्ष्मीं वहन्त्या।
योगैकाग्र्यस्तिमिततरया तस्थिवांसं निदध्यौ॥
पार्श्वं दैत्यो नभसि विहरन् बद्धवैरेण दग्धः।
कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः॥

(३) इसमें इरुगदण्डनाथरचित रत्नमालाका उल्लेख भी आया है।

(४) इसका समय ईसवी सन् १३९९ (वि० सं० १४५६) के करीब था.

' निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥ १७ ॥

इससे सिद्ध होता है कि कालिदास अवश्य ही बाणभट्टसे पहले हो चुके थे, तब उनका अमोघवर्ष (प्रथम) के समय होना अस म्भव ही है।

सर विलियम जोन्स और डाक्टर पीटरसन इनको ईसवी सन्से ५७ वर्ष पूर्वके विक्रम संवत्के प्रवर्तक उज्जयिनीके राजा विक्रमादित्यका समकालीन अनुमान करते हैं। पण्डित नन्दर्गीकरने अश्वघोष रचित ' बुद्धचरित ' नामक काव्यमें कालिदासरचित काव्योंके कितने ही श्लोकपाद ज्योंके त्यों दिखला कर उक्त पाश्चात्य विद्वानोंके मतकी पुष्टि की है।

आज कलके बहुतसे विद्वान् इस कवि (कालिदास) का गुप्त नरेशोंके समय होना सिद्ध करते हैं। उनके कथनोंका सारांश आगे-- दिया जाता है:--

रघुवंशमें निम्नलिखित श्लोकपाद हैं:--

' तस्मै सभ्याः सभार्य्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः ' १।५५
' अन्वास्य गोप्ता गृहणीसहायः ' २।२४
' इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयं ।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः ।४।२०।'
' स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया । ४।२६ ' ।
' ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी
कुमारकल्पं सुषुवे कुमारं । ५।३६ । '
' मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन । ६ । ४ । '

---

(१) अश्वघोष ईसवी सन्की पहली शताब्दीमें हुए थे ।

अतः जिस प्रकार मुद्राराक्षस नामक नाटकके—

'क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसम्पूर्णमण्डलमिदानीं।
अभिभवितुमिच्छतिबलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोगः।'

इस श्लोकमें व्यञ्जनावृत्तिसे चन्द्रगुप्तका उल्लेख किया गया है, उसी प्रकार रघुवंशके उपर्युक्त श्लोकोंमें 'गुप्त' और 'कुमार' शब्दोंके आनेसे प्रकट होता है कि कालिदास गुप्तोंका समकालीन था और उसने अपने काव्यमें व्यञ्जनावृत्तिसे उनका उल्लेख किया है।

इसी आधार पर कुछ विद्वान् इसे चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) का और कुमारगुप्तका तथा कुछ इसे स्कन्दगुप्तका समकालीन मानते हैं।

आगे इसी विषयकी और भी कुछ उक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं:—

कालिदासरचित मालविकाग्निमित्र नामक नाटकमें शुङ्गवंशी अग्निमित्रका वर्णन है। यह (अग्निमित्र) इस (शुङ्ग) वंशके संस्थापक पुष्यमित्रका पुत्र था; जिसने कि ईसवीसन्से १७९ (वि० सं० से १२२) वर्ष पूर्वके करीब शुङ्गवंशकी स्थापना की थी। अतः कालिदास अवश्य ही इसके बाद हुआ होगा।

चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी दूसरेके समयके ई० स० ६३४ (वि० सं० ६९१) के एक शिलालेखमें कालिदासका नाम आया है। अतः यह कवि उक्त समयसे पहले ही हुआ होगा।

कालिदासने इन्दुमतीके स्वयंवरमें सबसे पहले मगधनरेशका वर्णन किया है। उसमें उसे 'भारतचक्रवर्ती' लिखा है। सातवीं

(१) मनोरंजनघोषके आधार पर (२) रघुवंशमें ऐसा कोई पद नहीं मिलता है।

शताब्दीके पहले मगधमें दो ही प्रतापी राजा हुए थे। एक पुष्यमित्र और दूसरा चन्द्रगुप्त (द्वितीय)। परन्तु रघुवंशके चौथे सर्गमें दिग्विजयके वर्णनमें सिन्धु नदीके तट पर रघुद्वारा हूण लोगोंका हराया जाना लिखा है। ये लोग पहले पहल गुप्तोंके समय ही आये थे।

कालिदासने उज्जयिनीका जैसा वर्णन किया है वैसा विना उक्त स्थानको देखे कोई नहीं कर सकता। उदयगिरिके लेखसे चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का वहाँ (उज्जैन) जाना सिद्ध होता है। अतः सम्भवतः उसीके साथ कालिदास भी वहाँ पर गया होगा।

मेघदूतमें दिङ्नाग नामक बौद्ध नैयायिकका उल्लेख है। हुएन्त्सांग आदिके भ्रमण-वृत्तान्तोंसे पता चलता है कि मनोरथका शिष्य वसुबन्धु था और उस (वसुबन्धु) का शिष्य दिङ्नाग था। इसने पुष्पपुरमें शिष्यत्व ग्रहण किया था। मनोरथ कुमारगुप्तके समय था। वसुबन्धु और दिङ्नाग स्कन्दगुप्तके समय विद्यमान थे

हुएन्त्सांगने लिखा है कि मगधके कुमारगुप्तकी सभामें अन्यायपूर्वक परास्त किये जानेके कारण मनोरथने आत्महत्या कर ली। इस पराजयमें कालिदास भी शरीक थे। इसीसे अपने दादागुरुका बदला लेनेको दिङ्नागने कालिदासके काव्योंकी कड़ी समालोचना की थी और इसीसे क्रुद्ध होकर कालिदासने भी उस (दिङ्नाग) का मेघदूतमें इस प्रकार व्यङ्गसे उल्लेख किया है।

कालिदासने अपने काव्योंमें ' राशिचक्र ' का उल्लेख किया है तथा ' जामित्र ' और ' होरा ' आदि कुछ ज्योतिषके पारिभाषिक शब्दोंका भी प्रयोग किया है। इससे भी कालिदासका गुप्तोंके समय

---

(२) दिङ्नागानां पथिपरिहरन्स्थूलहस्तावलेपान्। १४

होना सिद्ध होता है; क्योंकि ईसवी सन् ३०० के करीब बने हुए सूर्य सिद्धान्तमें 'राशिचक्र' का उल्लेख नहीं है, किन्तु आर्यभट्टके ग्रन्थमें है। यह आर्यभट्ट ई० स० ४७८ (वि० सं० ५३५) में पाटलिपुत्रमें हुआ था।

राशिचक्रके विभागोंका—यथा 'होरा,' 'द्रेक्कोण' (द्रेष्काण) आदिका उल्लेख पहले पहल ग्रीक ज्योतिषी 'फर्मीकस मीटरनस' (Fermicus Meternus) के ग्रन्थमें मिलता है। इसका समय ई० स० ३३६ से ३५४ (वि० सं० ३९३ से ४११ तक था। इन बातोंपर विचार करनेसे कालिदासका ई० स० ३३६ (वि० सं० ३९३) के बाद होना ही सिद्ध होता है।

अब आगे उन विद्वानोंकी उक्तियाँ दी जाती हैं, जो कालिदासको विक्रम संवत्के प्रवर्तक विक्रमादित्यका समकालीन मानते हैं:—

श्रीयुत सी० वी० वैद्यका कथन है कि रघुवंशमें इन्दुमतीके स्वयंवरमें एकत्रित हुए राजाओंमें दक्षिणके शासक पाण्डयोंका और उनकी राजधानी उरगपुर (उराइयूर—कावेरीके तट पर) का वर्णन है, तथा रघुकी दिग्विजयके वर्णनमें चोलों और पह्लवोंका उल्लेख नहीं है।

परन्तु इतिहाससे सिद्ध है कि चोलनरेश करिकालने ईसवी सन्की पहली शताब्दीमें पाण्डयोंको परास्त कर दिया था और इसके बाद तीसरी शताब्दीमें एकबार फिर पाण्डयोंने प्रबलता प्राप्त कर अपनी राजधानी मदुरा (मडयूरा) में कायम की थी। इसके बाद

(१) जर्नल, भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिटयूट, पूना, जिल्द, २, भाग १। (२) रघुवंश, सर्ग ६, श्लोक ५९, ६०, (३) गदवलसे मिले चालुक्य राजा विक्रमादित्यके ताम्रपत्रोंसे उरगपुरका कावेरीके तटपर होना सिद्ध होता है। मल्लिनाथने भ्रमसे उरगपुरको नागपुर लिख दिया है।

ईसवी सन्‌की पाँचवीं या छठी शताब्दीमें पल्लव-नरेशों द्वारा पाण्ड्योंका फिर पतन हुआ। अतः कालिंदासका ईसवी सन्‌की पहली शताब्दीके पूर्व होना ही सिद्ध होता है। क्यों कि एक तो ई० स० की पहली शताब्दीमें पतन होनेके बाद दुबारा जब पाण्ड्योंने अपना प्रभुत्व कायम किया, उस समय उनकी राजधानी उरगपुर न होकर मदुरा थी। परन्तु कालिदासने अपने रघुवंशमें उनकी पहली राजधानी (उरगपुर) का उल्लेख किया है। यदि कालिदास गुप्तोंके समकालीन होते तो अपने काव्योंमें (उनकी राजधानी) मदुराका उल्लेख करते। दूसरे रघुके दिग्विजयमें चोलों और पल्लवोंका उल्लेख न करनेसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है कि वे ईसाकी पहली शताब्दीके पूर्व ही हुए थे। क्यों कि यदि वे गुप्तोंके समकालीन होते तो इनका उल्लेख भी अवश्य ही करते।

तीसरे कालिदासके काव्यों और नाटकोंमें 'यवनी' शब्दका प्रयोग अनेक स्थलों पर आया है। परन्तु इतिहास बतलाता है कि यद्यपि अशोकके समयसे भारतसे यवन लोगोंका खासा सम्बन्ध हो गया था, तथापि ईसाकी पाँचवी शताब्दीमें वह टूट गया था।

एक शंका यह भी होती है कि यदि कालिदास अपने समकालीन प्रतापी राजा गुप्तोंका उल्लेख अपने काव्योंमें करना चाहते थे तो उन्हें रोकनेवाला कौन था। फिर इस प्रकार घुमा फिराकर गुप्त राजाओंका उल्लेख करनेकी उन्हें क्या आवश्यकता पड़ी थी।

इन बातोंसे सिद्ध होता है कि कालिदास ईसवी सन्‌से ५७ वर्ष

---

(१) रघुवंश, सर्ग ४।

पूर्वके प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्यके समकालीन थे। परन्तु अभी इस विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

कालिदासके जन्मस्थानके विषयमें भी बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान् उन्हें काश्मीरका, कुछ मालवेका और कुछ नवद्वीपका रहनेवाला अनुमान करते हैं।

इनके श्रव्य काव्योंमें रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, ऋतुसंहार और दृश्य काव्योंमें शकुन्तला, विक्रमोर्वशी तथा मालविकाग्निमित्र प्रसिद्ध हैं।

नलोदय, द्वात्रिंशत्पुत्तलिका, पुष्पबाणविलास, शृङ्गारतिलक, ज्योतिर्विदाभरण आदि भी इन्हींके रचे कहे जाते हैं।

सीलोनकी कथाओंमें प्रसिद्धि है कि वहाँके प्रसिद्ध राजा कुमारदास (कुमार धातुसेन) ने कालिदासको अपने यहाँ बुलाया था और वहाँ जाने पर कालिदासके और कुमारदासके आपसमें घनिष्ट मैत्री हो गई थी। कुछ समय बाद वहीं पर कालिदासकी मृत्यु हुई। स्नेहकी अधिकताके कारण उक्त राजा (कुमारदास) ने भी अपने तईं इस कवि (कालिदास) की चितामें डाल दिया। 'पराक्रमबाहुचरित'से इस बातकी पुष्टि होती है। 'महावंश'के अनुसार कुमारदासकी मृत्यु ई० स० ५२४ (वि० सं० ५८१) में हुई थी। नहीं कह सकते कि यह कौनसा कालिदास था।
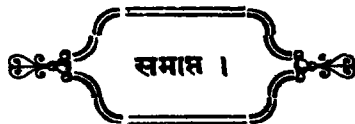
(१) यह ग्रन्थ ५०० वर्षका पुराना है।

भारतीय लिपि और उसकी प्राचीनता।

यदि हम इस हिममुकुटालंकृत भारत-महीको सभ्यता और विज्ञानकी आदि-जननी कहें तो अत्युक्ति न होगी। इस आर्यभूमिमें ऐसे ऐसे महर्षि और वैज्ञानिक हुए थे; जिनके मस्तिष्क द्वारा किये गये अविष्कारोंके लिये समस्त सभ्य संसार आजतक उनका ऋणी बना हुआ है। आप वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृति, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, व्याकरण, कोष, साहित्य, ज्योतिष, गणित, वैद्यक आदि किसी भी विषयको लीजिये, आपको प्राचीनतम कालके भारत नर-रत्नोंके मस्तिष्ककी वैज्ञानिक कल्पनाओंका महत्त्व मालूम हो जायगा। विशेष दूर न जाकर यदि आप भारतीयों द्वारा आविष्कृत इस देशकी लिपि पर ही विचार करें, तो भी आप उनकी बुद्धिकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। ऐसी सरल और सुबोध दूसरी लिपि आजतक आविष्कृत नहीं हुई जो हमारी भारतीय लिपिके साथ बराबरीका दावा कर सके। इस लिपिमें अन्य गुणोंके अलावा, प्रत्येक अक्षरका नाम और उच्चारण एकसा होना ही एक ऐसा गुण है कि उसके लिये इसके रचयिताओंकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। उदाहरणार्थ किसी एक अक्षरको ले लीजिये। भारतीय लिपिमें आप यदि 'ब' लिखेंगे तो उसे 'ब' ही पढ़ेंगे। परन्तु अन्य लिपियोंमें लिखा और ही जायगा और पढ़ा कुछ और ही जायगा। सिमेटिकमें आप 'बेथ' अँगरेजीमें 'बी' और फारसीमें 'बे' लिखेंगे; किन्तु पढ़ते समय इन भिन्न भिन्न नामवाले अक्षरोंका उच्चारण 'ब' के समान ही करना पड़ेगा। इसी प्रकारके और भी अनेक उदाहरण आप स्वयं समझ सकते हैं।

परन्तु राजा शिवप्रसाद आदि देशी और बर्नेल, मैक्समूलर आदि विदेशी विद्वान् उक्त भारतीय लिपिको भारतीय मस्तिष्कका आविष्कार नहीं मानते। उनका अनुमान है कि आर्योंने यह लेखनकला ईसवी सन्से ४०० वर्ष पूर्व फिनीशिया (सीरिया-तुर्कराज्यमें) के निवासियोंसे सीखा थी और उन्हींके अक्षरोंकी छायासे यहाँकी (ब्राह्मी) लिपि बनी थी।

डाक्टर बूलर भारतमें लेखनकलाके प्रचारका समय ईसवी सन्से ५०० वर्षके पूर्व अनुमान करते हैं और भारतकी लिपिको सिमेटिक (पश्चिमी एशिया और आफ्रिकाके) अक्षरोंसे बनी हुई मानते हैं। उनके मतानुसार इन अक्षरोंका प्रचार भारतमें ईसवी सन्से ८०० से १००० वर्ष पूर्व हुआ था।

परन्तु उक्त मतोंके विरुद्ध अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। पाठकोंके विचारार्थ आगे हम 'प्राचीन लिपिमाला' आदि ग्रन्थोंसे कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं। इनसे पाठक स्वयं ही इस विषयका निर्णय कर लेंगे।

लिखित पुस्तकें। कुगिअर (मध्यएशियामें यारकंदसे ६० मील दक्षिण) से ४ संस्कृत पुस्तकें कागज पर लिखी हुई मिली हैं। ये ईसवी सन्की पाँचवीं शताब्दीकी लिखी हुई[1] हैं। इसी तरह खडलिक (खेतान) से भोजपत्र पर लिखी हुई 'संयुक्तागम' नामक बौद्धसूत्रकी एक पुस्तक मिली है जिसकी भाषा संस्कृत और लिपि ईसवी सन्की चौथी शताब्दीकी है। वहींसे ताड़पत्र पर लिखे हुए एक नाटकका भी कुछ अंश मिला है। इसके लिखे जानेका समय ईसाकी दूसरी शताब्दीके आसपास समझा जाता[2] है।

लेख। ताड़पत्र, भोजपत्र, आदि पर लिखे हुए ग्रन्थ बहुत कालतक नहीं ठहर सकते। इसीसे प्राचीन कालसे ही भारतमें लेखोंको स्थायी बनानेके लिये पत्थरों और ताम्रपत्रों आदि पर खुदवानेकी रूढ़ी चली आती है। इन प्राचीन लेखोंमें सबसे पुराने अशोकके लेख हैं। ये पर्वतोंकी चट्टानों और पत्थरके स्तम्भोंपर खुदे हुए हैं और भारतके भिन्न भिन्न प्रदेशोंसे करीब ३० के मिल चुके हैं। इनका समय ई०स० से पूर्वकी तीसरी शताब्दी निश्चित किया गया है।

दो लेख इनसे भी पूर्वके मिले हैं। एक 'बडली' (अजमेर) से और दूसरा 'पिप्रावा' (नेपाल) से। पहले लेखमें '**वीराय भगवते चतुरशीति मिझमिका**' लिखा है। इससे प्रकट होता है कि यह लेख महावीरके निर्वाणके ८४ वें वर्ष लिखा गया था। अतः यह ई० स० से (५२७—८४) ४४३ वर्ष पूर्वका है। दूसरा लेख उस पात्र पर खुदा है, जिसमें बुद्धके निर्वाणके समय शाक्य लोगोंने उनकी अस्थियाँ रक्खी थीं। इस लिये इसका समय ई० स० से करीब ४८७ वर्ष पूर्व होना चाहिये[3]। इसमें '...**सलिलनिधने**

(१) जरनल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, जिल्द ६२, पृ० ८।

(२) ह्वीनेरे संस्कृत टेक्स्ट, भाग १।

(३) जरनल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१८९८), पृ० ३८९।

कुधस्स भगवते...' लिखा है। आजकल शिशुनाग-वंशियोंके समयके लेखों-पर वादविवाद हो रहा है। इनका वर्णन इसी इतिहासमें यथास्थान किया गया है। यदि जायसवाल महाशयका अनुमान ठीक हो तो ये लेख भी उसी समयके आसपासके मानने होंगे।

बौद्ध ग्रन्थ। सुत्तंत, विनय, जातक, महावग्ग, ललितविस्तर, आदि बौद्ध ग्रन्थोंमें अनेक स्थलोंपर लेखा (लिखना), गणना (पहाड़े), और रूप (हिसाब) आदिका वर्णन मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि ईसवी सन्से पूर्वकी छठी शताब्दीके आसपास भी यहाँपर लिखनेका प्रचार था।

व्याकरण—पाणिनिके व्याकरणमें निम्नलिखित सूत्रोंके होनेसे भी निश्चित है कि ईसवीसन्से पूर्वकी सातवीं शताब्दीके भी पहले भारतमें लिखनेका प्रचार हो चुका था:—' **दिवाविभानिशा......लिपिलिबि......**' (अ० ३, पा० २, सू० २०) इस सूत्रमें लिपि और लिबि शब्द दिये हैं; जिनका अर्थ लिखना है और इन्हींसे ' लिपिकरः ' और ' लिबिकरः ' (अर्थात् लिख-नेवाला) शब्द बनते हैं। ' **इन्द्रवरुणभव......यवयवन......** ' (अ० ४, पा० १, सू० ४९) इस सूत्रसे और इस परके ' **यवनाल्लिप्याम्** ' (वा० २४७४) वार्तिकसे 'यवनानी' शब्द बनता है, जिसका अर्थ म्लेच्छों-की लिखावट है। (इससे उस समय भी म्लेच्छलिपिसे भारतीय लिबिका अलग होना साफ जाहिर होता है।) '**स्वरितेनाधिकारः**' (अ० १, पा० ३, सू० ११)अर्थात् स्वरित चिह्न लगाकर अधिकार नियुक्त किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि एक ही बातको बारबार न लिखना पड़े, इसलिये व्याकरणमें पाणि-निने कुछ सूत्रोंको शीर्षक (हैडिंग) की तरह लिख कर नियम कर दिया है कि अमुक स्थानसे अमुक स्थानतक यह सिलसिला समझना चाहिये। इसको अधिकार कहते हैं और यह अधिकार स्वरित चिह्नसे बतलाया गया है। पाठक इस स्वरितके चिह्नको वेदोक्त उदात्त, अनुदात्त और स्वरित चिह्नोंमेंका न समझें। क्योंकि वे तो उच्चारणके चिह्न हैं और यह अक्षरपर लगानेका चिह्न है। उक्त सूत्रपर काशिकाकारने साफ लिख दिया है कि "**स्वरितो नाम स्वरविशेषो वर्णधर्मो न स्वरधर्मः**।" अर्थात् यह स्वरित नामका

---

(१) मि० स्मिथ इसका रचनाकाल ईसवी सन् पूर्वकी सातवीं शताब्दी अनुमान करते हैं।

चिह्न लिखित वर्णका एक धर्म (निशान) है, उच्चारणका नहीं । 'कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणि......' (अ० ६, पा० ३, सू० ११५) इस सूत्रसे अष्टकर्णः, पञ्चकर्णः आदि शब्द सिद्ध होते हैं, जिनका अर्थ कानपर ८ लिखा हुआ और कानपर ५ लिखा हुआ है । इस सूत्रपर काशिकाकारने स्पष्ट लिखा है कि प्राचीनकालमें लोग निशानके लिये पशुओंके कानोंपर अङ्कों आदिके चिह्न बना दिया करते थे ।

पाणिनिके व्याकरणमें अन्य अनेक प्राचीन वैयाकरणोंके मत दिये हुए हैं । इससे प्रकट होता है कि उनके समयसे भी पूर्व भारतमें लिखनेका प्रचार हो चुका था । क्योंकि बिना लेखनकलाके प्रचार हुए सूत्रोंके रूपमें इस प्रकारके बड़े बड़े व्याकरणोंका बनाना और प्राचीन वैयाकरणोंका मत उद्धृत करना असम्भवसा ही प्रतीत होता है । इतनेपर भी यदि मैक्समूलर साहबको पाणिनि व्याकरणमें लेखनप्रणालीके अस्तित्वका भान न हो तो पाठक स्वयं ही विचार कर लें कि यह दोष किसका है ? (मैक्समूलर पाणिनि व्याकरणको ईसवी सन्से पूर्वकी चौथी शताब्दीका बना हुआ मानते हैं ।)

ब्राह्मणग्रंथ । महाभारत, स्मृति, धर्मशास्त्र, कामसूत्र आदि ग्रन्थोंमें भी लेखनकलाका वर्णन आता है । छान्दोग्य उपनिषद्में ' अग्निरीकारः (१), आदित्य ऊकारो निहव एकारः (२) (अ० १, खं० १३) और ' हिंकार इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समं (१) आदिरिति द्व्यक्षरं प्रतिहार इति चतुरक्षरं......(२) (अ० २, खण्ड १०) ' आदि लिखा है । इनमें ईकार, ऊकार, एकारका और अक्षर शब्दका वर्णन आया है ।

ऐतरेय आरण्यकमें अक्षरोंकी सन्धिका वर्णन मिलता है:—

' पूर्वमेवाक्षरं पूर्वरूपमुत्तरमुत्तररूपं योऽवकाशः पूर्वरूपोत्तररूपे अन्तरेण येन सन्धिं विवर्तयति येन स्वरास्वरं विजानाति येन मात्रामात्रां विभजते......संधि विज्ञापनी साम......(३-१-५)

पाठक समझ सकते हैं कि बिना अक्षरोंके लिखे उक्त प्रकारसे सन्धि नहीं हो सकती ।

शतपथ ब्राह्मणके अग्निचयन प्रकरणमें वेदोंके अक्षरोंका हिसाब लिखा है कि 'प्रजापतिने ऋग्वेदके अक्षरोंसे १२०००, यजुर्वेदके अक्षरोंसे ८००० और सामवेदके अक्षरोंसे ४००० बृहती (३६ अक्षरोंका) छन्द बनाये । इससे

सिद्ध होता है कि ऋग्वेदमें (१२०००×३६) ४३२००० अक्षर हैं तथा यजुर्वेद और सामवेदके मिलाकर भी (८०००×३६+४०००×३६=४३२०००) इतने ही अक्षर होते हैं।

यदि ऋग्वेदके अक्षरोंसे पंक्ति छन्द (४० अक्षरोंका) बनाये जायँ तो (४३२०००÷४०) १०८०० होंगे। तथा यजुर्वेद और सामवेदके अक्षरोंको मिलाकर भी इतने ही पंक्तिछन्द बनेंगे। (क्योंकि यह ऊपर ही प्रकट हो चुका है कि यजुर्वेद और सामवेद दोनोंके अक्षर जोड़नेसे ऋग्वेदके अक्षरोंके बराबर होते हैं।)

इसी प्रकार उसमें वर्ष भरके मुहूर्तोंका और रातदिनके प्राणोंका हिसाब लगाया गया है। एक प्राण $\frac{1}{10}$ सेकिंडके बराबर होता है।

पाठक, क्या इस बीसवीं शताब्दीमें भी कोई ऐसा विद्वान् निकल सकता है, जो वेदोंके समान इतनी बड़ी बड़ी विना लिखी पुस्तकोंके अक्षर गिन सके और बिना लिखे ही इतने लंबे चौड़े हिसाब लगा सके ? इन बातोंसे भी उस समय लेखनकलाका पूर्ण उन्नत अवस्थामें होना सिद्ध होता है।

वेद। ऋग्वेदमें एक जगह ' **सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः** ' (१०-६२-७) लिखा है। इससे ऐसी हजार गायोंके दानका पता चलता है, जिनके कानपर ८ का अंक लिखा था।[1]

यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहितामें पंक्तिछन्दका नाम मिलता है[2]। ' पंक्ति ' लकीरको कहते हैं और लकीर बिना लिखे नहीं होती।

शुक्ल यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिताके ' **ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे** (३०-२०) मंत्रमें गणकका वर्णन है और उसीमें १ से लेकर १०, ००, ००, ००, ००, ००० (परार्ध) तककी संख्या लिखी है।[3] इसी प्रकार तैत्तरीय संहितामें भी इस संख्याका वर्णन है।[4] सामवेदके पञ्चीसवें ब्राह्मणमें सबसे अल्प दक्षिणाका प्रमाण १२ कृष्णल सोना लिखा है। इससे

---

(१) रापसन साहब इसका रचनाकाल ईसवी सन्से १२०० (वि० सं० से ११४३) वर्ष पूर्व अनुमान करते हैं। परन्तु लोकमान्य तिलक इस घटनाका समय ईसवी सन्से ४००० वर्ष पूर्व सिद्ध करते हैं। (२) यजु० वा० सं० ११-८। (३) यजु० वा० सं० अ० १७, कं० २।
(४) तै० सं० का० ४, प्रपा ४, अनु० ११, ४।

बढ़ीका प्रमाण २४ कृष्णल (अर्थात् पहलीसे दुगना), इससे बढ़ीका ४८ कृष्णल (अर्थात दूसरीसे दुगना), इसी प्रकार क्रमशः द्विगुणित करते हुए ३,९३,२१६ कृष्णल तककी दक्षिणाका निर्देश किया है। क्या बिना लिखे इस प्रकारका गुणन करना संभव है ?

अथर्व वेदमें एक मंत्र है:—' अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम् ' (का० ७, अ० ४, सू० ५२, ऋ० ५) अर्थात्—मैंने जुएमें तेरा जीतका लिखा हुआ धन और दाव पर रक्खा हुआ धन जीत लिया है।

इन वेदोक्त बातोंसे भी प्रकट होता है कि भारतमें वैदिक समयसे ही लिखनेका प्रचार चल गया था।

हमारी अल्पबुद्धिमें तो लिखनेका प्रचार हुए विना वेदोंके अक्षरोंकी गणना करना, परार्ध तककी संख्याका प्रयोग करना, लाखों तककी संख्याका गुणन और विभाजन करना, इतने बड़े बड़े वेदोंपर भाष्य लिखना, सूत्ररूपसे व्याकरण बनाकर प्रचलित भाषाका संस्कार और नियमन करना, अनेक प्राचीन आचार्योंके मतमतान्तर उद्धृत करना, व्याकरणके सूत्रोंमें स्वरित चिह्न द्वारा अधिकारका नियम लगाना, आदि असम्भव ही प्रतीत होता है।

उपर्युक्त प्रमाणोंके अलावा और भी इस विषयके बहुतसे प्रमाण मिलते हैं, जिनमेंसे केवल दो यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:—

पहला एरिअनकी लिखी हुई 'इण्डिका' नामक पुस्तकमेंका यूनानी लेखक 'निआर्कस' का लेख है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय भी भारतके लोग रूईको कूटकर लिखनेके लिये कागज बनाते थे। यह 'निआर्कस' ई० स० से ३२७ वर्ष पूर्व भारतपर हमला करनेवाले सिकन्दरके सेनापतियोंमेंसे था।

दूसरा 'मैगेस्थनीज'का लेख है, जो अन्य लेखकोंने अपने ग्रन्थोंमें उद्धृत किया है। उसमें लिखा है कि " यहाँपर (भारतमें) दस दस स्टेडिया (१ स्टेडिआ=६०६ फीट, ९ इंच) के अन्तरपर पत्थर (माइल-स्टोन) लगे हैं; जिनसे मार्गकी दूरी आदिका पता लगता है। नवीन वर्षप्रवेशके दिन भावी फल सुनाया जाता है। जन्मपत्र बनानेके लिये बालकोंका जन्मसमय लिख लिया जाता है। झगड़ोंका निपटारा स्मृतियोंके अनुसार होता है।"

यह मैगेस्थनीज ईसवी सन्से ३०६ वर्ष पूर्व भारतमें आया था और मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्तके दरबारमें सीरियाके बादशाह 'सैल्यूकस' की तरफका राजदूत था।

इन बातोंको पढ़कर पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि जब उस समय भी भारतमें लिखनेका इतना प्रचार हो चुका था, तब इसका प्रारम्भ तो अवश्य ही बहुत पहले हुआ होगा। अतः भारतीयोंका विदेशियोंसे लिखना सीखना किसी तरह सिद्ध नहीं हो सकता।

अब हम अक्षरोंके विषयमें विचार करते हैं। अशोकके समय (ई० स० से पूर्वकी तीसरी शताब्दीमें) भारतमें दो लिपियाँ प्रचलित थीं—ब्राह्मी और खरोष्ठी। इन लिपियोंके नाम जैनोंके 'पन्नवणा सूत्र' में और 'समवायांग-सूत्र' में तथा बौद्धोंके 'ललितविस्तर' नामक ग्रन्थमें मिलते हैं। इन लिपियोंमेंसे पहली (ब्राह्मी) आज कलकी नागरी लिपिकी तरह बाईं ओरसे दाईं ओर, और दूसरी (खरोष्ठी) फारसीकी तरह दाईं ओरसे बाईं ओरको लिखी जाती थी। पूर्वोक्त ग्रन्थोंमें और भी अनेक लिपियोंके नाम दिये हैं, परन्तु हम जिस समयका वर्णन करते हैं उस समय भारतमें केवल उपर्युक्त दो लिपियाँ ही प्रचलित थीं। ब्राह्मीका प्रचार समग्र भारतमें था और खरोष्ठीका केवल उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेश (पंजाबके एक भाग) में। अतः प्रथम ब्राह्मीका ही वर्णन करना आवश्यक है, क्योंकि यही भारतकी प्रधान लिपि थी।

ईसवी सन् ६६८ में बने हुए चीनी 'फायुअन् चुलिन्' (बौद्ध विश्व-कोष) में लिखा है कि ब्रह्माने ब्राह्मीलिपि बनाई, जो बाईं ओरसे दाईं ओरको लिखी जाती है; 'कि अलुसेटो' (खरोष्ठ) ने खरोष्ठी बनाई, जो दाहिनी ओरसे बाईं ओरको लिखी जाती है, और 'त्संकी' ने चीनी लिपि बनाई, जो ऊपरसे नीचेको लिखी जाती है। ये लिपियाँ क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम हैं[1]।

जब कितने ही पाश्चात्य विद्वानोंको यह भ्रम हुआ कि भारतवासियोंने लिखना विदेशियोंसे सीखा है, तब उनको यह धुन सवार हुई कि अवश्य ही भारतीय लिपि भी विदेशियोंकी लिपिसे ही निकली होगी। इसी बातको आधार मान कर बूलर आदि अनेक विद्वानोंने ब्राह्मी लिपिका 'फिनीशियन' 'सिमेटिक' आदि लिपियोंसे निकलना सिद्ध करनेकी निरर्थक चेष्टा प्रारम्भ की, तथा आइजक टेलर, राइस डेविड्ज, आदि विद्वान् अपने इस मनोरथको पूर्ण रूपसे सिद्ध होता न देख अरबके आसपाससे किसी अन्य प्राचीन लिपिके

---

(१) इण्डियन एण्टिकेरी, जिल्द ३४, पृ० २१।

निकलनेकी राह ताकने लगे। उनका अनुमान है कि यह (ब्राह्मी) लिपि किसी ऐसी प्राचीन लिपिसे निकली है, जो ' सिमेटिक ' अक्षरोंकी भी जननी थी और जिसका अबतक पता नहीं चला है। परन्तु सम्भवतः वह समय एक दिन अवश्य आयगा, जब ' ओर्मज ' (ईरानमें) आदिके भग्नावशेषोंसे या ' युफ्रेटस ' (एशियाई तुर्किस्तानमें) नदीके आसपाससे वह लिपि प्रकट होगी। देखें, ईश्वर इन विद्वानोंकी यह इच्छा कब पूर्ण करता है !

दो लिपियोंके मिलान करनेकी मुख्य रीति यह है कि उन लिपियोंके समान उच्चारणवाले अक्षरोंके आकार और बनावट पर विचार किया जाय और यदि इनमें समानता प्रतीत हो तो समझा जाय कि ये लिपियाँ आपसमें एक दूसरीके साथ संबन्ध रखती हैं। इसीके अनुसार यदि अशोकके समयकी 'ब्राह्मी' लिपिका ' हिअरेटिक ' ' फिनीशियन ' आदि सिमेटिक लिपियोंसे मिलान किया जाय तो साफ प्रगट होगा कि इनमेंका कोई भी अक्षर आपसमें नहीं मिलता है।

दूसरी बात यह है कि ब्राह्मी लिपिमें जो अक्षर लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है। उदाहरणार्थ यदि कहीं ' क ' और ' ग ' लिखा होगा तो उसे 'क' और ' ग ' ही पढ़ेंगे। परन्तु अँगरेजीमें उन्हींको क्रमशः ' के ' और ' जी, ' फारसीमें ' काफ ' और ' गाफ, ' ' सिमेटिक ' लिपियोंमें ' काफ ' और ' गिमेल ' पढ़ना होगा।

तीसरी बात यह है कि ' सिमेटिक ' (फिनीशियन) के २२ अक्षरोंसे केवल १८ उच्चारण ही निकल सकते हैं। परन्तु भारतीय लिपिमें उच्चारणोंकी संख्या अधिक है। उदाहरणार्थ ख, घ, च, थ, ध , ष, आदि अक्षरोंके उच्चारण उक्त लिपिमें नहीं हैं।

चौथी ' हिअरेटिक ' ' फिनीशियन ' ' हिमिअरेटिक ' (सेबिअन) ' अरमइक ' आदि सिमेटिक लिपियोंमें इस (भारतीय) लिपिकी तरह न तो व्यंजनोंके साथ जोड़नेके लिये स्वरके चिह्न ही हैं और न ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदिका भेद ही। (इन सिमेटिक लिपियोंमें स्वर अँगरेजीके स्वरोंकी तरह व्यंजनके आगे लिखे जाते हैं।)

पाँचवीं बात यह है कि हमारी लिपिकी तरह अन्य लिपियोंमें कवर्ग, चवर्ग, आदिका वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं मिलता। यह क्रम हमारी ही लिपिके अक्षरोंमें है कि गलेसे बोले जानेवाले अक्षर अलग रक्खे गये हैं और तालुसे बोले जानेवाले अलग। इसी प्रकार प्रत्येक अक्षर अपने अपने वर्गमें स्थित हैं।

नागरी अक्षरों का क्रम विकाश और खरोष्ठी अक्षरों की वर्णमाला।

नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षरों से नागरी अक्षरों का क्रम विकाश	खरोष्ठी अक्षर
ङ	ङ	
च	च	
छ	छ	
ज	ज	
झ	झ	
ञ	ञ	
ट	ट	
ठ	ठ	
ड	ड	
ढ		
ण	ण	

नागरी अक्षरों का क्रम विकाश और खरोष्ठी अक्षरों की वर्णमाला

नागरी अक्षर	ब्राह्मी अक्षरों से नागरी अक्षरों का क्रमविकाश	खरोष्ठी अक्षर
य	य	
र	र	
ल	ल	
व	व	
श	श	
ष	ष	
स	स	
ह	ह	
क्ष	क्ष	
त्र	त्र	
ज्ञ	ज्ञ	

सिमेटिक अक्षरों का नकशा और उनके जोड़के खरोष्ठी और ब्राह्मी अक्षर।

सिमेटिक अक्षरों के नाम	नागरी अक्षर	फ़िनिशिअन अक्षर	खरोष्ठी अक्षर	ब्राह्मी अक्षर
अलेफ्	अ	X	7 7	H
बेथ्	ब	9 9	7 7	□
गिमेल्	ग	7	4 4	Λ
दालेथ्	द	◁ 4	5 5	D
हे	ह	ⱻ	2 2	ь
वाव्	व	4 Y	7	δ
ज़ाइन्	ज	I 2 Z	Y Y	E
हेथ्	ह	⊟ ⊟	2 2	ь
तेथ्	त	⊕	5 5	⅄
योध्	य	Z Z Z	Λ	⊥
काफ्	क	7 ⅄ Y	7	+

इन बातोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये अक्षर भारतीय मस्तिष्ककी ही रचना हैं। परन्तु विदेशी विद्वानोंने कई तरहकी खींच तान करके इनको सिमेटिक अक्षरोंसे बने हुए सिद्ध करनेकी निष्फल चेष्टा की है।

डाक्टर बूलरने 'भारतकी ब्राह्मी लिपिकी उत्पत्ति' नामक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने 'फिनीशियन' अक्षरोंके हाथ पैर बड़ी ही बुरी तरहसे मरोड़कर उनको ब्राह्मीके अक्षरोंसे मिलानेकी चेष्टा की है। परन्तु फिर भी पूरी सफलता नहीं हुई है।

उक्त पुस्तकमें एरनके एक सिक्केका हवाला देकर यह सिद्ध करनेकी भी चेष्टा की गई है कि ई० स० से ३५० वर्ष पूर्व ब्राह्मी लिपि दाईं और बाईं दोनों ओरसे लिखी जाती थी। यह एरनसे मिला हुआ ताँबेका सिक्का जनरल कनिंगहामकी 'कौइन्स ऑफ एन्शियण्ट इण्डिया' नामक पुस्तकमें छपा है। इसपर 'धमपालस' लिखा हुआ है[1]। यह लेख दाईं ओरसे बाईं ओरको पढ़ा जाता है। इसीके आधारपर ब्राह्मी लिपिकी, सिमेटिक लिपिके अनुसार, दाईं ओरसे लिखी जानेवाली कमीको दूर करनेकी चेष्टा की गई है। परन्तु यदि विचार किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि उक्त लेख सिक्केका साँचा बनानेवाले कारीगरकी गलतीसे उलटा खुद गया था। इस विषयके और भी अनेक प्रमाण मिलते हैं। आंध्रवंशके राजा 'शातकर्णी'के दो प्रकारके सिक्कोंपर 'शतकंणिस' (शातकर्णेः) उलटा लिखा हुआ है[2]। पार्थिअन् अब्दगससके एक सिक्के परके खरोष्ठीका एक अंश उलटा छप गया है[3]। महाक्षत्रप रंजुबुल (राजुबुल) के एक सिक्केपर मोनोग्राममेंका ग्रीक अक्षर 'E' उलटा छप गया है[4]। एक पुरानी मुद्रापर 'श्रीस्सपकुल' (श्रीसपंकुल) लिखा गया है। इसमें 'श्री' और 'प' ये दो अक्षर उलटे बने हैं[5]। पटनासे एक मुद्रा मिली है। इसपर

---

(१) कैटलॉग ऑफ कौइन्स इन एनशियण्ट इण्डिया, पृ० १०१, प्लेट ११, संख्या १८।

(२) कैटलॉग ऑफ दि कौइन्स ऑफ आन्ध्र एण्ड क्षत्रप डाइनेस्टी, पृ० ४, प्लेट १, संख्या ९ और ११।

(३) रापसनकी, इण्डियन कौइन्स, पृ० १५।

(४) गार्डनरकी, कौइन्स ऑफ ग्रीक एण्ड सीथिक किंग्स पृ० ६७, संख्या ५।

(५) जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१९०१), पृ० १०४, संख्या ९।

'अगपलश' (अंगपालस्य) लिखा है। इसमें भी 'अ' उलटा बना है। इसी प्रकार विक्रम संवत् १९४३ के बने हुए इन्दौरके सिक्केपर 'एक पाव आना इंदौर' उलटा छप गया है। इन बातोंसे पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि यह साँचा खोदनेवालेके दोषका परिणाम है। क्योंकि उसको साँचा उलटा खोदना पड़ता है; जिससे भूल हो जाना सम्भव है। इन बातोंको सोचकर क्या कोई भी समझदार उपर्युक्त वि० सं० १९४३ के इन्दौरके सिक्केको देखकर यह कह सकता है कि उस समय इन्दौरमें नागरी लिपि दाईं और बाईं दोनों ओरसे लिखी' जाती थी? अतः जब तक उक्त प्रकारका कोई लेख आदि न मिले तब तक इस बात (ब्राह्मीके दाईं ओरसे लिखे जाने) की सिद्धि नहीं हो सकती।

डाक्टर बूलरकी उक्त पुस्तकके प्रकाशित होनेपर 'बुधिस्ट इण्डिया'के लेखक डाक्टर 'राइस डेविड्ज'ने साफ ही लिखा था कि ब्राह्मी अक्षर सिमेटिक अक्षरोंसे नहीं बने हैं'।

इनसाइक्लोपीडिआ ब्रिटेनिका जि० ३३, पृ० ९०३में भी बूलरके मतका खण्डन किया गया है। उसमें लिखा है कि—"यद्यपि बूलरका कथन पाण्डित्यपूर्ण है तथापि अधिक विश्वसनीय नहीं है। इस लिपिकी उत्पत्तिका निश्चय करनेके पूर्व इसके इतिहासकी और भी अधिक खोज करना आवश्यक है। तथा आशा है कि ढूँढ़नेसे उक्त विषयके वाञ्छित प्रमाण अवश्य मिलेंगे।"

डाक्टर फ्लीट,' हुल्श,' आदि अनेक पाश्चात्य विद्वान् भी इसी मतसे सहमत हैं। इसके अलावा एडवर्ड थौमस, प्रोफेसर डौसन," जनरल' कनिंगहाम, प्रो० लासन्' आदि विद्वानोंने साफ ही लिख दिया है कि, "ब्राह्मी लिपि, भारतीय मस्तिष्कसे निकली हुई, स्वतन्त्र लिपि है और अपनी सरलताके कारण अपने निर्माणकर्त्ताओंकी बुद्धिमत्ताका ज्वलन्त प्रमाण देती है।"

---

(१) क० आ० स० रि; जिल्द १५, प्लेट ३, सं० २।

(२) प्राचीन लिपिमाला, पृ० २८। (३) बुधिस्ट इण्डिया, पृ० ११४। (४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द २६, पृ० ३३६। (५) बुधिस्ट इण्डियाके अनुवादकी भूमिका पृ० ३–४। (६) न्यू० कॉ०, ई० स० (१८८३), नंबर ३। (७) ज० रॉ० ए० सो० (१८८१), पृ० १०२। (८) कनिंग० का० ए० इ० जि० १ पृ० ५२। (९) इण्डिसचे आल्टरथुमस्कुण्डे, पृ० १००६।

अब तक सबसे पुराना लेख ईसवी सन्से करीब ४८७ वर्ष पूर्वका ही मिला है, अतः ब्राह्मीकी उत्पत्ति और क्रमविकाशके विषयमें विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता। श्याम शास्त्रीका अनुमान है कि देवताओंकी मूर्तियोंके प्रचलित होनेके पूर्व उन (देवताओं) की उपासना सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी और उन्हीं चिह्नोंने कालान्तरमें उक्त (ब्राह्मी) अक्षरोंका रूप धारण कर लिया होगा।

हम पहले लिख चुके हैं कि अशोकके समय (ईसवीसन् पूर्वकी तीसरी शताब्दीमें) भारतमें एक और भी लिपि प्रचलित थी। इसका नाम खरोष्ठी था। यह फारसीकी तरह दाईं ओरसे बाईं ओरको लिखी जाती थी। अशोकके शाहबाजगढ और मन्सोराकी चट्टानोंपरके लेख इसी लिपिमें हैं। इस लिपिके अक्षर और भी अनेक ग्रीक, शक, क्षत्रप आदि विदेशी तथा औदुम्बर आदि देशी राजाओंके सिक्कोंपर, बौद्ध स्तूपोंमें रक्खे हुए पात्रोंपर, मूर्तियोंपर और कुछ विदेशी राजाओंके छोटे छोटे ताम्रपत्रों और लेखों आदि पर खुदे मिलते हैं। इनके मिलनेके मुख्य स्थान गांधार और मथुरा हैं। विद्वानोंका अनुमान है कि यह खरोष्ठी लिपि (सिमेटिक लिपिसे उत्पन्न हुई) ईरानियोंकी 'अरमइक' लिपिकी कन्या है। ईसवी सन्की तीसरी शताब्दीके आसपास तक पंजाबकी तरफ इस लिपि (खरोष्ठी) का प्रचार था।

आगे हम सिमेटिक अक्षरोंका और ब्राह्मी अक्षरोंके क्रमविकाशसे नागरी अक्षरोंकी उत्पत्तिका नकशा तथा खरोष्ठी अक्षरोंके चिह्न अङ्कित करते हैं। साथ ही अंकोंके क्रमविकाशका भी नकशा देते हैं।

भारतीय इतिहासका इतिहास।

यह निस्सन्देह है कि इस भारतमें ही सबसे पहले सभ्यताका विकाश हुआ था और यहीं बड़े बड़े और अगणित ग्रन्थ लिखे गये थे । इस बातका अनुमान आजकल उपलब्ध वेद, उपनिषद्, दर्शन, रामायण, महाभारत, पुराण[1], धर्मशास्त्र, आदि ग्रन्थोंको देखकर और मुसलमान बादशाहों द्वारा नष्ट किये ग्रन्थोंका इतिहास पढ़कर किया जा सकता है।

ईसवी सन् ६४५ के करीब चीनीयात्री ' हुएन्त्सांग ' जब भारतसे चीनको लौटा तब भिन्न भिन्न प्रकारके ६५७ ग्रन्थ अपने साथ ले गया था। ये ग्रन्थ २० घोड़ों पर लादे गये थे। और ई० स० ६५५ में मध्य भारतका बौद्ध भिक्षु पुण्योपाय जब चीन गया, तब १५०० से अधिक ग्रन्थ अपने साथ ले गया था।

इन यात्रियोंके विषयमें एक बात और भी ध्यानमें रखनेकी है कि ये आजकलके यूरोप और अमेरिकाके यात्रियोंकी तरह धनाढ्य नहीं थे, जो हजारों रुपया खर्च कर उक्त ग्रन्थ एकत्रित करते। अतः ये ग्रन्थ उनको लोगोंकी दयालुता और दानशीलतासे ही प्राप्त हुए थे। इससे प्रकट होता है कि उस समय भी विद्याप्रचारमें सहायता करनेका बड़ा महत्त्व समझा जाता था।

अभी कुछ ही वर्ष पूर्व समाचारपत्रोंमें निकला था कि नेपाल राज्यकी तरफसे ७००० प्राचीन लिखित पुस्तकें लन्दन भेजी जानेवाली हैं। इससे भी हमारे ग्रंथकर्ताओंके परिश्रमका पता लगता है।

इतना सब होने पर भी आज तक भारतीय इतिहासका एक भी उत्तम ग्रन्थ नहीं मिला है। इससे अनुमान होता है कि इस विषय पर आर्योंने बहु-

---

(१) कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें इतिहासका नाम मिलता है और इतिहासके १ पुराण, २ इतिवृत्त, ३ आख्यायिका, ४ उदाहरण, ५ धर्मशास्त्र और ६ अर्थशास्त्र ये छः अंग बतलाये हैं। इससे ईसवी सन्से ४०० वर्ष पूर्व भी पुराणोंका होना सिद्ध होता है।

त ही कम ध्यान दिया था। इसके दो मुख्य कारण प्रतीत होते हैं। एक तो प्राचीन कालसे ही आर्य लोग प्रवृत्ति मार्गसे निवृत्ति मार्गको श्रेष्ठ समझते चले आये थे। इस लिये वे मनुष्योंकी सांसारिक कथाओंके लिखनेकी अपेक्षा धार्मिक कथाओंका लिखना अधिक पसन्द करते थे। इसके प्रमाणमें ईसाकी चौथी शताब्दीके चीनी यात्री फाहियानका उदाहरण ही पर्याप्त होगा। यह यात्री ईसाकी चौथी शताब्दीमें बौद्ध धर्मके तत्त्वोंको समझनेके लिये भारतमें आया था। इसने अपनी यात्राके वर्णनमें लिखी हुई पुस्तकमें उस समयके प्रसिद्ध राजा चन्द्रगुप्तका नाम तक भी नहीं लिखा है। दूसरा कारण आपसके लड़ाई झगड़े थे, जिनसे इतिहास लिखनेका सुभीता न था।

यद्यपि वैसे तो वायु, मत्स्य, विष्णु, ब्रह्माण्ड और भागवत आदि पुराणोंमें और रामायण महाभारत आदि ग्रन्थोंमें भी इतिहासकी थोड़ी बहुत सामग्री मिलती है और नवीन ग्रन्थोंमें, हर्षचरित (रचनाकाल ई० स० की सातवीं शताब्दीका पूर्वार्ध), गौडवहो (ई० स० की आठवीं शताब्दीका पूर्वार्ध), मुद्राराक्षस (ई० स० ४००=वि० सं० ४५७), नवसाहसाङ्कचरित (ई० स० १०००=वि० सं० १०५७), विक्रमाङ्कदेवचरित (ई० स० की ग्यारहवीं शताब्दीका अन्तिम समय), रामचरित (ई० स० की बारहवीं शताब्दीका प्रारंभ), द्व्याश्रय काव्य (ई० स० ११६०=वि० सं० १२१७), कुमारपालचरित हेमचन्द्रकृत (ई० स० ११६०=वि० सं० १२१७), पृथ्वीराजविजय (ई० स० ११९०=वि० सं० १२४७), कीर्तिकौमुदी (ई० स० १२२५=वि० सं० १२८२), सुकृतसंकीर्तन (ई० स० १२२८=वि० सं० १२८५), हम्मीरमदमर्दन (ई० स० १२२९=वि० सं० १२८६), प्रबन्धचिन्तामणि (ई० स० १३०४=वि० सं० १३६१), चतुर्विंशतिप्रबन्ध(ई० स० १३४०=वि० सं० १३९७), कुमारपालचरित जयसिंहसूरिकृत, (ई० स० १३६५=वि० सं० १४२२), कुमारपालचरित जिनमण्डनोपाध्याय कृत, (ई० स० १४३५=वि० सं० १४९२), कुमारपालचरित, चारित्रसुंदरगणिकृत, (ई० स० की १४ वीं शताब्दीके निकट), वस्तुपालचरित (ई० स० १४४० =वि० सं० १४९७), हम्मीर महाकाव्य (ई० स० की पन्द्रहवीं शताब्दीका प्रारम्भ, बल्लालचरित (ई० स० १५११=वि० सं० १५६८), मंडलीक काव्य (ई० स० की पन्द्रहवीं शताब्दीका अन्तिम भाग), अच्युतरायाभ्युदय काव्य (ई० स० की सोलहवीं शताब्दी), आदि अनेक संस्कृत और प्राकृतके गद्य

पद्य काव्य और नाटकादि हैं; जिनमें विशेष विशेष व्यक्तियोंका कुछ कुछ इतिहास मिलता है। तथापि इनमेंकी एक भी पुस्तक ऐतिहासिक ढंगसे नहीं लिखी गई है। अतः इनमें संवत् आदि नहीं मिलते हैं और अतिशयोक्तियोंकी भी भरमार है। आजतक जितनी पुस्तकें मिली हैं उनमें राजतरङ्गिणी ही एक ऐसी पुस्तक है, जिसको थोडा बहुत ऐतिहासिक ग्रन्थ होनेका सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। इसमें काश्मीर देशका इतिहास है। इसका प्रथमखण्ड अमात्य चम्पकके पुत्र कल्हणने ई० स० ११४८ (वि० सं० १२०५) में लिखा था। दूसरा जोनराजने ई० स० १४१२ (वि० सं० १४६९) में लिखा, तीसरा खण्ड ई० स० १४७७ (वि० सं० १५३४) में जोनराजके शिष्य श्रीवरपण्डितने लिखा और प्राज्यभट्टने चौथा खण्ड लिखकर अकबरके समय तकका वृत्तान्त पूर्ण कर दिया।

परन्तु इस पुस्तकके प्रथम खण्डमें कल्हणने काश्मीरके प्रथम राजा गोनन्दका महाभारत युद्ध (कलियुग संवत् ६५३=ई० स० से २४४८ वर्ष पूर्व= वि० सं० से २३९१ वर्ष पूर्व) के समय होना मान लिया है। वास्तवमें यह राजा इस समयसे बहुत पीछे हुआ था। इस लिये उस बीचके समयकी पूर्तिके वास्ते ग्रन्थकर्ताको अनेक राजाओंका राज्यसमय बहुत ही अधिक मानना पडा है। यहाँतक कि रणादित्य (तुंजीन तीसरे) का राज्यसमय ३०० वर्षका लिखा है। इसी प्रकार उक्त पुस्तकसे अशोकका समय उसके वास्तविक समयसे करीब १००० वर्ष पूर्व और हूणवंशी मिहिरकुलका समय करीब ११०० वर्ष पूर्व सिद्ध होता है।

अर्वाचीनकालके लिखे हुए कुछ भाषाके ग्रन्थ भी मिलते हैं। परन्तु ये भी उक्त दोषोंसे मुक्त नहीं हैं।

अतः बुद्धके पीछेके भारतीय इतिहासके ज्ञानके लिये उपर्युक्त साधनोंके सिवाय समय समय पर स्थापित किये प्राचीन स्तूपों, गुफाओं, मन्दिरों, जलाशयों, और दानपत्रों पर खुदे हुए लेखों और अनेक प्राचीन राजाओंके सिक्कों और मुद्राओंसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती थी। परन्तु लोगोंने इधर भी विशेष ध्यान देनेकी चेष्टा नहीं की; जिससे प्राचीन समयका लिपिज्ञान ई० स० की १४ वीं शताब्दीके पूर्व ही लुप्त हो गया और आजकलके बहुतसे सीधे साधे पुरुष इतिहासके साधनरूप लेखोंको धनके बीजक और ताम्रपत्रोंको सिद्ध मन्त्र समझकर पूजने लगे।

फारसी तवारीखोंसे ज्ञात होता है कि ई० स० १३५६ में देहलीके सुलतान फीरोजशाह तुगलकने अशोकके दो स्तम्भ बाहरसे देहलीमें मँगवाये थे और उन परके लेखोंका आशय जाननेकी इच्छा की थी। परन्तु उस समय एक भी विद्वान् ऐसा न मिला जो उक्त लेखोंको पढ़ देता। कहते हैं कि मुगल-सम्राट् अकबरको भी उक्त स्तम्भोंपरके लेखोंका आशय जाननेकी प्रबल इच्छा थी। परन्तु पढ़नेवालोंके अभावसे वह पूर्ण न हो सकी।

लोगोंके इतिहासकी तरफ ध्यान न देनेसे आजसे १५० वर्ष पूर्व इसकी दशा यहाँतक शोचनीय हो गई थी कि भारतविख्यात विक्रमादित्य, भोज आदि राजाओंके और कविकुलगुरु कालिदास आदि कवियोंके नाम केवल किस्से कहानियोंमें सुने जाते थे। उनका निश्चित समय और सच्चा इतिहास कोई भी नहीं जानता था। लोग प्रत्येक प्रसिद्ध कविको भोजकी सभाका रत्न कह दिया करते थे। स्वयं भोजप्रबन्धकार बल्लाल पण्डितने सिन्धुलका, अपने पुत्र भोजके केवल ५ वर्षके होनेके कारण अपने छोटे भाई मुञ्जको राज्याधिकारी नियत करना लिख दिया है। परन्तु वास्तवमें अपने बड़े भाई मुञ्जके निस्सन्तानावस्थामें मरनेके समय अपने पुत्र भोजके छोटे होनेके कारण ही सिन्धुलने राज्यकार्य अपने हाथमें लिया था। आगे फिर उस (भोजप्रबन्धकार) ने मुञ्जका भोजको मरवानेके लिये भेजना और भोजका वधकके हाथ 'मान्धाता स महीपतिः' श्लोक लिखकर भिजवाना बिलकुल बेसिर पैरकी बात लिख दी है[1]। आप स्वयं सोच सकते हैं कि जब खुद भोजप्रबन्धकारको ही अपने चरितनायकके विषयमें इतना ज्ञान था तब जनसाधारणको कितना होगा!

वि० सं० १८४० (ई० स० १७८३) तक तो इतिहासकी यही दशा रही; परन्तु १५ जनवरी सन् १७८४ के दिन सर विलियम जोन्सकी प्रेरणासे प्राचीनकालके इतिहास आदिकी खोजके लिये कलकत्तेमें 'एशियाटिक सोसाइटी' नामकी सभा स्थापित की गई।

वि० सं० १८४२ (ई० स० १७८५) में पहले पहल मि० 'चार्ल्स विलकन्सन' ने बदाल (दीनाजपुर) से मिला हुआ बंगालके राजा नारायणपालके समयका एक लेख पढ़ा और पण्डित राधाकान्त शर्माने फीरोजशाह तुगलक द्वारा मँगवाये हुए अशोकके स्तम्भपरके अजमेरके चौहान राजा अनिलदेव (आना)के पुत्र बीसलदेव (विग्रहराज चौथे) के लेख पढ़े। ये लेख विशेष पुराने न होनेके कारण थोड़े ही परिश्रमसे पढ़ लिये गये।

---

(१) भारतके प्राचीन राजवंश, प्रथमभाग, पृ० ९४-१२८।

इसके बाद वि० सं० १८४२ (ई० स० १७८५) से ४ वर्षतक लगातार परिश्रमकरके उपर्युक्त मि० चार्ल्स विल्कनसनने मौखरीवंशके राजा अनन्तवर्माके लेखोंको पढ़ा, जिससे गुप्त लिपिके करीब आधे अक्षर विदित हो गये। क्योंकि मौखरीवंशके समयके अक्षर गुप्तोंके समयके अक्षरोंसे मिलते हुए ही थे।

वि० सं० १८८५ (ई० स० १८२८) में मिस्टर बी० जी० बेबिंगटनने मामल्लपुरके लेखोंको पढ़कर और मिस्टर वाल्टर ईलियटने प्राचीन कनाड़ी अक्षरोंको पहिचानकर उनकी वर्णमालाएँ तैयार कीं। वि० सं० १८९१ (ई० स० १८३४) में कप्तान ट्रायरने और डाक्टर मिलने इलाहाबादके अशोकके स्तम्भपरके समुद्रगुप्तके लेखको पढ़ा। वि० सं० १८९२ (ई० स० १८३५) में डब्ल्यू० एच० वाथनने वल्लभीके दानपत्र पढ़े। वि० सं० १८९४ (ई० स० १८३७) में उपर्युक्त मिलने ही भिटारीसे मिला हुआ समुद्रगुप्तका लेख भी पढ़ डाला।

वि० सं० १८९४–९५ (ई० स० १८३७--३८) में जेम्स प्रिन्सेपने एरण, साँची, गिरनार, आदिके गुप्तोंके समयके लेख भी पढ़ डाले। अतः पूर्वोक्त ट्रायर मिल, जेम्स प्रिन्सैप और चार्ल्स विल्किन्सनके परिश्रमसे गुप्तोंके समयकी लिपिकी पूरी वर्णमाला तैयार हो गई और उस समयतकके लेखों आदिके पढ़नेका सुभीता हो गया।

इसी समयके आसपास मि० जेम्स प्रिन्सैप, पादरी जेम्स स्टिवन्स और प्रोफेसर लेसनके उद्योगसे अशोकके समयके ब्राह्मी अक्षरोंकी भी वर्णमाला तैयार हो गई और साथ ही यह भी निश्चय हो गया कि इन लेखोंकी भाषा पाली है।

अब रहे खरोष्ठी अक्षर। इनको बैक्ट्रियन और सीथियन सिक्कोंपरके ग्रीक अक्षरोंकी सहायतासे मेसर्स मेसन, प्रिन्सेप, नौरिस और कनिंगहाम आदि विद्वानोंने पढ़ डाला। इससे इस लिपिकी भी वर्णमाला तैयार हो गई।

इधर तो उपर्युक्त प्रकारसे प्राचीन लिपियोंके पढ़े जानेका उद्योग हो रहा था और उधर पूर्वोक्त बंगाल एशियाटिक सोसाइटीकी स्थापनाके कुछ वर्ष बाद-लन्दनमें 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' स्थापित हुई। इसकी एक शाखा बंबईमें और दूसरी सीलोनमें कायम की गई। कुछ ही समयमें जर्मनी, फ्रांस, इटली आदि यूरोपीय देशोंमें और अमेरिकामें ऐसी ही सभायें खोली गईं। इनके प्रकाशित किये मासिकपत्रोंमें पुरातत्त्वानुसन्धानसे लब्ध सामग्रीका प्रचार होने लगा। उक्त प्रकारके उद्योगको देखकर लार्ड कर्जनके समय भारत

गवर्नमेण्टने भी पुरातत्त्वानुसंधानके लिये 'आर्कियॉलाजिकल सर्वे' नामका महकमा बनाया। इन सबके सम्मिलित उद्योगसे भारतके भूतपूर्व शिशुनाग, मौर्य, शुंग, यूनानी, कण्व, आन्ध्र, शक, क्षत्रप, कुशन, गुप्त, पल्लव, हूण, परिव्राजक, यौधेय, लिच्छवि, वैश, मौखरी, वाकाटक, गुहिल, चन्देल, राठोड़, हैहय, चौहान, परमार, सोलंकी, पड़िहार, चावड़ा, कछवाहा, तंवर, यादव, मैत्रक, आभीर, गुर्जर, पाल, सेन, कदंब, नाग, निकुंप, गंग, शिलारी, वल्लभी, काकतीय, वाण, पांड्य, चोल, आदि अनेक राजवंशोंका थोड़ा बहुत इतिहास प्रकट हो चुका है *। परन्तु यह सब सामग्री विदेशी भाषाओंकी भिन्न भिन्न पुस्तकों और मासिकपत्रोंमें खण्ड खण्ड रूपसे छपी है। इससे जनसाधारण विशेष लाभ नहीं उठा सकते।

उपर्युक्त आधारोंके सिवाय हैरोडोटस, केसिअस, मैगेस्थनीज, एरियन, टालेमी, मार्कोपोलो, निकोलोडी काउंटी, फर्नाओनूनीज, आदि यूरोपियनोंकी पुस्तकोंमें, फाहियान, संगयुन्, हुएन्त्सांग, इत्सिंग, आदि चीनीयात्रियोंके ग्रन्थोंमें, दीपवंश, महावंश आदि सीलोनके ग्रन्थोंमें और सिल्सिला तुत्तवारीख, तहकीके हिन्द, चचनामा, तबकातेनासिरी, तारीख फरिश्ता, आदि फारसीकी तवारीखोंमें भी भारतके इतिहासका बहुत कुछ वर्णन मिलता है।

अतः भारतीय विद्वानोंका कर्तव्य है कि इस कठिनाईको दूर करनेके लिये इस प्रकार बिखरी हुई इतिहासकी सामग्रीके आधार पर अपने देशका सच्चा सच्चा इतिहास मातृभाषामें लिखकर प्रकाशित करें, जिससे सर्व साधारणको अपने प्राचीन गौरवका बोध हो और भारतीय नवयुवक स्कूलोंमें पढ़ी हुई पुस्तकोंके आधारपर अपने पूर्वजोंको मूर्ख समझ कर उनकी अवज्ञा करना न सीखें।

* क्षत्रप, हैहय, चौहान, परमार, पाल और सेन वंशोंके इतिहास भारतके प्राचीन राजवंशके प्रथम भागमें छप चुके हैं।

अनुक्रमणिका।

शुद्धाशुद्धिपत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१०	हिमाहं	ह्मिाहं
५	१८	अविकेषु	भ्यधिकेषु
२२	१	शैशुनागिश्च	शैशुनारिश्च
२९	१०	सतिगित	सतिगिक
५२	४–५	आनंद संवत्	पं॰ गौरीशंकरजी ओझाका अनुमान है कि ऐसा कोई संवत पृथ्वीराज रासामें नहीं है। यह केवल 'विक्रम साक अनन्द' इस पद परसे की हुई कल्पना मात्र है।
६४	१०	२००	२०००
६४	१५	बडकेफल	बउकेफल
९८	५	–भिसितष	–भिसितषा
९८	५	देवानं पियषा	देवानं पियष
९८	२०	अथोय	अथाये
१०१	५	पाडरेथन	पांडरेथन
१११	१०	राज्यमें आठ सौ	राज्यमें और आठसौ
१२५	१	मात्यको	मात्योंको
१५१	९	वेश्वामित्रां	वैश्वामित्रा
१६४	२१	इण्ट्रोडकशन	——
१६९	१५	कदम्बवंशी	कर्दमवंशी
२०७–८	१७–१–२	मि॰ स्मिथका अनुमान है कि ये लोग इनकी मृत्युके करीब १० वर्ष बाद तक भी अपने अपने प्रदेशोंका शासन करते रहे थे	—— ——

२२५	४	शिलालेख्यां	शिलालेख्या
२४०	१	प्रसिद्ध भिक्षु	प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु
२५१	४	प्राभीर	आभीर
२५४	१७-१८	यह कर्तृपुर जालन्धरके पास कर्तारपुर नामसे अब तक प्रसिद्ध है	
२८०	४	—धिराजाश्री	—धिराजश्री
३१०	३	कु० गु० तृ०	कुमारगुप्त प्रथम
३१८	२	४८०	४८५
३२१	१८-१९	उलटी तरफ 'श्रीनरेन्द्रादित्य' लिखा रहता है।	
३२३	२ और ३ के बीचमें		एक प्रकारके सुवर्ण-के सिक्के और भी मिले हैं
३२३	फुटनोट नं० २	नं० ७०	नं० ७८
३६८	१९	का	को

नोट—लिपिसम्बन्धी नकशों आदिमें जहाँ 'प्रस्तावना' छप गया है, वहाँ उस शब्दसे 'भारतीय लिपि और उसकी प्राचीनता' नामक लेख समझना चाहिए जो पृ० ४०१ से आरंभ होता है।